ॐ

भावांजलि

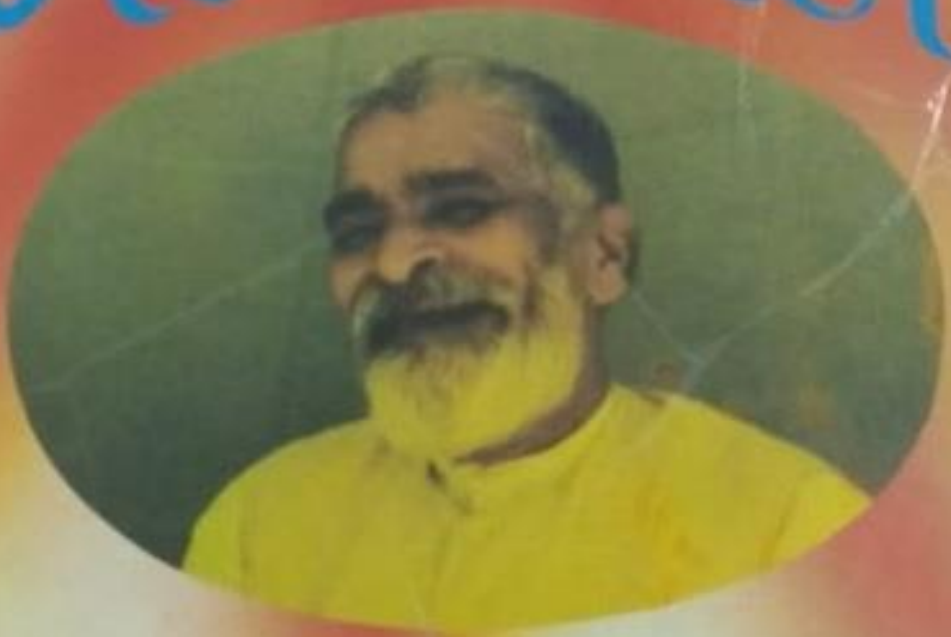

ब्रह्मलीन संत सद्गुरु परम पूज्य

डा० श्रीकृष्णलाल जी महाराज

के जन्म शताब्दी के शुभावसर पर

श्रीचरणों में समर्पित

रामाश्रम सत्संग (रजि०), गाज़ियाबाद (उत्तर प्रदेश)

हे श्रीकृष्ण, प्रणाम प्रणाम!

सद्गुरुओं की पुण्य श्रृंखला में गुरुदेव सुशोभित हैं,
शिष्यों के मन मन्दिर के आराध्यदेव हैं, पूजित हैं।
आश्विन शुक्ला नवमी की तिथि उनकी सुधि ले आई है,
जन्म शती के समारोह की मंगल-ध्वनि बजवाई है॥
लेकर गुरु का नाम 'राम' के 'आश्रम' में 'सत्संग' किया,
'संत वचन - नवनीत' और 'अमृत रस' का आनन्द दिया।
'सर्व धर्म समभाव' भावना अपने पुरखों से पाकर,
लिखा 'राम संदेश', किया कल्याण, प्रेम से बँटवाकर॥
सुरत-शब्द का, ज्ञान-ध्यान का, प्रेम-भक्ति से कर संगम,
धर्म-कर्म का मर्म बताया, चलकर सहज-मार्ग अनुपम।
कितने त्रसित, भ्रमित, पतितों को प्यार दिया, उद्धार किया,
दीन, दुखी, दलितों को देकर, दवा-दुआ उपकार किया॥

हे गुरुदेव, प्रणाम प्रणाम!

गुरु वन्दना

हे दीन बन्धु दयाल गुरु , स्वीकार कोटि प्रणाम हो।
महिमा तुम्हारी है अगम, अतिशय पवित्र महान हो॥
माया की दल दल में फंसा हूँ , बस नहीं चलता ज़रा।
सब हौसले हारा हुआ हूँ आपका है आसरा॥
हैं आपकेपदकंज निर्मल, हरन भव संताप हैं।
फिर भी प्रभो होकर तुम्हारा, शेष मेरे पाप हैं॥
हूँ दीन हीन दुखी अकिंचन, लेश अधिकारी नहीं।
फिर भी पतित को त्रान देना, तुमको कुछ भारी नहीं॥
मन एक और अनेक बंधन में फंसा है रो रहा।
कोमल हृदय समरत्थ सन्मुख आपके सब हो रहा॥
अति दुखित हूँ, अति विकल हूँ, मैं जल रहा त्रय ताप से।
प्रभु शांति जल बरसाइये आशा लगी है आपसे॥
मेरे महादानी पिता, मुझ पर अनुग्रह कीजिये।
मन मधुप हो पद पद्म पर, वरदान ऐसा दीजिये॥
नहिं नर्क से भय कुछ मुझे, नहीं स्वर्ग की है कामना।
जहां भी रहूँ क्षण भर न भूलूं, दीन की है याचना॥
संतोष अब होता नहीं, हे देव करुणा कीजिये।
निज से विलग मत कीजिये, मन प्रेम से भर दीजिये॥
मैं हूँ शरण शरानागते, हे दीन बन्धु दयानिधे।
भाव ताप - हरण नामामिते, हे पूज्यतम करुणानिधे॥

परम पूज्य महात्मा रामचन्द्र जी महाराज और उनके लाड़ले पूज्य गुरुदेव

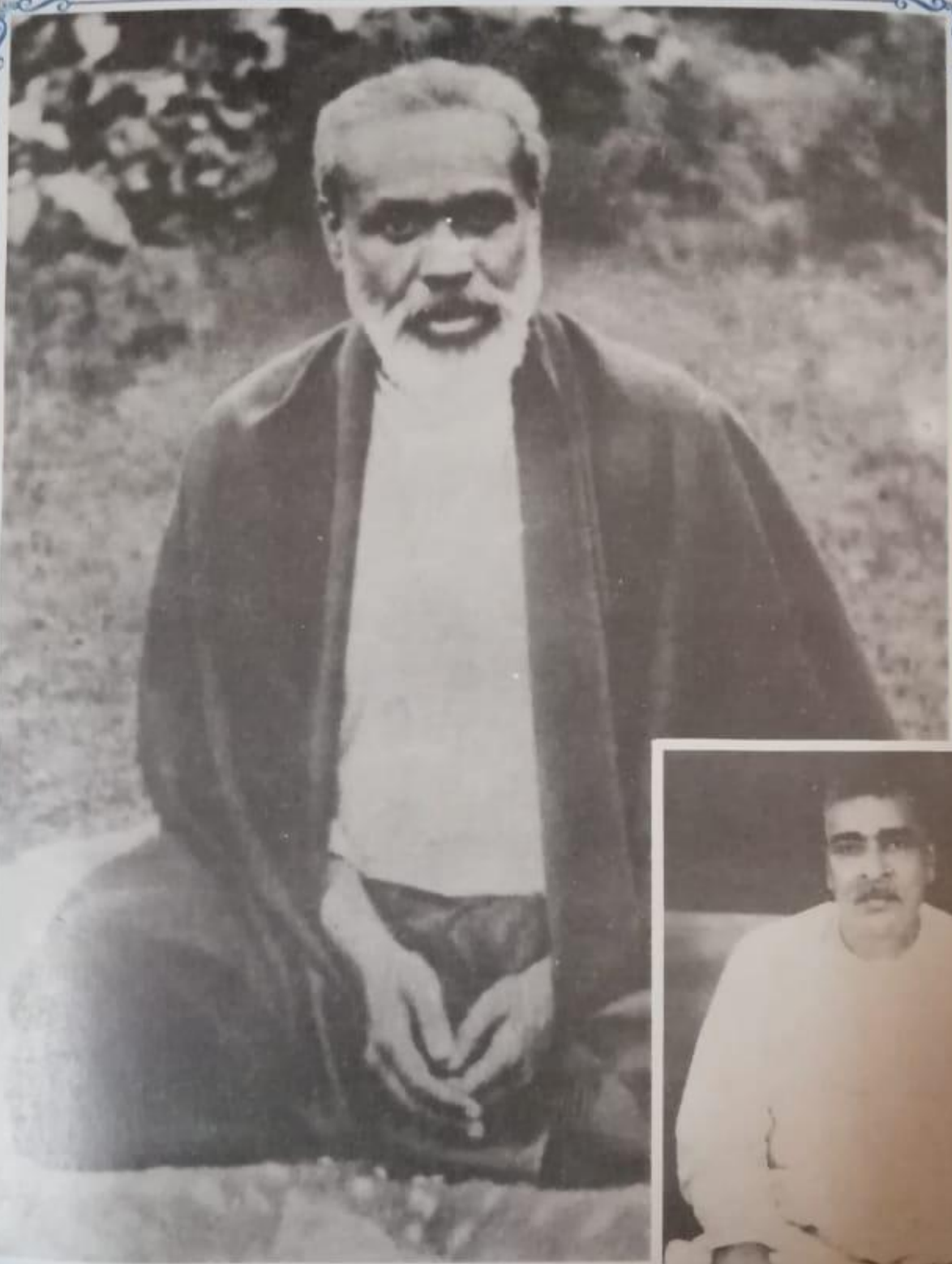

गुरु ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

परम पूज्य डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज और उनके लाड़ले डॉ. करतार सिंह

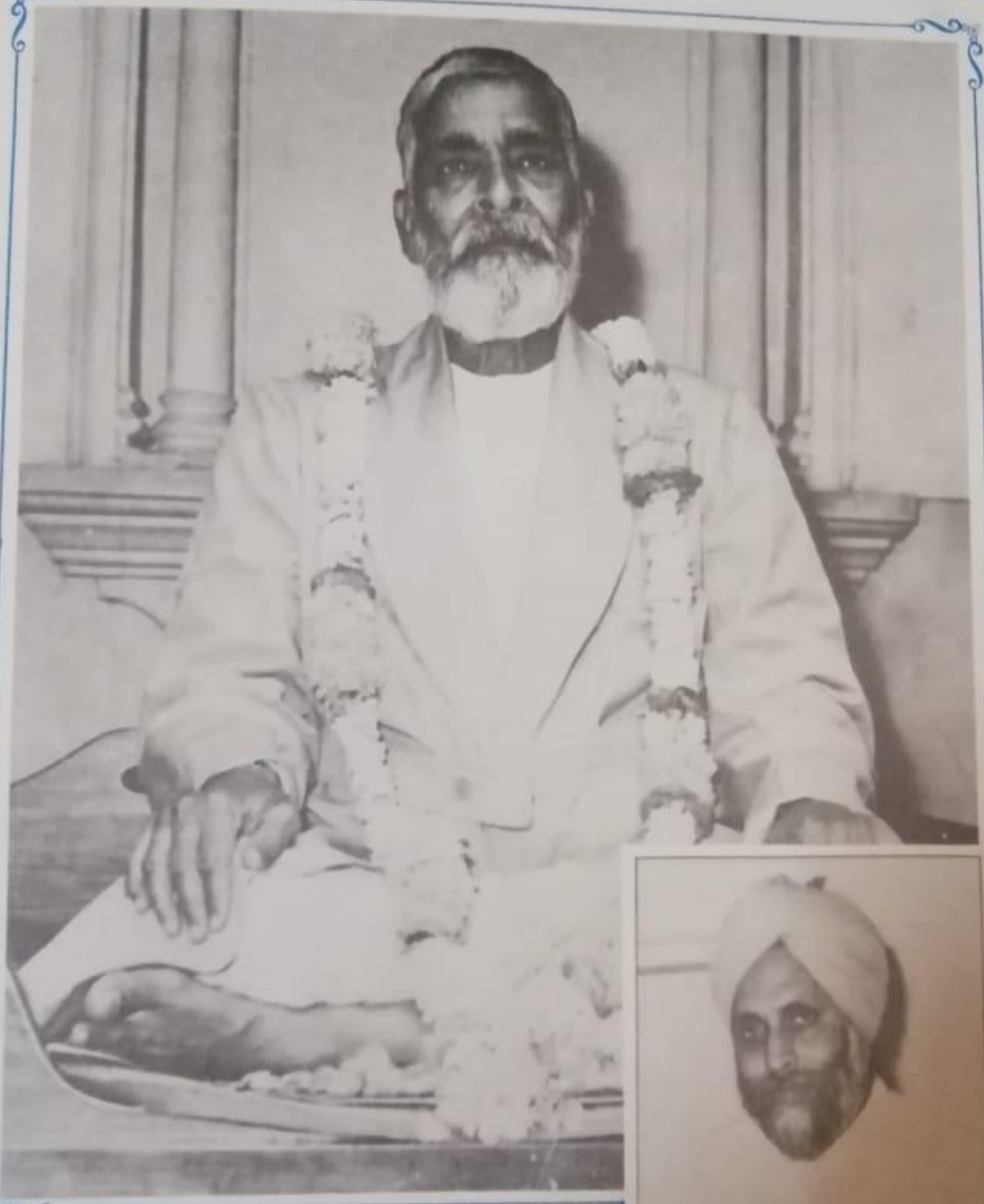

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

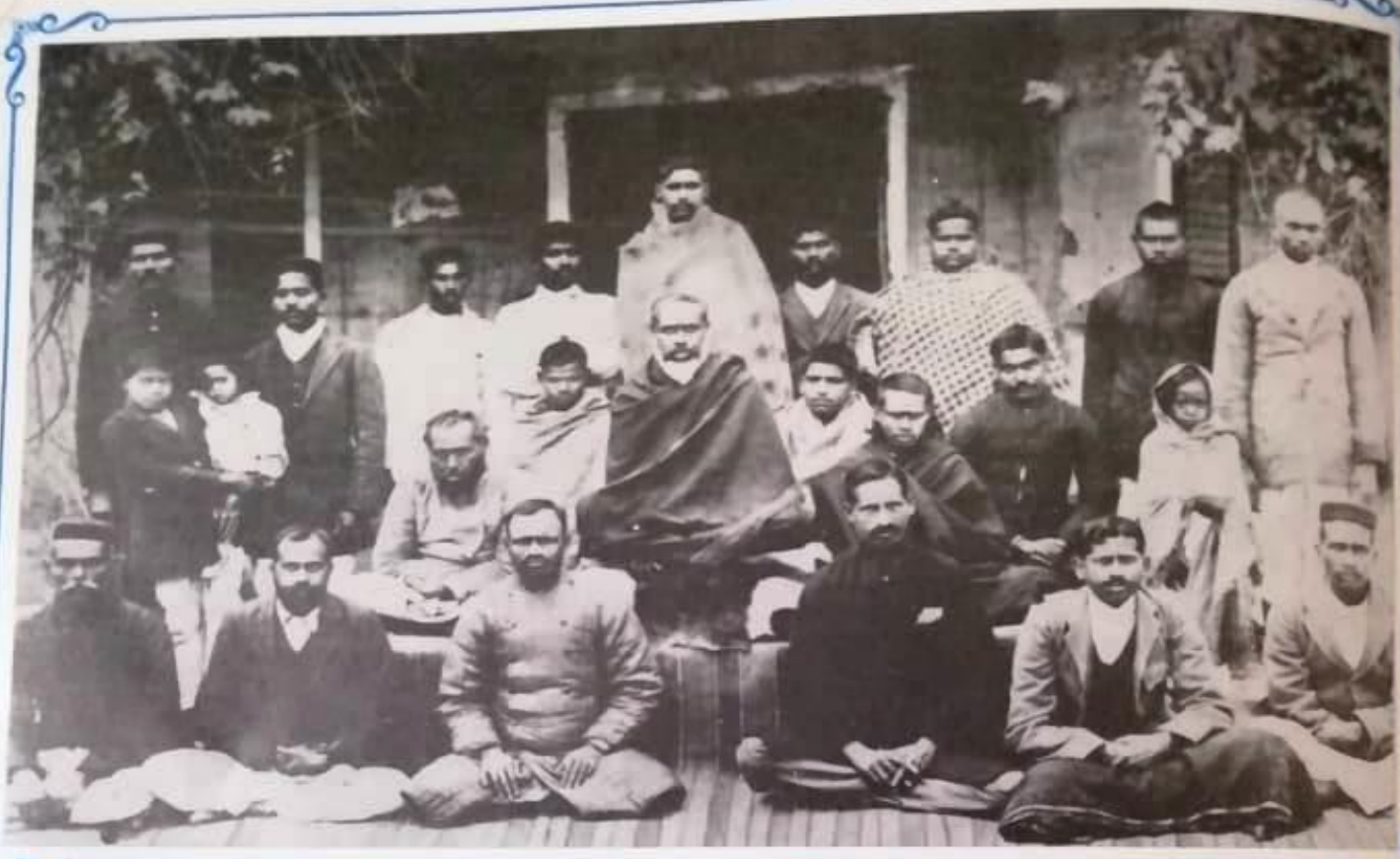

परम पूज्य महात्मा रामचन्द्र जी एवं सत्संग परिवार

परम पूज्य डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज गुरु पूर्णिमा पर्व पर दिल्ली में

पूज्य लालाजी महाराज की जन्मशती पर विशिष्ट आमजन - बुजुर्ग

श्रद्धानत माननीय महानुभाव फतहगढ़ मे - पूज्य लालाजी, जिया माता जी और श्री जगमोहन लाल की समाधि पर

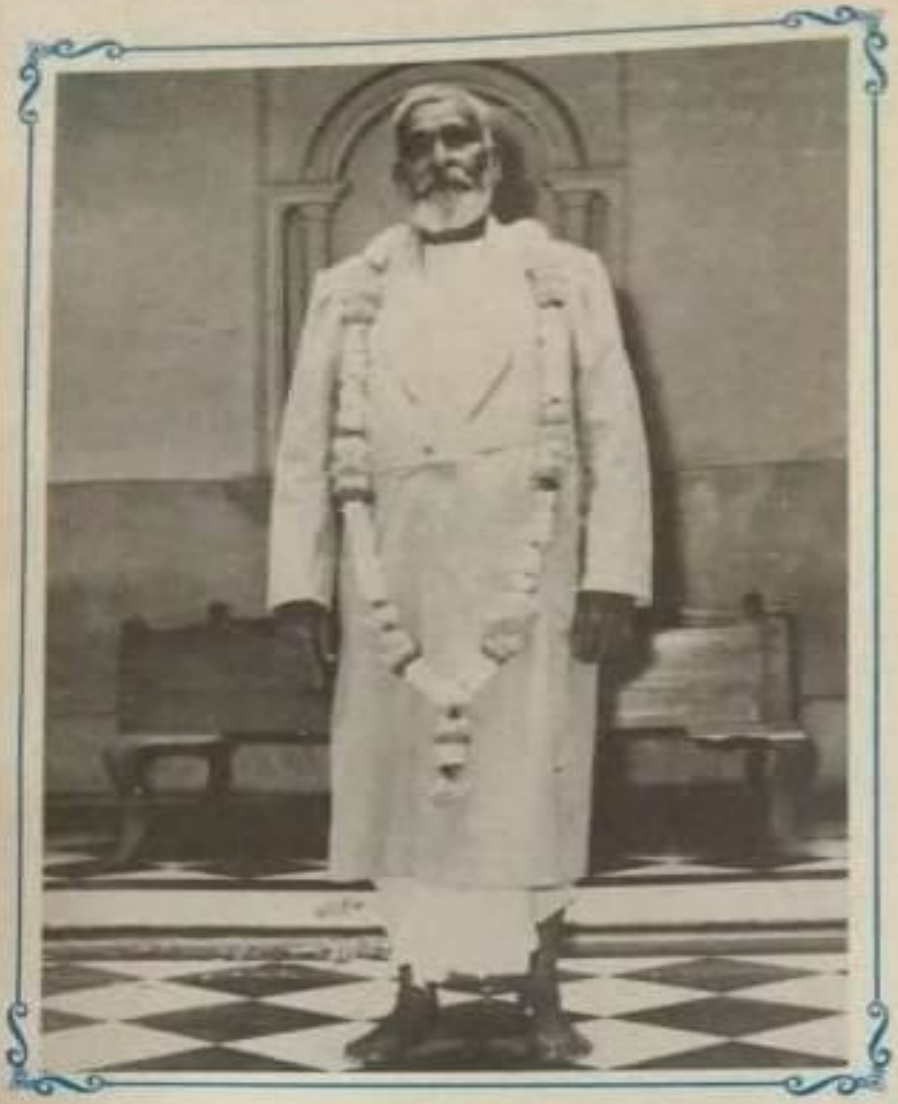

परम पूज्य गुरुदेव के विविध स्वरूप

पूज्य गुरुदेव डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी, डॉ. करतार सिंह एवं डॉ. हरी कृष्ण

फूलों में समाधि

अतिम विदाई

परम पूज्य गुरुदेव डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज वाराणसी की महकती फुलवारी में – जनवरी 1969

समर्थ गुरु परम पूज्य डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

के जन्मशती भण्डारा समारोह पर

हार्दिक बधाई और शुभ कामनाएँ

आध्यात्मिक जगत के आलोकित आकाश पर जो ज्योतिपुंज आज से सौ वर्ष पहले प्रकट हुआ था, आज उसी की दैदीप्यमान आभा में हमें उनकी जीवंत स्मृति का महोत्सव मनाने का परम सौभाग्य, गौरव और आनन्द मिल रहा है । यह जन्मशती का पर्व हमारे परम् पूज्य गुरुदेव डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी के रूहानी रंग और प्यार की लाली को चारों ओर ऐसे फैला रहा है कि लगता है - मानो

" लाली मेरे 'लाल' की, जित देखौं तित लाल "

गुरुदेव द्वारा संचालित रामाश्रम सत्संग की सभी शाखा-उपशाखाओं, केन्द्रो और स्थानों के सेवक - प्रमुख आचार्यों, शिक्षकों, कार्यकर्ताओं तथा समस्त सत्संग-परिवार के प्रेमी भाई-बहनों को पूज्य गुरुदेव के चरणों में अपनी-अपनी श्रद्धा के दीप जलाने पर बहुत-बहुत बधाई. उनके ***'राम के आश्रम'*** में आयोजित इस स्नेह-सम्मलेन में सम्मिलित हुए सभी सम्माननीय महानुभावों एवं समस्त नए-पुराने, बड़े-छोटे, दूर-पास के, अपने-पराये, भूले-बिछुड़े, साथी-सहयोगी एवं स्नेहियों को बहुत-बहुत धन्यवाद इस महत्वपूर्ण अवसर पर मेरी अभिलाषा ओर प्रार्थना है कि उनकी (पूज्य गुरुदेव की) पावन शिक्षाओं को आचरण में आत्मसात करें. उनके व्यावहारिक उपदेशों की अमृत-धारा में गंगा-स्नान करके, अपने दोष-त्रुटियों को धो-बहाकर निर्मल बनें, तथा उनकी प्रगाढ़ प्रेम और सात्विकी सेवा की पुण्य-प्रसादी प्राप्त करने योग्य सुपात्र अधिकारी बनें. पूज्य गुरुदेव की महान कृपा का वरदान आप को प्राप्त हो.

गुरुदेव सबका जीवन धन्य करें. ग़ाज़ियाबाद दि. 1-10-94

- करतार सिंह

संत सद्गुरु डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

के जन्मशती समारोह पर प्रस्तुत

" भवान्जलि *

प्रथम खण्ड - चित्रावली

कौन कहता है कि तुम्हें हमने भुला रखा है ?
मन के मन्दिर में तो भगवान् बना रखा है !

---

* परम पूज्य महात्मा रामचन्द्र जी महाराज
* परम् पूज्य गुरुदेव डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी
* परम् पूज्य लाला जी, गुरुदेव एवं सत्संगी परिवार
* परम् पूज्य लाला जी की जन्मशती पर आप्तजन
* परम् पूज्य गुरुदेव अपने विविध स्वरूपों में
* परम् पूज्य गुरुदेव और सत्संगी परिवार

द्वितीय खण्ड - स्नेहांजलि

हम सभी के वास्ते तो थे, सदा से पूज्य तुम !
पर तुम्हें जो भी मिले, सब कह गए - हो धन्य तुम !

---

* परम् पूज्य डॉ. अक्षय कुमार बैनर्जी साहब
* संत शिरोमणि देवराहा बाबा जी महाराज
* परम श्रद्धेय स्वामी चिन्मयानंद पुरी जी
* परम् श्रद्धेय डॉ. श्याम लाल जी
* माननीय श्रीमान पाल सिंह जी
* अन्य महानुभावों की दृष्टि में

तृतीय खण्ड - श्रद्धांजलि

तुम सा नहिं देखा-कहने की, आईं शुभघड़ियाँ ऐसी
भावना रही जाकी जैसी, तिन देखी 'प्रभु' मूरत तैसी !

---

* डॉ. करतार सिंह जी, अध्यक्ष-आचार्य
* डॉ. महेश चन्द्र, पूर्व-सम्पादक
* डॉ. कृष्ण मुरारी लाल श्रीवास्तव
* श्री कैलाश नारायण जौहरी
* डॉ. श्याम बिहारी श्रीवास्तव
* श्री रामबृक्ष सिंह

चतुर्थ खण्ड - चरितावली

तुम्हारे गुरुजनों ने जो दिया था ज्ञान का भंडार ,

उसको प्यार से बाँटा, हज़ारों का किया उद्धार !

---

* डॉ. हर नारायण सक्सेना
* श्री जय नारायण गौतम
* श्री राम सागर लाल
* श्रीमती वीरमती जौहरी
* डॉ. दिनेश कुमार श्रीवास्तव
* श्री बृज मोहन शर्मा

पंचम खण्ड - शिक्षावली

सफ़र में ज़िन्दगानी के कई मुश्क़िल सताती हैं,

मशालें तेरी बातों की, सही राहें दिखती हैं !

---

* डॉ. ब्रजेन्द्र कुमार सक्सेना
* श्री भजन शंकर
* श्री राम सागर लाल

* श्री ओम प्रकाश जौहरी

* श्री अमरीक सिंह

* श्रीमती शान्ता श्रीवास्तव

* श्रीमती शीला वर्मा

षषटम खण्ड - भवान्जलि

दिखाये तुमने जो जल्वे, उन्हें कैसे भुला देंगे ?

उजाले मीठी यादों के, हमेशा रौशनी देंगे !

---

* डॉ. हरी कृष्ण भटनागर

* डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

* श्री उमाकांत प्रसाद

* श्री अशोक प्रधान

* श्री हरवंश लाल भायला

* श्री गिरिजानन्द लाल

* श्री सच्चिदानन्द लाल

* प्रो.रमेश प्रसाद सिन्हा

* श्री रामजी लाल शर्मा

* श्री हेमराज चतुर्वेदी

* श्री नन्द प्रसाद श्रीवास्तव

* श्री हरी मोहन सिन्हा

* श्री बी.पी. शर्मा

* श्री राम चन्द्र लाल

* श्री के. बी. सक्सेना

* श्री रमेश चन्द्र जौहरी

* श्री के.एम. सक्सेना

* श्री रमेश चन्द्र वर्मा

==========

मुद्रण-प्रकाशन : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना ***** **सम्पादन-संकलन : सतीश वर्म**

रामाश्रम सत्संग (ग़ाज़ियाबाद) प्रकाशन - अक्टूबर 1994

==========

संत सद्गुरु डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी के जन्म शताब्दी समारोह पर समर्पित : भवान्जलि

सम्पादकीय निवेदन

हमारे परम पूज्य गुरुदेव डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज की जन्म-शती का दो वर्ष सुना समाचार आज साकार हो रहा है. उस समाचार ने मन में विचार का बीज डाला कि क्यों न कुछ ऐसा किया जाये कि उन महामानव के आदर्शों-आदेशों को, उपदेशों -सन्देशों को बार-बार दुहरा पायें, यथासंभव आत्मसात कर पायें. पूज्य गुरुदेव ने जीवन के सच्चे ध्येय की प्राप्ति कराने योग्य प्रेरक एवं सहायक ठोस साहित्य का भण्डार हमारे लिए छोड़ा है. इतने बड़े ज्ञान के सागर में डुबकी लगाना नए साधकों के लिए बहुत कठिन होता है.

इसलिए विचार पनपा और पुष्ट हुआ कि सबका तत्व एक ही पुस्तक में समाहित किया जाये, जिसमें उनके व्यक्तित्व, कृतित्व और व्यावहारिक जीवन-दर्शन का सक्षिप्त परिचय उपलब्ध हो. इसी भावना से प्रेरित परिकल्पना की 'रुपरेखा' क्रमशः - अभिनन्दन ग्रन्थ, स्मृति ग्रन्थ, स्मारिका और शताब्दी विशेषांक आदि कहलाती हुई अब **'भावांजलि '** के रूप में प्रकट हुई है.

इस हेतु जो प्रयास किया गया उसमें बहुत सी नई रचनायें प्राप्त हुईं जिनमें मोहक सुगंध है, नए खिलते हुए भाव-सुमनों के रंग और रूप की. साथ ही पिछले 30-35 वर्ष पुराने रामसंदेश और अन्य प्रकाशनों में भरी 'साक़ी के मैख़ाने से रूहानी शराब की पुरसरूर लज़्ज़त और महक' आई ..... इन्हीं को नई बोतलों में भरने का नतीज़ा है - इस 'भावांजलि' की मस्ती और रामसंदेश 'विशेषांक में भरा खुमार. इस चयन में से कुछ नए पुराने संस्मरण तथा भाई-बहिनों की भावभीनी अपनी लिखी कविताएं अक्टूबर 'विशेषांक' में संजोयी गयी हैं.

प्रस्तुत 'भावांजलि' छह खण्डों में विभाजित की गयी है : सर्वप्रथम पूज्य लाला जी, कुछ गुरुजनों और गुरुदेव की चित्रमय झांकी है. फिर पाँच खण्डों की सामग्री इस प्रकार है : उनके प्रति विशिष्ट जनों के विचार, प्रिय शिष्यों की श्रद्धांजलियाँ, जीवन चरित्र और विशेष कृतित्व, रामाश्रम सत्संग और साहित्य परिचय, शिक्षा - आदेश, उपदेश, सन्देश और अंत में कुछ संस्मरण.

परम् पूज्य गुरुदेव की महती अहैतुकी कृपा और श्रद्धेय सरदारजी भाई साहब के सतत स्नेहिल आशीर्वाद से यह कार्य सम्पन्न हुआ - उन्हीं श्रीचरणों में सादर सविनय समर्पित है.

हार्दिक आभार

" भावांजलि" की प्रस्तुति में गुरुजन, भाई-बहनों एवं किसी भी रूप में सहयोग और सेवा करने वाले कृपालुओं का हार्दिक धन्यवाद व्यक्त करना परम् कर्तव्य है. इनकी कृपा के बिना इसका प्रकाशन करना संभव न हो पाता,अतएव कृतज्ञतापूर्ण आभार :-

1. परम श्रद्धेय श्रीमान अध्यक्ष -आचार्य महोदय
2. रामाश्रम सत्संग (ग़ाज़ियाबाद) की कार्य समिति
3. सम्मानित विभूतियाँ, गुरुजन और विद्वतजन
4. समस्त कवि-लेखक और सम्पादक-प्रकाशक
5. प्रकाशित सामग्री व फोटो आदि के प्रेषक
6. पुस्तक की स्वरुप-सज्जा करने वाले कलाकार
7. प्रैस और कम्प्यूटर-कायकर्ता तथा प्रूफ रीडर
8. अन्य किसी भी प्रकार के सहयोगी और सेवक

अनुग्रहीत : सतीश वर्मा, सम्पादक

नाथ सम्प्रदाय के शिव स्वरुप संत प्रवर आचार्य

डॉ० अक्षय कुमार बैनर्जी की सम्मति में

हमारे गुरुदेव

पूज्य गुरुदेव के जीवन की एक अद्भुत दैवी घटना हुई थी कि - जब वे वाराणसी सत्संग में पधारे हुए थे तो उनको एक प्रातः पूज्य बैनर्जी साहब ने स्वप्न में दर्शन देकर इस प्रकार आवाहन किया - " डाक्टर साहब, आप यहाँ सोये हुए हैं । आप का कुछ हिस्सा मेरे पास है, आकर मुझसे लें। मेरे जाने का वक्त हो गया है । मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। "

उपरोक्त दैवी आवाहन सत्य ही सिद्ध हुआ, जबकि शीघ्र ही इन दोनों विभूतियों का मिलन हुआ ।

प्रथम भेंट के लिए पूज्य गुरुदेव की अभिलाषा पूर्ति करने हेतु गए थे डॉ० बाँके बिहारीलाल श्रीवास्तव । उनकी प्रार्थना पर गुरुदेव का शुभ नाम सुनते ही, उत्सुकता एवं स्नेहभाव से पूज्य बैनर्जी साहब ने मुस्कराकर कहा - " अरे, उनको भी अनुमति चाहिए ? जाइये, अभी ले आइये ।"

उनकी लिखित तीन पुस्तकों की मूललिपि के आठ सौ पन्ने टाइप करने का काम गोरखपुरवासी हमारे वरिष्ठ सत्संगी भाई श्री रामसागर लाल को गुरुदेव ने सौंपा था । पूज्य बैनर्जी साहब की पुस्तकों को छपवाने का भार पूज्य गुरुदेव ने अपने ऊपर लिया था, जिसे श्रद्धेय सरदारजी भाई साहब ने सर्वश्री भजन शंकर जी और कृष्ण मुरारी लाल जी आदि के सहयोग से दिल्ली में प्रकाशित करवाया ।

टाइप का काम समाप्त करके एक दिन जब पूज्य बैनर्जी साहब की सेवा में बैठे थे, तो श्रीवास्तव जी से वार्तालाप करते हुए उन्होंने यह महत्वपूर्ण उदगार प्रकट किये :-

" मुझे जीवन में सैकड़ों साधक, सिद्ध-सुजान, परिव्राजक आदि एक से बढ़कर एक मिले । परन्तु perfect liberated man (पूर्ण जीवन मुक्त व्यक्ति) कोई मिला तो वे हैं तुम्हारे डॉ० श्रीकृष्ण लाल भटनागर जी । तुम लोग अत्यन्त भाग्यशाली हो कि एक ही व्यक्ति में तुम्हें

गुरु और पथ निर्देशक दोनों मिले । इनके जीवन में जो कुछ लेना हो ले लो, वर्ना ये चीज़ फिर नहीं मिलेगी । "

पूज्यनीय गुरुदेव की चर्चा करते हुए हमारे सत्संग के परिचित भाइयों से कई बार उन्होंने यह विचार भी व्यक्त किया था -

" इतने वर्षों में कोई ब्रह्मविद्या का सच्चा जिज्ञासु यहाँ नहीं आया और इतनी दूर से एक भद्र पुरुष आया और मुझसे सब कुछ ले गया । "

उपरोक्त सभी बातें उन्हीं स्तुत्य महामानव के मुखारविन्दु से मुखर हुई, जिन्होंने एक अलौकिक वेला में भावावेश में पूज्य गुरुदेव ने स्वयं ही कहा था - " Doctor sahib, do not take me to be a man, I am SHIVA PERSONIFIED . "
(डाक्टर साहब, मुझे एक मनुष्य मात्र मत समझो, मैं तो भगवान शिव का साक्षात स्वरुप हूँ)

oooooooooo

(विविध लेखों-संस्मरणों से उद्घृत)

संत शिरोमणि पूज्य देवराहा बाबा की

रामाश्रम सत्संग एवं गुरुदेव के प्रति

शुभाशंसा के उदगार

रामाश्रम सत्संग, बक्सर (बिहार) के प्रेमी भाई श्री रमेश तिवारी जी के संपर्क में आया । गत १९६३ के बक्सर बसंत भंडारे में जाना था कि एक साढ़ू का पत्र पाकर इलाहबाद शादी में जाना पड़ा। सोचा वहीँ से बक्सर भंडारे में जाऊँगा । १३ जनवरी को इलाहबाद पहुँच गया । वहाँ का काम पूरा कर बक्सर लौटने के लिए टिकट के पैसे देकर त्रिवेणी स्नान को चला गया ।

वहाँ संगम पर भीड़ थी। ज्ञात हुआ कि संत शिरोमणि पूज्य श्री देवराहा बाबा आये हुए हैं। मुदित मन स्नान करके उनके दर्शनार्थ चला गया। उन्हें प्रणाम करके उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। पूज्य बाबा कृपाकर स्वयं बोले " रउरा टाटा से आईल बानी, रउरा नौकरी करीं ला । रउरा प्रोग्राम यहाँ से बक्सर भंडारे में जाये के बा, लेकिन रउरा उहँवा पहुँच ना सकबि ।" मैं चुप-चाप मन्त्र मुग्ध सा खड़ा रहा ।

उनमें एक विचित्र आकर्षण था। उन्होंने कृपा कर पुनः स्वयं कहा कि - *" जिस सत्संग का रास्ता आपने पकड़ा है आप उसी में लगे रहिये। यह सत्संग बहुत ही अच्छा है । इसमें किसी प्रकार का प्रपंच नहीं है । और बहुत सारे सत्संग हैं जिनमें लोगों ने पचड़ी ठोंक रखी है । आप अपने उसी सत्संग में लगे रहिये और ध्यान रखिये, उसे छोड़िएगा मत। आपको उसी में सफलता अवश्य मिलेगी । "*

मैं आश्चर्य चकित हो गया कि बिना बताये हुए पूज्य बाबा स्वयं सब कुछ समझ गए और बता गए। ख़ुशी में बोल उठा - " देवराहा बाबा की जय । " ठीक उसी समय पूज्य बाबा हाथ उठाकर बोले-*"आप ऐसा मत कहिये । आप बोलिये कि परम दयाल संत सद्गुरु श्री कृष्णलाल जी की जय ।" पुनः बोले " वही आपके असली गुरु हैं । उन्हीं का ध्यान कीजिये । रास्ता ठीक है । उनके जिस सत्संग को आपने पकड़ लिया है वहीँ लगे रहिये । "*

मैं आनन्द से भर गया कि प्रभु कृपा तले मुझे सच्चे सत्संग की शरण मिल गयी है । ख़ुशी -ख़ुशी साढ़ू के डेरे पर आया तो देखा कि अचानक उनकी तबियत बहुत ख़राब हो गयी है । पूज्य श्री देवराहा बाबा की वाणी सत्य निकली। मुझे साढ़ू की सेवा में वहीँ रुक जाना पड़ा और मैं चाहकर भी बक्सर भंडारे में नहीं जा सका। पूज्य गुरुदेव के दर्शन-प्रवचन से वंचित रहते हुए भी अहोभाग्य मानता रहा ।

oooooooooo

(संस्मरण - श्री कामता प्रसाद, टाटानगर)

जगन्नाथ पुरी के स्वामी चिन्मयानन्द पुरी

की प्रेममूर्ति गुरु महाराज के प्रति प्रेरक प्रेमान्जलि

आज तक जाने अनजाने कितने महात्मा इस देश में भारतवर्ष के कोने-कोने में साधना कर सिद्ध हुए हैं, एवं हो रहे हैं, उनका पता भी नहीं चलता। कितनों का कोई भी वेश-धारण नहीं है परन्तु हैं संत-परमसन्त तथा अपने साध्य साधनाओं में सिद्ध व्यक्ति। जन-साधारण को ऐसे महात्माओं का पता भी कम चलता है । ऐसे ही संतों में श्री श्रीकृष्ण लाल जी भी एक थे ।

भाई साहब श्रीकृष्ण लाल जी ने भगवत गीता के शीर्ष उपदेश के अनुरूप उपदेश बतलाया है कि ' इन सबसे ऊपर उठना चाहिए ' क्योंकि मन में सारे सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, संकल्प-विकल्प, काम, क्रोधादि रहते हैं, मन ही इन सबका आधार है । सारे प्रमाद मन से ही होते हैं । इसलिए अभ्यास से मन के ऊपर उठने से भी "इन सबसे ऊपर उठना" आसान है । रुड़की में उनसे मेरी यह अन्तरंग भेंट न होती, तो मैं भी उनके विषय में यह भाव या यह बात नहीं कह सकता था कि वे यथार्थ में एक परमसन्त थे, एक महापुरुष थे, 'पराभक्ति' में मग्न (मशगूल) थे । अतः वे प्रातःस्मरणीय हैं ।

इस स्वार्थ-सर्वज्ञ भौतिक युग में ऐसे परोपकारी परम सतों का होना अति आवश्यक है । संत तो बहुत होते हैं परन्तु ऐसे संतों का होना साधारणतः दुर्लभ है । लगभग उन्हीं के शब्दों में उनका थोड़ा सा परिचय देता हूँ :-

" श्री श्रीकृष्ण लाल जी से मेरा पहला परिचय १. 1940 दशक के शेषार्द्ध में हुआ था । तत्पश्चात मैं उनके आमंत्रण पर उनके निवास-स्थान सिकन्द्राबाद में भी गया था और करीब एक सप्ताह रहा । उन दिनों डॉ। हरी छात्र थे । बरेली में 'मृणाल भवन' मठिया, बिहारीपुर में जहाँ उनके पहले दीक्षा लेने वालों में से श्री जय नारायण गौतम रहा करते थे, मेरे से उनकी भेंट बहुत दफ़ा हुई थी ।

हमारा अन्तिम मिलन परस्पर रुड़की में मार्च 1969 में हुआ था। उन्होंने मुझसे कहा था कि " यहाँ कुछ गिने चुने ख़ास-ख़ास आदमियोंको बुलाकर यह छोटा सत्संग आप ही के लिए

किया गया है ।" तीन दिवसीय सत्संग के अधिवेशन में सत्संगी भाइयों की उपस्थिति लगभग 300 की थी, जो मुख्यतः उत्तर प्रदेश स्थित रुड़की, काशी, गोरखपुर, कासगंज और कुछ बिहार से आये थे।

उन्होंने मुझसे कहा कि " अब मेरी अवस्था हो गयी है, तबियत भी ठीक नहीं रहती, न मालूम कब यह शरीर छूट जाये। हमारे संत समाज में एक रीति (रिवाज़) है कि कोई आचार्य अपने बाद कौन आचार्य तथा अध्यक्ष होंगे, यह बात तीन परमसंतों की सम्मति (राय) से निश्चय की जाती है । पहले दो संतों की सम्मति हमने ले ली है परन्तु कोई नतीज़ा नहीं निकला है ।अब आप तीनों में से जिसको कहेंगे उसी को मैं अध्यक्ष तथा आचार्य बनाऊँगा ।"

" भले ही वह आपके मन के ख़िलाफ़ भी हो ?"

" जी हाँ, ज़रूर, नहीं तो आपकी इस आखिरी राय का मूल्य कहाँ रहा ? "

इसी सिलसिले में जब मुझको उन्होंने ने "परम संत " कहा तो मैने तत्काल ही कहा कि अभी तक तो मैं एक संत ही नहीं बन सका, तो फिर आपने मुझको "परम संत" कैसे कहा । आपकी नज़र (दृष्टि) ही ग़लत है । यह सुन कर वे अपने ढंग से हँसकर । मुस्कराते ही रहे और अपना मुख-मण्डल (सिर) हिलाते रहे ।

रुड़की में पहले दिन रात को श्री जय नारायण गौतम के साथ पहुँचा था । वे दूसरे दिन दिल्ली से 'कार' में आते ही मेरे कमरे में आये और क़रीब एक घंटे तक मेरे साथ बात-चीत करते रहे । इनमें मुख्यतः अपने साधन-भजन तथा अन्तिम दस वर्षों में किस प्रकार अपने अनुभव हुए, ये सभी बातें कहीं, साथ ही साथ इस बात का उल्लेख करते रहे कि सिकन्दराबाद में मुझसे भेंट होने के बाद में सब पक्का हुए (उनके अनुभव) । तीनो दिन जब हम दोनों से भेंट होती थी तो पारस्परिक साधनाओं तथा अनुभवों की ही बातें होती थीं । उन्होंने कहा कि " मैं अपना दिल खोलकर ये सब बातें करूँगा। आपको छोड़कर मेरी नज़र में अब कोई नहीं है ।"

जब बार-बार अध्यक्ष या आचार्य के बारे में ज़िद (आग्रह) करते रहे तो मैने एक और रात का समय लिया एवं अपनी अन्तर्दष्टि से या विचार से कि तीनो में से जिसको अध्यक्ष तथा आचार्य बनाने का नाम लिया, तो वे कुछ देर तक गंभीर होकर आँखें बन्द कर ध्यान की मुद्रा

में रहे । फिर मुस्कराते हुए कहा कि "हाँ, अपने जैसा फ़रमाया, मैं ऐसा ही करूँगा । आपने ही जो बताया, आप ही की बात (राय) मैने मान ली । आप उस पर सदा आशीर्वाद रखें कि वह यथार्थ में आपके निर्वाचन के अनुसार योग्यतम बन सके । "

यह कहना यहाँ अवान्तर नहीं होगा कि परमात्मा की कृपा से और उसकी शुभेच्छा से वे ही उस समय एक साधरण व्यक्ति में दीखते हुए आदमी आज किस प्रकार योग्यता के साथ "रामाश्रम सत्संग" के अध्यक्ष तथा आचार्य के रूप में इसके कर्णधार बने हुए हैं । एवं इस सत्संग रूपी नौका को कितने ही झाड़-झटके तथा आँधियों में भी डूबने नहीं दिया है और अहर्निश सेवा करके निरंतर आगे ही बढ़ाते जा रहे हैं ।

एक दिन प्रवचन में उन्होंने बतलाया कि साधु संत चार प्रकार के होते हैं। एक तो ऐसे होते हैं कि जो न तो किताबों (शास्त्रों) के पढ़े हुए ही हैं और न अभ्यासी ही हैं । दूसरे ऐसे हैं जो केवल किताबों के पढ़े हुए हैं, पर अभ्यासी नहीं। तीसरे अभ्यासी हैं, परन्तु किताबों के पढ़े हुए नहीं हैं। चौथे ऐसे होते हैं - जो किताबों के पढ़े हुए, शास्त्रों को जानने वाले भी हैं और यथार्थ में अभ्यासी भी हैं। ऐसे महात्मा बहुत दुर्लभ हैं। ऐसे संतों का भाग्यवश साथ मिला तो उनसे विशेष लाभ उठाना चाहिए । उन्होंने कहा कि पहले व दूसरे से तीसरे प्रकार के संत अच्छे होते हैं परन्तु उनका भीआज का अनुभव दस वर्ष के बाद बदल सकता है । किन्तु चौथे प्रकार के संतों का अभ्यास से होने वाला अनुभव, किताबों से, शास्त्रों से मिलता हुआ होने से यथार्थतः उत्तम है । यह बात वे तो अन्य किसी विशेष व्यक्ति के लिए नहीं, अपने सत्संगी शिष्यों से उस दिन कह रहे थे। परन्तु, आप स्वयं भी इसी चौथी श्रेणी के परमसन्त थे ।

भाई साहब श्रीकृष्ण लाल जी ने यह भी बतलाया है - "हम माया के देश में रहते हैं । दुःख-सुख आएंगे ही, शरीर की पीड़ा, मानसिक पीड़ा, आर्थिक पीड़ा, समाज से उत्तेजना, अपने प्रियजनों से उत्तेजना, अपने मन की ही चंचलता और संस्कारों के कारण अशांति उत्पन्न होती है । श्रीकृष्ण लाल जी ने फ़रमाया है कि - " इन सब से ऊपर उठना चाहिए ।"

हमारे प्रिय..... श्री करतार सिंह जी ने अपने गुरुदेव के इस कथन की व्याख्या करते हुए एक सही दृष्टांत दिया है कि - " (देखो) भगवान शिव की समाधि अवस्था की ओर कि इस माया देश में किस तरह रहना है ?। - भगवान शिव की तरह। उनके गले में भी लोग साँप डाल

देते हैं, उन्हें विष पिलाते हैं, परन्तु भगवान् शान्त हैं। सत, चित, आनन्द हैं। सत्यम, शिवम्, सुन्दरम हैं । "

विगत सन 1970 की 18 मई को हमारे परमसन्त डॉ० श्रीकृष्ण लाल जी ने अपने देह को छोड़ दिया । ऐसा लगा कि मानो इस नश्वर संसार से एक आस्वर नक्षत्र अदृश्य हो गया । लौकिक दृष्टि से तो सत्संगी लोग आज अनाथ बने हैं परन्तु आत्मिक दृष्टि से वे ओर भी सनाथ हुए हैं । क्योंकि - सत्संगियों की दृष्टि से वे देहधारी के रूप में, सिकन्दराबाद में, उनसे बहुत दूर रहते थे परन्तु आज वे इस सीमित शरीर को छोड़ - अव्यक्त मूर्ति से, व्यापक रूप में सभी प्रेमी सत्संगियों के अति समीपवर्ती हुए हैं। स्थूल दृष्टि तथा देहात्माभिमान वालों के लिए यह बात अनुभव योग्य नहीं है परन्तु उनके प्रिय शिष्यों में से जो-जो "देहेन्द्रिय-भूमि " से "मनोमय" भूमि तक पहुँचे हैं, उनके लिए यह तत्व समझना अति सुगम होगा। अपने गुरु की स्थूल देह के रहते हुए भी, कृपा तो इसी भूमि पर पहुँचने वालों को ही यथार्थतः तथा कायतः अनुभव होती है । अतः यथार्थ में परमसन्त डॉ। श्रीकृष्ण लाल जी मरे नहीं हैं, अतः उनके लिए हमें शोक करना उचित नहीं है ।

मैं आशा करता हूँ कि उनका अन्तरङ्ग प्रिय साधक-वर्ग, उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलकर, उनके उपदेशों के अनुसार लगातार साधना कर स्वयं कृतकृत्य होंगे ओर ऐसे एक परमसन्त की स्मृति को जीवन्त रखेंगे ।

मैं ह्रदय से यह शुभेच्छा करता हूँ कि भाई साहब महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज का ' बच्चा ' - यह सत्संग और भी तुङ्ग स्थान में उठे एवं इसके सहयोगी सभी का आत्मिक (आध्यात्मिक) कल्याण हो। ॥ ॐ राम ॥

00000000000000

सुधा बिन्दु

प्रेम चाहे ईश्वर से हो या किसी दुनियादार से, उसमें कोई ग़रज़ (स्वार्थ) न हो। जहाँ स्वार्थ है वहाँ प्रेम नहीं - सौदेबाज़ी है। ईश्वर से प्रेम करो और कुछ न चाहो। ईश्वर या गुरु से सच्चा प्रेम आत्मा के द्वारा होता है। मन का प्रेम बदला चाहता है और बदलता (घटता-बढ़ता) रहता है। मन के प्रेम की एक पहचान यह भी है कि यह जिसे प्रेम करता है उसे किसी दूसरे से प्रेम करते नहीं देख सकता। आत्मा का प्रेम बदला नहीं चाहता जाँनिसारी (जी जान से न्योछावर होना चाहता है)

000000000000

हमारे गुरुदेव के प्रति

माननीय डॉ० श्यामलाल जी, ग़ाज़ियाबाद. की भावनाएँ

वह परम पुनीत दिन 20 अक्टूबर, 1977 का था जब सेवक सिकन्दराबाद भण्डारे से ग़ाज़ियाबाद पूज्य श्री गुरुदेव के द्वितीय पुत्र भैया प्रो। राधाकृष्ण के वहाँ ठहरा हुआ था। श्री गुरुदेव के तृतीय पुत्र भैया श्री गोपालकृष्ण भी बगल में ही रहते थे। दोनों पूज्य जनों एवं स्नेहमयी भाभी लोगों के प्रेम से धन्य हो गया।

वहीँ श्री गुरुदेव के अतिशय प्यारे गुरु-भ्राता (जो गुरुदेव के अभिन्न मित्र थे) परम संत डॉ। श्याम लाल जी साहब भी वर्तमान थे। श्री गुरुदेव ने ही इन्हें पूर्ण आचार्य पद दिया था और अपने जीवन-काल में ही आपका स्वतंत्र रूप में अलग सत्संग कायम करा दिया था जो प्रेम पूर्वक चल रहा था। पूज्य दादा गुरुदेव के इन शिष्यों का दर्शन ही जीवन को सफल बना देने वाला है ।

एक दिन आपके दर्शनों के लिए चला गया। बड़े खुश हुए कि मैं सिकन्दराबाद के महाराज जी का शिष्य हूँ । 22 एवं 23 अक्टूबर को प्रातः सांय दोनों समय गया । आपने कहा कि " पूज्य लाला जी अपने सिलसिले की विरासत पूज्य डॉक्टर साहब (सिकन्दराबाद निवासी गुरुदेव डॉ। श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) को सौंप गए थे। उन्हीं को अपना सब कुछ दे गए थे। पूज्य भाई साहब (सिकन्दराबाद) जन्म से ही संत थे । " He was a born saint " (जन्मजात ही संत थे) वे देवता थे और भावी जी देवी थीं ।"

पुनः भाव विभोर होकर कहा कि " आप इतनी दूर से आये हैं तो आपको एक बात बता दूँ कि नित्य अपने गुरुदेव को तथा गुरुदेव के माध्यम से दादा गुरुदेव को तथा दादा गुरुदेव के माध्यम से ऊपर के सभी संतों को ' ॐ शान्ति का जाप अर्पण करते रहने से बुज़ुर्गों की एवं गुरुदेव की कृपा बनी रहती है । बुज़ुर्ग यह सोचते हैं कि यह हमें भी याद करता है और हमारे शिष्य को भी । अतः कृपा करते हैं । यदि सभी संतों के लिए अलग-अलग न हो सके तो पूज्य मौलवी साहब तक के लिए करके, बाद में माला जाप कर कहना चाहिए कि गुरुदेव के माध्यम

से ऊपर के सभी संतों की आत्मा की शांति के लिए अर्पण करता हूँ । इससे बहुत फल मिलता है तथा लाभ होता है । अनुभव की बातें आपको बता दीं ।"

पुनः आपने फ़रमाया कि " अपने गुरुदेव (डॉ० श्रीकृष्ण लाल जी) को कभी न छोड़ेंगे । सदा यही ख्याल रखेंगे कि

" He is as living as before " (वे पहले जैसे साक्षात् थे वैसे आज भी हैं) और हमेशा वैसे ही रहेंगे । "

एक बार पूज्य गुरुदेव की सेवा में गया तो पूज्य डॉ० श्याम लाल जी से भी ग़ाज़ियाबाद के सत्संग भवन में भेंट हुई। उस समय उन्होंने हमारे गुरु महाराज के सम्बन्ध में यह राय दी थी - " भाई साहब को पकडे रहना, वे समय के बहुत बड़े फ़क़ीर हैं । वो सब बड़े भाग्यवान हैं जिन पर इनकी विशेष कृपा है । तुम पर है ।"

(संस्मरण - डॉ० श्याम बिहारी लाल श्रीवास्तव एवं श्री हेमराज चतुर्वेदी)

oooooooooo

परम संत पूज्य डॉ० चतुर्भुज सहाय जी, मथुरा

के शिष्य श्रीमान पाल सिंह जी, शिकोहाबाद

की भाव भीनी श्रद्धांजलि

" जब कभी चलती है, बाद-ए इन्तज़ार-ए रहबरी !

सीन-ए दरिया-ए हक़, करता है एक सूरत अयाँ !!"

मानव जगत जब त्रयतापों (अर्थात आधि भौतिक, आधि देविक एवं आध्यात्मिक दुखों) से संतप्त होकर दुखी होता है, और अन्धकार में अपने त्राण पाने का कोई उपाय नहीं देखता तो अपने पथ प्रदर्शन के लिए आलोक रशिम पाने हेतु व्याकुल प्राणों से विश्वनियन्ता की ओर गुहार करता है । उस आर्तनाद-रूपी पवन के धक्के से परमात्मा-रूपी समुन्द्र के वक्ष स्थल पर एक लहर प्रकट होती है, अर्थात एक संकल्प उदय होता है । वही लहर मनुष्याकार मन अवतीर्ण होकर संसार में सद्गुरु नाम से परिचित होती है । ऐसे ही परमात्म-सिन्धु की एक उत्तुंग लहर थे - परम श्रद्धेय डॉ। श्रीकृष्ण लाल जी । यह सद्गुरु परमात्म शक्ति की अलौकिक लीला का जगत में प्रकाश करके जीवों के दुःख दारिद्र एवं अज्ञानान्धकार को दूर करके आनन्द का प्रसार करते हैं ।

समुन्द्र और समुन्द्र की लहर प्रत्यक्ष रूप में भिन्न-भिन्न दीख पड़ने पर भी जिस तरह तत्वतः अभिन्न ही हैं, उसी प्रकार ईश्वर और गुरु एक ही सत्ता के दो रूप हैं। ज्ञान स्वरुप गुरु सब विशेषणों से रहित जब अपने विशुद्ध रूप में अवस्थित होते हैं, तब वह निर्गुण, निराकार, निर्विकार, निरंजन, कूटस्थ रह कर व्याख्यात होते हैं और जब मनुष्य देहाश्रित होकर विशेष भाव में प्रकाश करते हैं तो उनको सद्गुरु नाम से जाना जाता है ।

उपरोक्त नियम के अंतर्गत ही अब से सौ साल पूर्व पन्द्रह अक्टूबर सन अठारह सौ चौरानवे ईस्वी को भारत में उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर ज़िले के सिकन्दराबाद नगर में भटनागर

कायस्थ कुलभूषण श्रीमान बाबू भगवत दयाल जी ओवरसियर साहब के पुत्र रूप में उस लहर का प्राकट्य हुआ। माता-पिता ने उसे श्रीकृष्ण लाल नाम से सम्बोधित किया ।

जीवन का उच्चतम उद्देश्य

आपने यथा समय मैडिकल कॉलेज आगरा से चिकित्सा शिक्षा की उत्तीर्णता प्राप्त की और परिवार पोषणके लिए घर पर ही प्रैक्टिस करना स्वीकार किया । आपका ध्येय केवल परिवार पोषण ही नहीं था, बल्कि संसार के भूले-भटके आर्त व दुखी मनुष्यों को इस संसार सागर से पार करना भी था ।

अपने समय के पूर्ण धनी परमसन्त महात्मा श्री रामचन्द्र जी महाराज सद्गुरु फतेहगढ़ के चरणों में अपने को निवेदित करके ब्रह्म विद्या का अभ्यास किया तथा अपनी सेवा व प्रेम से गुरु महाराज के प्रिय अग्रणी शिष्यों में स्थान प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात पूर्ण समर्पण कर गुरुपद पर सुशोभित हो, जीवों को चेताने और संसार से पार करने का भारी बोझ अपने सबल कन्धों पर लेकर वह आदर्श प्रस्तुत किया कि ' रहेगा अजर आपका नाम'।

ह्रदय की पावन निर्मलता

साधनावस्था में भी आपका ह्रदय इतना निर्मल और स्वच्छ हो चुका था कि बाहरी वातावरण या अन्तरिक्ष में निहित विचारों व वस्तुओं का असर आपके ह्रदय पर प्रत्यक्ष होता था। जैसे धुली हुई स्वच्छ चादर पर धूल का एक कण भी पड़ जाये तो मालूम हो जाता है । इसके दो दृष्टान्त प्रस्तुत हैं - एक बार आपने बतलाया था कि आप किसी बारात में गए थे। वहाँ दिन-भर बारात के प्रोग्राम में संलग्न रहे, फिर शाम को साधनाभ्यास करने का समय हुआ। आप यह सोचकर कि सब के बीच में करने पर विघ्न होने की आशंका है, एक निर्जन स्थान में, जो साफ़-सुथरा भी था, ध्यान करने लगे। आपने बतलाया कि वहाँ ध्यान करते-करते ही मैं रोने लगा। बताया कि मैं स्वयं भी आश्चर्य में था कि मैं क्यों रो रहा हूँ, लेकिन रोना बन्द नहीं होता था। वापस आने पर उस स्थान के सम्बन्ध में पूछा तो पता चला कि वह एक प्रेमी संत का स्थान है और वह संत अब नहीं रहे। उन संत के विचार-परमाणु, जो उस भूमि क्षेत्र में भरे पड़े थे, आपके शुद्ध ह्रदय पर प्रत्यक्ष हो गए ।

एक दूसरी घटना आपने कुछ इस तरह बतलायी - " एक बार मैं अपने सद्गुरु महाराज लालाजी साहब के दर्शनार्थ रेलगाड़ी से फतेहगढ़ जा रहा था । मौसम सर्दी का था, तो जिस बर्थ पर जाकर मैं बैठा उस पर एक सज्जन रज़ाई ओढ़े पहले से बैठे थे। मेरे बैठते ही उन्होंने यह जानकर कि इन्हें भी ठण्ड लगती होगी सज्जनतावश अपनी रज़ाई का पल्ला मेरे ऊपर भी डाल दिया, ताकि मुझे सर्दी न लगे ।

मगर थोड़ी देर बाद मैने महसूस किया कि मेरी तबियत सिनेमा देखने को चाहती है । चूँकि मुझे सिनेमा का बिलकुल शौक नहीं था, इसलिए मैं जैसे ही इस वृति को हटाता वह और अधिक वेग से फिर मुझे सिनेमा देखने को विवश करती। मैं परेशान हो गया । आख़िर मैने सोचा कि शायद उस रज़ाई का असर हो । मैने आहिस्ता-आहिस्ता उस रज़ाई को इस तरह दूर कर दिया कि उन सज्जन को भी रज़ाई का हटाना महसूस न हो । फिर मेरा चित्त शान्त हो गया । आख़िर में इसकी असलियत जानने को उनसे पूछ बैठा कि "आप सिनेमा देखने का भी शौक रखते हैं ?" तो उन्होंने बतलाया कि " जनाब, यदि मुझे एक वक्त का खाना न मिले तो कोई तकलीफ नहीं होती है, लेकिन सिनेमा देखे बिना मैं एक दिन भी नहीं रह सकता । " आपके ह्रदय की पवित्रता और निर्मलता का यह कैसा पुष्ट प्रमाण था ।

प्रभावशाली तवज्जोह

आपका तरीक़ा-तालीम सहल और खुशगवार था मगर आपकी तवोज्जह बहुत तेज़ और प्रभावी होती थी । एक बार मैं अपने पूज्य गुरु महाराज (परम संत महात्मा श्री चतुर्भुज सहाय जी साहब) के साथ सिन्दराबाद भण्डारे में गया था । सुबह के समय एक बगीची में जहाँ काली माता का स्थान था स्नानादि से निवृत होकर मैं व मेरे गुरु भाई श्री शादीलाल जी कुलश्रेष्ठ साहब और सबको छोड़कर ध्यान में शामिल होने के लिए चले आये ।

सत्संग के स्थान पर पहुँचे तो देखा कि आपने (पूज्य डॉ० साहब ने) सब लोगों को ध्यान प्राम्भ करा दिया था, अतः हम दोनों भी ध्यान में शरीक हो गए ।

कुछ ही समय व्यतीत हुआ होगा कि ध्यान करने वाले लोगों में से एक साधक, जिसकी आयु अठारह-बीस साल की होगी, बेतहाशा चीखने लगा । उसके मुँह और नाक से झाग गिर रहा

था। आपके संकेत पर अन्य साधक उसको लेकर एक कमरे में जाकर लिटा आये। मगर थोड़ी देर बाद ही एक और दृश्य उपस्थित हुआ कि उसी परिसर में बंधी एक भैंस जो सम्भवतः आप ही की थी, बड़े ज़ोर से कांपने लगी,और रस्सा तुड़ाकर नीचे गली में जाकर भागने लगी । कई लोग जाकर उसको पकड़ कर लाये लेकिन उसका काँपना अब भी बन्द नहीं था । उसको यथास्थान बाँध दिया गया फिर जब ध्यान भी बन्द हो गया तब वह भी शान्त हो गयी । साराँश यह है कि तवज्जोह से केवल साधक ही नहीं, अन्य प्राणी भी प्रभावित हो जाते हैं ।

आपने अपने गुरुदेव परम संत महात्मा श्री रामचन्द्र जी महाराज द्वारा प्रदत्त शक्ति का उचित प्रयोग करके सैकड़ों दीन दुखियों को इस संसार सागर में डूबने से बचाकर पार किया और अनेक असह्य कष्ट उठाकर भी इस पुण्य कार्य से कभी मुँह नहीं मोड़ा । अन्त में अपने गुरुदेव की थाती अपने सुयोग्य शिष्यों को छोड़कर यह उत्तुंग लहर तारीख़ 18-5-70 को अपने शाश्वत परमात्म स्वरुप महासिन्धु में विलय हो गयी और शिष्य व प्रेमीजन बिलखते रह गए । किन्तु परम श्रद्धेय डॉ० श्रीकृष्ण जी ऐसी महती सुधियों की निधि छोड़ गए हैं, जिनका परमार्थ पंथ में यशस्वी सम्बल अजर अमर रहेगा ।

oooooooooo

हमारे गुरुदेव भगवान दूसरे महानुभावों की दृष्टि में

- श्री कृष्णचन्द् कुलश्रेष्ठ , टूण्डला

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिभर्वाति भारत !

अभ्युत्थानम -धर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम !!

पूर्णरूपेण सत्य है । बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में समाज में अनेक कुरीतियाँ प्रचलित थीं। उसी समय पूज्य गुरुदेव डॉ० श्रीकृष्ण लाल जी महाराज का प्रादुर्भाव हुआ । आपने अनेकानेक लोगों का मार्गदर्शन किया तथा सैकड़ों लोगों की प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करके कष्टों से मुक्ति दिलाई। आपके इस प्रकार के चमत्कारों का अनुभव हम सभी भाई-बहिनों को है । आप ह्रदय के बड़े कोमल और सिध्दान्त के बड़े कठोर थे ।

आप बड़े अनुशासन प्रिय थे। इस सन्दर्भ में मुझे बताया गया कि परमसन्त डॉ० चतुर्भुज सहाय कुलश्रेष्ठ, जो गुरुदेव के गुरुभाई थे, ने सत्संग जनसाधारण के लिए खोल दिया । पात्रता का कोई स्थान नहीं रहा तथा आन्तरिक साधन भी लगभग 15-20 मिनिट का कर दिया।पूज्य श्री सेवती प्रसाद जी ने बताया कि गुरुदेव उनकी इस बात से सहमत नहीं हुए और अलहदगी अख्त्यार कर ली और 1952 के जन्माष्टमी पर्व पर टूंडला भंडारे के बाद आप फिर नहीं गए । उस समय आपके साथ पूज्य श्री सेवती प्रसाद जी, कासगंज एवं पूज्य डॉ० श्याम लाल जी, ग़ाज़ियाबाद भी थे ।

श्री पाल सिंह जी (शिकोहाबाद) भी अपने संस्मरण में बताते हैं कि एक बार गुरुदेव ने फ़रमाया (शायद 1950 में) तवज्जह केवल सत्संगियों को ही नहीं, पशु-पक्षियों को भी प्रभावित करती है । एक दिन जब गुरुदेव ने तवज्जह दी तो वहाँ बंधी हुई भैंस रोमांचित हो गयी और खूँटा उखाड़ कर भाग गयी ।

परमपूज्य पंडित मिहीलाल जी को उनके गुरुदेव ने सिकन्दराबाद गुरुदेव के पास अभ्यास के लिए भेज दिया। था। आप कहा करते थे कि उन्होंने इतना महान संत, अभ्यासी एवं प्रेमी नहीं देखा । जो भी आपके सम्पर्क में आया उसकी काया ही बदल गयी। मेरे एक गुरुभाई श्री रामसागर लाल जी ने बताया कि परमपूज्य परमसन्त डॉ० अक्षय कुमार बनर्जी गुरुदेव के

सम्बन्ध में कहा करते थे कि " He is a Guru and Guide both in one body " अर्थात वह एक शरीर में गुरु एवं मार्गदर्शक दोनों हैं।

मैनपुरी में छोटी खानकाह में एक मुस्लिम संत रहा करते थे। उस समय उनकी आयु लगभग १०५ वर्ष की थी। परमपूज्य गुरुदेव महाराज सरदार शेर सिंह के यहां ठहरे हुए थे। साँयकाल आप घूमने निकले। यह लेखक, श्री शीलचन्द्र आदि 8-10 व्यक्ति भी आपके साथ थे। फार्म हाउस से निकलते ही दोनों (गुरु महाराज तथा संत जी) मिल गए और गले मिले। दोनों की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। उस समय उन सूफ़ी संत की आयु 105 वर्ष थी । जब भी यह दास उन सूफ़ी संत के पास गया, तो उन्होंने यही कहा कि ***" तुम्हारे पीरो मुर्शिद उत्तरी भारत के क़ुतुब हैं, उन जैसा फ़क़ीर दूसरा नहीं है । "***

श्री नित्यानंद जी उर्फ़ लालाजी, आचार्य रामाश्रम सत्संग, इटावा (गुरुमुख शिष्य डॉ०चतुर्भुज सहाय जी)आपके अनुशासन और अभ्यास की आज भी प्रशंसा करते हैं। वह यह कहते रहते हैं कि सत्संग देखना है तो सिकन्दराबाद/ग़ाज़ियाबाद जाइये।यह कहावत आज भी खरी है ।

सुराही है न सहवा है न कोई जाम है साक़ी !

तेरे रिंदों की महफ़िल में ख़ुदा का नाम है साक़ी !!

श्री पाल सिंह जी (शिकोहाबाद) एवं श्री तेजसिंह जी (टूण्डला) दोनों ही डॉ०चतुर्भुज सहाय जी के गुरुमुख शिष्य हैं। श्री पालसिंह ग़ज़ल गाते थे और श्री तेज सिंह तबला बजाते थे। गुरुदेव महाराज उन दोनों को प्रेम से एक ही उपनाम 'तेजपाल सिंह' कह कर बुलाते थे। उन्होंने बताया कि गुरुदेव महाराज स्वयं भी बड़ी मधुर वाणी में ग़ज़ल आदि पढ़ते थे। आपको " अब तो मेरी बिगड़ी भी सरकार बना दीजे " - " या मुहब्बत की मन्ज़िल पै ओ जाने वाले " आदि ग़ज़लें बहुत प्रिय थीं ।

डॉ० हरनारायण सक्सेना के अनुसार लालाजी महाराज के चचेरे भाई डॉ० कृष्ण स्वरुप जी जयपुर रहते थे । एक बार जब गुरुदेव आपके यहाँ गए तब उन्होंने अपने गुरुदेव की एक अपनी लिखी हुई पुस्तक दिखाई और कहा कि मोतियाबिंद इतना बढ़ गया है कि अपने इस लिखे हुए को भी नहीं पढ़ पाता। इसमें कुछ रह गया हो तो जोड़ देना और हो सके तो छपवा देना। "

गुरुदेव ने उस पुस्तक को 'फ़क़ीरों की सात मन्ज़िलें ' नाम से प्रकाशित कराया। यह पुस्तक लगभग हम सभी भाई-बहिनों ने पढ़ी है ।

एक घटना 1971की है । आगरा के श्री प्रभुदयाल जी के यहाँ से यह दास श्री छगन किशोर जी, श्री सुरेशचंद्र आदि चौराहा नालबंद पर बस की प्रतीक्षा में खड़े थे। बस जब काफी देर तक नहीं आयी तो हम सब वहीँ एक सूफ़ी संत "क्वारे मियाँ "के दर्शनार्थ चले गए। आप भी नक्शबंदी (चक्रबेधी) वंश के थे। जब आपने हमें देखा तो अपने पलंग पर से उठे और एक मूंढा उठाते हुए उस पर बैठने के लिए कहा और तत्काल कहा, " मास्टरजी यह कुर्सी आपके लिए नहीं वरन यह आपके पीरोंमुर्शिद की ताज़ीम (सम्मान) में है जो आपके सर पर बैठे हैं। यह थी शान मेरे गुरुदेव भगवान की। उनकी दया व कृपा के कारण ही लोग इस दास को इतना स्नेह व प्रेम देते थे, जिसके वह योग्य नहीं है ।

यह घटना 1969 की है । एक दिन आगरा गया हुआ था। फ़ब्बारा से रिक्शा द्वारा राजामंडी जा रहा था। उसी रिक्शे में एक सज्जन और बैठ गए। उनकी आयु लगभग 65 वर्ष रही होगी। उन्होंने थोड़ी देर बाद पूछा-"क्या तुम फतेहगढ़ के श्री रामचंद्र की औलाद हो।?" दास ने बताया कि वह सिकन्दराबाद के परमपूज्य डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज का शिष्य है । वह बहुत प्रसन्न हुए। बहुत पूछने पर भी उन्होंने अपना परिचय नहीं बताया। उतरते समय उन्होंने केवल इतना कहा कि, "मैं तुम्हारा बाबा लगता हूँ।" दास ने भी चरणस्पर्श किया।

एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है । पूज्य पंडित मिहीलाल जी कई वर्षों से अस्वस्थ थे। पूज्य सरदारजी भाई साहब, श्री जय नारायण गौतम जी एवं यह दास पंडित जी को देखने गए। जब पूज्य सरदारजी भाई साहब ने कहा -" मैं आपका छोटा भाई हूँ, आशीर्वाद दीजिये" इस पर पूज्य पंडित जी ने कहा, " आप ईश्वर हैं, ईश्वर को आशीर्वाद।" यह वाक्य पंडित जी ने दो- तीन बार कहे । उस समय पंडितजी कौमा की स्थिति में थे। अब स्वयं ही सोचिये कि ऐसे ईश्वर रूप परम् पूज्य सरदारजी भाई साहब के गुरुदेव भगवान कितने महान, वंदनीय एवं पूज्यनीय रहे होंगे, दास के पास शब्द नहीं हैं जिनसे उनका वर्णन किया जा सके ।

और भी अनेक व्यक्ति हैं जिन्होंने गुरुदेव की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । उनमें डॉ०जितेन्द्र वर्मा (पंतनगर विश्वविद्यालय) डॉ०बी० एन० सहाय (पटना विश्वविद्यालय) डॉ० राधावल्लभ गुप्ता (के० आर० कॉलेज, मथुरा) आदि प्रमुख हैं । अंत में यही प्रार्थना है :-

मोहि न नाथ बिसारियो, लाख लोग मिलि जाहिं ,

हमसे तुमको बहुत हैं, तुमसे हमको नाहिं !!

oooooooooooo

हमारे जीवनमुक्त भाग्यविधाता

परम् पूज्य डॉ० श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

-डॉ० करतार सिंह, नई दिल्ली

परम् पूज्य गुरुदेव की जन्म-शताब्दी के महत्वूर्ण सुअवसर पर कोई विशेष लेख, संस्मरण या श्रद्धांजलि के भाव व्यक्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है । आपके पावन सम्पर्क, सानिध्य में बिताये स्वर्णिम समय की साक्षात अनुभूतियों तथा जीवनोपरान्त भी परोक्ष कृपाओं की स्मृतियों का इतना बड़ा भण्डार है कि उसकी एक-एक बात हमारी - सभी कृपापात्रों की - अमूल्य निधि है । तो भी, कर्तव्य पालन की दृष्टि से अपनी मनोभावना को प्रकट करने वाले प्रभावशाली सुधियों के आनन्दमय कुछ संस्मरण उन्हीं को पुनः समर्पित हैं ।

प्रथम भेंट का सौभाग्य

परम् पूज्य गुरु महाराज से मेरी पहली मुलाक़ात सन 1951 में हुई। मेरे मित्र बाबू श्री रामजी वकील, मुझे यह कहकर ' चलो एक परम् संत के दर्शन कर आयें' बाबू गिरवर कृष्ण जी के मकान पर ले गए । वहाँ सत्संग हो रहा था । कुछ विशेष आकर्षण का अनुभव हुआ । सत्संग की समाप्ति पर वकील साहब ने जाने की आज्ञा माँगी। गुरुदेव ने इज़ाज़त दे दी । मैने भी अनुमति चाही तो आपने कहा - " आप रुकिए।" इन दो शब्दों में अद्भुत प्रेम था । कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात् गुरुदेव कहने लगे कि ' हम आपके घर चलेंगे' । आप मेरे साथ घर आये, भोजन किया, बड़े प्रसन्न हुए ।

अनुपम कृपा की अनुभूति

इस मुलाकात के बाद, आप जहाँ भी जाते मुझे साथ ले जाते । 1952 में आपकी विशेष कृपा हुई । एक समय मैने अपने आपको प्रकाश के एक महान सागर में पाया । इस अवस्था को बर्दाश्त न कर सका और घबरा गया। होश आने पर मैने एक असीम आनन्द का आभास

किया। आपके चरणों में पत्र डाला। आपने उत्तर दिया - ***" आपको पहले ही दिन जन-सेवा के लिए चुन लिया था । वह बड़ा ख़ुशक़िस्मत है जिसको वह (परमात्मा) इस काम के लिए चुन लेता है । सबसे बड़ी ख़िदमत यह है कि गिरे हुए और भटकते हुए इन्सान को राहेरास्त (सीधे रास्ते) पर लाया जाए । "***

मन में बार-बार चाह उठती थी कि ग्रह त्याग कर सन्यासी हो जाऊँ। गुरुदेव से आज्ञा माँगी तो उन्होंने लिखा

" आप दुकान पर मालिक की हैसियत से काम न करें, बल्कि एक मुलाज़िम की हैसियत से रहें - और हैं भी आप मुलाज़िम। ग़लती से अपने आपको मालिक समझे हुए हैं। अगर दुकान आपकी होती तो आपके साथ आयी होती, आपके साथ जाती, पर क्या ऐसा है ? नहीं। यही आपकी परेशानी का बायस (कारण) है ।" आप फ़रमाया करते थे कि तपस्या जंगलों में जाकर नहीं होती। हमारे यहाँ तप अपने मन को साधने में है । कुछ अमूल्य निर्देश लिखे जाते हैं,

जैसे -

1. किसी को दोष दृष्टि से मत देखो।

2. जो आपसे बुरा सलूक करें उनसे क्रोधित न हों, अन्तर में टटोलो कि क्या आपकी गलती के कारण तो दूसरा आपसे दुर्व्यवहार नहीं करता ?

3. सहनशीलता बढ़ानी चाहिए। घृणा करने वाले को प्रेम से अपना बनाओ ।

4. प्रत्येक व्यक्ति से प्रेम करो । सदैव यह विचार करो कि अन्य व्यक्ति भी आपसे प्रेम करते हैं।

5. अपना चरित्र पहाड़ की चट्टान की तरह बनाओ। तब परवाह मत करो कि लोग क्या कहते हैं।

एक बार कुछ ख़ालीपन (शून्यता) का अनुभव हुआ । गुरुदेव ने कहा - *" ये अच्छी अवस्था थी । चिन्ता मत करो, अच्छा है थोड़ी देर रही ।, परन्तु आनन्द की अवस्था भी ममता है, फँसाने वाली होती है । उससे भी आगे चलना चाहिए । राज़ी-बा-रज़ा की स्थिति में आओ ।"*

गुरुदेव का निःस्वार्थ प्रेम व त्याग

आप ज़रूरतमन्दों की सहायता करने के लिए सदैव तत्पर व उत्सुक रहते थे। कभी-कभी तो बेचैन हो जाते थे। अगस्त 1956 में डॉ०श्यामलाल जी ने आपको लिखा, " मैं आज तक यह नहीं समझ सका कि वो कौन सी चीज़ मुझमें है कि आपकी इतनी दया और बुज़ुर्गों का हाथ मेरे ऊपर रहा। मैं अपने को टटोलता हूँ, तो किसी का न हमदर्द, न शुभ इच्छुक, और न मददगार पाता हूँ, फिर भी मुझ पर इस क़दर आपकी कृपा है । उस वक्त मैं भी घबरा गया था। शुक्र है, आपकी दुआ क़बूल हुई ।"

गुरुदेव किसी को दुखी नहीं देख सकते थे । 22-11-65 के पत्र में आपने लिखा - *" मुझको मालूम हुआ कि आपकी तबियत ठीक नहीं है, ये भी उसकी कृपा है । बुरे कर्म इसी तरह कटते हैं। इसलिए घबराना नहीं चाहिए । हर हालत में शुकराना वाज़िब है । हर हालत में पूरी श्रद्धा से उसका नाम लेते रहो और ध्यान रखो कि वो हर वक्त तुम्हारे साथ है, और दुनिया से पीछे हटते जाओ। बग़ैर तर्क़ (त्याग) के प्यार अधूरा है और जब सब छोड़ना ही है, तो क्यों न धीरे-धीरे छोड़ते चलो । "*

सदा दुःख हरने को तत्पर

इन दिनों कुछ स्थिति ऐसी हो गयी थी कि मैं घबरा गया था । आपने लिखा - *" आपकी परीक्षा का यह समय है । देखना फ़ेल (असफल) न होना। उस ईश्वर पर भरोसा रखो, जो भी होगा आपके हित के लिए होगा । आप मत आइये। मैं आपके लिए प्रार्थना कर रहा हूँ । " आपकी असीम कृपा हुई, स्थिति धीरे-धीरे सुधरती गयी ।*

बाबू प्यारे मोहन जी को गुरुदेव अक्सर मिलने जाया करते थे। कहा करते थे, ' कान्ती के सन्तान नहीं है । सत्संग ही इन बेचारों का वंश है । इससे उनको (कान्ती बहन व प्यारे मोहन जी को) राहत मिलेगी" । डॉ० महेश चन्द्र जी की धर्मपत्नी अक्सर बीमार रहती थीं, इसलिए आप अक्सर आगरा जाया करते थे ।

भाइयों को कष्ट में देखकर गुरुदेव दुःखी हो उठते थे। उनका दुःख अपना दुःख समझते थे। तन, मन, धन से, जैसी भी स्थिति हो, उनकी सहायता करते थे। कुर्बानी का अंश आपमें इतना

था कि मैने अन्य किसी पुरुष में अब तक नहीं देखा। मेरी धर्मपत्नी मौत के पंजे में थी, गंगाराम हस्पताल में बैठे थे, आपने कहा - *" बहन को बचाने के लिए ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना की, अपनी शेष आयु भी अर्पण की है ताकि वो ठीक हो जाय, परन्तु ऊपर से निराशाजनक उत्तर मिलता है । अब वो कुछ घंटों की मेहमान है ।"*

सत्संगी जनों की सेवा

गुरुदेव सत्संगियों को अपने बच्चों से भी अधिक प्रेम करते थे। अपने गुरुदेव की सन्तान समझते थे। कभी -कभी तो कह देते थे कि ये हमारे गुरु हैं, उसी रूप में उनकी सेवा करते थे। प्रेमियों से कहा करते थे, " जो कुछ हमारे पास है सो आपका है, यदि इससे भी अधिक हो तो वो भी हम न्योछावर करने के लिए हमेशा तैयार हैं ।"

अगस्त 1958 में, मैं आपकी सेवा में ग़ज़ियाबाद गया। पहुँचते ही सेवक को आराम करने के लिए कहा। कुछ देर बाद आपने कहा कि आप स्नान कर लीजिये। एक नई धोती मुझे दी। मैं ग़ुसलख़ाने में चला गया । वहाँ बर्तन व जल रखे हुए थे। मैं अपना जूता ग़ुसलख़ाने के बाहर छोड़ गया था। जब मैं स्नान करके निकला तो चकित रह गया, जूता कमरे में रखवा दिया गया था, बाहर मेरे लिए खड़ाऊं रखी मिलीं। सत्संगियों के स्नान के लिए स्वयं जल रख दिया करते थे - उनके लिए चाय भी स्वयं बना दिया करते थे। सत्संगियों को अपना परिवार समझते थे और कहा करते थे कि उनकी सेवा गुरु-सेवा है । और ऐसे ही प्रत्येक की सेवा करते थे ।

आपकी क्षमाशीलता

पूज्य गुरुदेव क्षमा की सजीव मूर्ति थे । एक बार मुझसे कुछ गलती सी हो गयी। समझाते हुए आपने कहा -" शत्रु के मुँह पर थूकने पर भी हज़रत अली ने क्रोध नहीं किया था । क्रोध से अपना ही मन अशान्त होता है । इसलिए संयम में रहना चाहिए ।"

योग्य पात्रों को शिक्षा

सन १९५८ के भण्डारे पर कुछ व्यक्तियों को आपने शिक्षा देने की आज्ञा प्रदान की। उनसे कहा कि -

1. सेवा करना परन्तु अपनी सेवा न कराना।

2. पूजा का धन अपने ऊपर व्यय न करना - यदि भेंट कभी लेनी भी पड़े तो उसे किसी की सहायता में खर्च कर देना ।

3. अपना चरित्र ऊँचा रखना ताकि औरों पर प्रभाव पड़े ।

4. भाइयों के दुःख में उनकी सहायता करना ।

5. किसी का मन, वचन, कर्म से दिल न दुखाना ।

6. भाइयों में परस्पर प्रेम उत्पन्न करना। हमारे यहाँ पहले ईश्वर या गुरु से प्रेम पैदा करते हैं।

7. साधन में - यानी सुरत-शब्द-योग में -उत्साह, सोज़ व प्रेम होना चाहिए। प्रत्येक सांस पर ध्यान रखना चाहिए कि अभ्यास हो रहा है ।

8. मन तथा इन्द्रियों को वश में लाना है ।

चमत्कार व तमाशे

आप एक बार मौज़ में बैठे थे, एक सत्संगी को पत्र लिखा कि उसका पुत्र पास हो जायेगा तथा दूसरा लड़का क्षय रोग से निरोग हो जायेगा। ऐसा ही हुआ, पहले लड़के ने प्रश्न -पत्र ठीक नहीं किये थे और दूसरा लड़का ठीक होने वाला नहीं था। जब सन्त आत्मा के स्थान पर होता है, तब वह जो कहता है वैसा ही हो जाता है । सन्त से करामात, कभी- कभी इच्छा न रखते हुए भी, अनजाने में हो जाती है । आप फ़रमाया करते थे - " करामात दिखा कर अपनी

प्रसिद्धि करवानी या धन बटोरना, ये सन्त के लिए वाज़िब नहीं है । करामात फ़क़ीरी नहीं है । यदि सेवक के पास रिद्धि-सिद्धि आती है तो गुरु उनसे वंचित करा देते हैं, ताकि परमार्थी में अहंकार न आ जाए।"

पूज्य बनर्जी साहब का सन्सर्ग

सन 1960-62 में गोरखपुर पहुँचने पर गुरुदेव को शिव भगवान के दर्शन हुए। आदरणीय बनर्जी साहब से पहली बार मुलाक़ात हुई तो आपने कहा कि, " उनकी शक्ल भगवान शिव जैसी लगती है ।"

एक रोज़ हम पूज्य बनर्जी साहब के दर्शन करके लौट रहे थे, तो आपने कहा, " आज ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे तमाम श्रष्टि हमसे निकल रही हो।" दूसरे दिन भी मौज़ में थे, फ़रमाया, " हमारे तथा परमात्मा में क्या अन्तर है ?" कुछ क्षण मौन धारण करने के पश्चात् प्रश्न किया - " श्रष्टि सुखरूप है या दुःखरूप ?" फिर स्वयं ही उत्तर दिया - "यदि हमारी सुरत आत्मा पर है तो श्रष्टि सुखरूप प्रतीत होती है और यदि यह मन तथा बाहर की ओर हो तो दुःखरूप ।"

पारमार्थिक लक्ष्य व अभ्यास

गुरु कौन है ? आप कहते थे, " *असली गुरु परमात्मा है । उसके चरणों से प्रकाश तथा शब्द जारी हुआ। यह निचले दर्ज़े के गुरु हैं। इसका भाव यह है कि शब्द 'शिष्य' है तथा ईश्वर प्रेम 'गुरु' है । इसका भाव यह है कि शब्द के पश्चात् शरीर बना । इसीलिए साधना के प्रारम्भ में गुरु के रूप का ध्यान किया जाता है, परन्तु यह सदैव ऐसा नहीं किया जाता। जिस समय प्रकाश या शब्द खुल जाये, तब इनका ध्यान करना चाहिए। जब प्रेम का उदय हो जाये तब उसमें लीन हो जाना चाहिए। प्रत्येक स्थान व स्थिति में गुरु का ख्याल अवश्य होना चाहिए। जैसे एक पिता अपनी कन्या को पढ़ा लिखाकर तैयार करता है और उसे उसके पति को अर्पण कर देता है, ऐसे ही गुरु अपने शिष्य की गढ़त करके ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देता है ।*

असली गुरु ईश्वर है । परन्तु बिना सीढ़ी के छत पर नहीं चढ़ा जा सकता, इसीलिए गुरु की आवश्यकता होती है ।" आपका कहना था - *" गुरु वह होना चाहिए जिसने आत्म-स्थिति प्राप्त कर ली हो, या उसकी नज़दीकी (सामीप्य) हासिल कर ली हो। ऐसे व्यक्ति का मन अपने वश में होना चाहिए। उसकी कथनी तथा करनी एक जैसी होनी चाहिए ताकि जैसी अपनी अवस्था है वैसी शिष्यों की भी कर सके। यह आवश्यक नहीं कि वह व्यक्ति अपने को 'गुरु' कहलाये, वह भाई, पुत्र, सेवक सखा आदि का सम्बन्ध रखकर भाइयों की सेवा कर सकता है । ऐसा करने से अहंकार नहीं* होता । "

कुछ और अनमोल बातें

o। एक बार मैने आपसे पूछा कि मन को कैसे काबू किया जाये? अपने प्रेम से कहा , " पिछले संस्कारों के कारण मन की वृत्तियाँ काम करती हैं। तमाशबीन (दर्शक) बन कर मन की हरकतों को देखो - यह मत समझो कि वह कर्म आपके हैं। कर्म जिनके गहरे संस्कार बन चुके हैं, वह तो भुगतने ही हैं, परन्तु यदि द्रष्टा के रूप में देखो तो दुःख नहीं होगा। अपने आपको कर्ता मत समझो। जैसे एक लट्टू को छोड़ दिया जाय, जब तक उसमें चाल है, वह घूमता रहेगा। यही अवस्था संस्कारों की है, जिस समय इनका अन्त हो जायेगा, शान्ति हो जाएगी। द्रष्टा तथा अकर्ता बने रहो, इससे संस्कार नहीं बनेगे। यदि कोई ऐसा नहीं करता, तो संस्कार बनते रहते हैं और कभी शान्ति नहीं मिलती।

० " ग़लती करके पश्चाताप करो। ईश्वर से क्षमा के लिए प्रार्थना करो। ग़लती करके justify (उसे सही साबित) मत करो कि आप ठीक हैं, यानी उसे उचित मत कहते रहो। यह मूर्खता है ।"

० " स्थूल संस्कारों से बचने के लिए गुरु का ध्यान करना चाहिए, सूक्ष्म संस्कारों के लिए 'सुरत शब्द अभ्यास' तथा कारण रूप संस्कारों से मुक्त होने के लिए आत्मा में लय होना चाहिए ।"

० " एक बार एक प्रेमी भाई ने शिकायत की कि उसको ईश्वर दर्शन क्यों नहीं होते? गुरुदेव ने उससे पूछा - "क्या अपकी खुदी मिट गयी है?" साधक चुप हो गया। आपने फ़रमाया

- " जबतक अन्तर में ख़ुदी तथा इच्छाएं हैं, आत्मा का साक्षात्कार होना नामुमकिन है । इसलिए अपने आपको मिटा दो तथा ईश्वर में पूर्णता से लय कर दो । अहंकार रहित होकर सब कर्म करो और उनके फल ईश्वर के चरणों में अर्पण कर दो। ऐसा करने से ही आत्मा का विकास होगा और ईश्वर के दर्शन करने के क़ाबिल (योग्य) हो सकोगे ।"

उन महामना महात्मा की पुण्य स्मृति में

समर्पित श्रद्धा के फूल

- ***डॉ॰ महेश चन्द्र, ग़ज़ियाबाद***

हे परम् पिता,

आपके चरणों में शत-शत प्रणाम।

मेरे लिए यह कितने दुर्भाग्य की बात थी कि १८ मई सन १९७० को आपके दर्शन न हो सके। मैं जब ग़ज़ियाबाद से चला तो रास्ते में रेल का फाटक बन्द मिला । कुछ देर में गाड़ी आई और निकल गयी। फाटक खुलने पर जब मैं आगे बढ़ा तो सामने अपशकुन हुआ। मेरा माथा ठनका और जब आपके द्वार पहुँचा तो मालूम हुआ कि १५ मिनिट पहले आप पर्दा का चुके थे । केवल आपका क्षीर्ण शरीर मौजूद था। चेहरे पर अनन्त शान्ति की वही अनुपम झलक प्रकाशित थी जो मैं सदा से निहारता चला आया था। जिसे निहार-निहार कर तृप्ति नहीं होती थी और उस अतृप्ति की तड़प आजीवन रहेगी।

आप इतने महान थे, इतने विशाल हृदय थे, ऐसे प्रेम-रूप थे कि आपको कोई श्रद्धांजलि अर्पित करना मानो सूर्य को दीपक दिखाना है ।आपकी आज्ञा का उल्लंघन न हो, यही मेरी तुच्छ श्रद्धांजलि है ।

आपकी शिक्षा, जहाँ तक मेरा ।तुच्छ अनुभव है, शब्दों द्वारा नहीं होती थी। जो आप अपने प्रेमियों को बख्शते थे, उसे पहले स्वयँ करके दिखाते थे । कितना ऊँचा था आपका आदर्श। बच्चों में आप बच्चे बन जाते थे । बच्चों को कहानियाँ पसन्द होती हैं। आप बच्चों को शिक्षाप्रद कहानियाँ सुनाते और बच्चे भी सरल स्वभाव से आपको कहानियाँ सुनाते। मैं भी एक अबोध बालक सा हूँ, आपको नहीं समझ पाया क्योंकि मैं बुद्धिहीन हूँ, ज्ञानविहीन हूँ। लो, परदे में ही सही, एक छोटी सी कहानी सुनाता हूँ - एक तोते की कहानी।

किसी घर में एक तोता पिंजरे में क़ैद था। वह अपनी मुक्ति के लिए तड़पता और फड़फड़ाता था। लोहे के पिंजरे में चोंच की ठोकरें मार-मार कर उसकी चोंच घिस गयी थी। किन्तु

न वह पिंजरा टूटता और न तोता आज़ाद होता था। एक बार उस घर में भगवत कथा का आयोजन हुआ जो कई दिन चला। पहले ही दिन एक श्रोता ने बताया कि एक महान संत हमारे नगर में पधारे हैं जो नदी किनारे रहते हैं। तोते ने यह बात सुनी और उस श्रोता से कहा - " हे देव ! जब आप उन संत जी महाराज के दर्शन करने जाएँ तो मुझ अभागे का प्रणाम निवेदन कर दें और उनसे पूछें कि संतों का अवतार तो जगत उद्धार के लिए होता है, एक अभागा तोता पिंजरे में क़ैद है, आपकी सेवा में आने में असमर्थ है । कृपा करके कोई ऐसी विधि बताइये जिससे उध्दार हो और उसको पिंजरे से मुक्ति मिल जाये।

उस व्यक्ति ने संत जी से तोते की बात कह दी। उस समय संत जी नदी में स्नान कर रहे थे । तोते का सन्देश सुन उनका शरीर निर्जीव-प्राय सा हो गया और नदी में बहने लगा जैसे मुर्दा बहता है । किनारे पर खड़े दर्शक अवाक रह गए और उस सन्देश वाहक से कहने लगे कि तूने यह कैसा सन्देश लाकर दिया कि इनकी मृत्यु हो गयी लगती है । वह मनुष्य भी बड़ा दुखी हुआ और रोता हुआ वापिस लौटा। तोता उसके वापिस आने की बाट जोह रहा था। उसने उस मनुष्य से पूछा - "देव ! मेरे निवेदन के उत्तर में संत महात्मा ने क्या कहा ?" वह मनुष्य फूट-फूट कर रो पड़ा और बोला , " अरे अभागे तोते, तेरी बात सुनकर उन संत जी का शरीर प्राण विहीन हो गया और नदी में बह गया। पता नहीं कि वे मूर्छित हुए या उनके प्राण निकल गए। हाय ! यह कैसा दुर्भाग्य है कि तेरे इस अभागे सन्देश को मुझे ले जाना पड़ा।"

तोता संस्कारी जीव था। संत जी की कृपा से उनके मूक सन्देश को समझ गया और पिंजरे में ही लोट-पोट होकर मृतप्राय हो गया। दर्शकों को और भी अधिक आश्चर्य हुआ। कुछ देर बाद घर के मालिक ने समझा कि तोता तो मर गया, अब इसे पिंजरे से निकल कर फेंक देना चाहिए। अतः उस तोते को मरा हुआ समझ कर छत पर डाल दिया। तोता उड़ गया। एक संत के व्यावहारिक उपदेश से पिंजरे से तोते की मुक्ति हो गयी। ऐसा ही व्यावहारिक उपदेश आपका भी होता था।

हे संत शिरोमणि !

दया और कृपा का सागर सदैव आपके चरणों में लहलहाता रहता। आपका उपदेश था कि संत और तोते की कहानी जैसे कि ज़िन्दगी में ही मौत का अनुभव कर लो।

" ज़िन्दगी पर मरने वाले, ज़िन्दगी में मरके देख "

आपके जीवन में हमने इसे प्रत्यक्ष पाया और वही सन्देश आप हम लोगों के लिए अनुकरण हेतु छोड़ गए हैं।

हे प्रेममूर्ति !

आपकी जय हो। आपके श्री-चरणों में बैठकर प्रेम की शीतल धारा का ऐसा अनुभव होता था कि दुनियाँ बिसर जाती थी। कण्ठ गद-गद हो जाता था, और आँखे भीग जाती थीं। कुछ पता नहीं चलता था कि इसका कारण क्या है । पता भी क्यों कर चले, क्योंकि अपने श्रीमुख से स्वयँ ही तो बताया था - *" असली प्रेम वह है जिसके बिना रहा भी न जाये।* "

हे महादानी !

आपकी क्षण-क्षण पर होती कृपा का वर्णन करने में वाणी मूक और असमर्थ है । आप कहा करते थे कि संत तीन तरह के होते हैं - एक तो वे जो दुनियाँ दे सकते हैं, दूसरे वे जो दीन (परमार्थ) दे सकते हैं और तीसरे वे जो दीन और दुनियाँ दोनों देते हैं, किन्तु ऐसा बिरला ही कोई संत होता है । हे परमगुरु ! आप तो ऐसे ही महापुरुष थे जिन्होंने दीन और दुनियाँ दोनों ही बख्शी। इस दास की दुनियाँ में क्या हैसियत थी ? आपने किन्तु आपकी दात के प्रभाव से उसकी तो दुनियाँ ही पलट गयी। दीनता भी आपने ठूँस-ठूँसकर भरना चाहा, पर मेरे साथ तो यह बात हुई -

" तेरे करम से बेनियाज़, कौन सी शै मिली नहीं !

झोली ही मेरी तंग है, तेरे यहाँ कमी नहीं !!"

मैने प्रत्यक्ष देखा कि आपके प्रेमियों पर सदा यही अनुकम्पा रही कि आपने दुनियाँ भी दी और दीन भी।

हे युग पुरुष !

आप जब तक शरीर धारण किये रहे तब तक अपनी अलौकिक ज्योति से सबका मार्ग प्रशस्त करते रहे। अब यह दिव्य ज्योति हमारी स्थूल आँखों को दिखाई नहीं देती। वह ज्योति उस अखण्ड, अनन्त ज्योति में विलीन होगयी है जिसका वह अंश थी। हमें विश्वास है कि हम भूले-भटकों को सदा मार्गदर्शन करेगी।

हे परम संत !

आपकी जय हो। आप सत्य का रूप थे, सगुण रूप में निर्गुण का अवतार थे । आप धन्य हैं और धन्य हैं वे माता-पिता, कुल और नगर जहाँ आपका पवित्र जन्म हुआ। आपके पल-पल के अहसानों को और निरन्तर बरसती कृपा को हम कैसे भुला सकते हैं ? आपके पवित्र उपदेश हमारे उर-अन्तर में आज भी उसी तरह गूँज रहे हैं जैसे आपकी मौजूदगी में गूँजते थे । जब तक आप जीवित रहे, हमें आपका ही सहारा रहा और अब जब मौजूद नहीं हैं तो भी आप ही के सहारे पर आश्रित हैं।

असतो मा सदगमय,

तमसो मा ज्योतिर्गमय !

मृत्योर्मा अमृतं गमय,

oooooooo

प्रेम के साकार स्वरुप : हमारे पूज्य गुरुदेव

श्री कृष्ण मुरारी लाल श्रीवास्तव, दिल्ली

मुझे प्रथम बार परमपूज्य गुरुदेव जी के दर्शन करने का अवसर 1958 में सिकन्दराबाद के वार्षिक भण्डारे पर मिला। मैं तो वहाँ उनके दर्शनों के विचार से नहीं गया था वरन अपने बड़े भाई, श्री प्यारे मोहन, से मिलने के लिए गया था। जब मेरे भाई ने मुझे परमपूज्य गुरुदेव जी के सम्मुख प्रस्तुत क्या तो वे मेरे ऊपर क्रोधित होकर बोले, " यह दुनियाँ में कुछ नहीं कर सकता।" दूसरे दिन प्रातः फिर जब मैं उनके सम्मुख गया तो वही शब्द फिर उन्होंने नाराज़गी में कहे।

अहं का भाव मेरे अन्दर सदा से बहुत प्रबल रहा। मैं किसी की बात सहन करने में अपने को बिलकुल असमर्थ पाता था और क्रोध में उबल पड़ता था, लेकिन परमपूज्य गुरुदेव जी के क्रोध ने तो मेरे मुँह पर ताला लगा दिया। ऐसा क्यों ? इस बात पर मुझे आश्चर्य होता था। बात असल में यह थी कि उनके क्रोध में कुछ ऐसा प्रेम छिपा हुआ था कि मेरी बोलती ही बन्द हो गयी। यह सब उनके असीम प्रेम की ही महिमा थी कि मैं कुछ बोल न सका। वे प्रेम की साक्षात् मूर्ति थे । इसी कारण से तो सभी भाइयों को सदा यही अनुभव होता था कि वह उन्हीं को सबसे अधिक प्रेम करते हैं।

प्रेम के मार्ग में होने को मिटा देना पड़ता है । इसमें अहं का विनाश हो जाता है ।

' जब हम हैं तो गुरु नहीं, जब गुरु हैं हैं हम नाहिं !

प्रेम गली अति साँकरी । या में दो न समाहिं !!

यह कभी भी सम्भव नहीं है कि हम अपनी इच्छाओं तथा अहँकार को जीवित रखते हुए गुरु जैसे हो सकें। और जब तक गुरु जैसे न हो सकेंगे - हमारा उद्धार नहीं हो सकता। गुरु समान होने के लिए हमें उनके बताये मार्ग पर चलना होगा। ' जब हम गुरु के बताये मार्ग पर एक क़दम चलेंगे तो वह हमारी ओर सौ क़दम चलेगा।" इस वाक्य पर हम लोगों को आश्चर्य नहीं होना चाहिए क्योंकि यदि हम सांसारिक वस्तुओं या विद्याओं की ओर देखें तो यही पायेंगे

कि जितनी मेहनत हम उन्हें पाने के लिए करते हैं उतनी ही जल्दी उनकी उपलब्धि होती है । फिर यह विद्या तो सभी विद्याओं से बढ़कर है ।

प्रेम दिन प्रतिदिन बढ़ता रहे इसके लिए गुरुदेव की सबसे पहली शिक्षा थी कि - *" हमें पहले गुरु में पूरा विश्वास लाना पड़ेगा। यह आवश्यक नहीं कि उद्धार के लिए हमें जो भी मिले उसे हम गुरु बना लें। गुरु बनाने के पहले हमें खूब देख लेना चाहिए किअमुक व्यक्ति गुरु बनाने योग्य है या नहीं। सबसे पहले सरल पहचान यही है कि उस व्यक्ति के पास बैठने से शान्ति प्राप्त होती है या नहीं। यदि शान्ति मिलती है तो वह अवश्य गुरु बनाने योग्य है ।"* और सौभाग्य से हमें ऐसे ही गुरुदेव मिले जिनके प्रेम-स्वरुप ने अद्भुत शान्ति और आनन्द दिया।

गुरु से प्रेम प्राप्त होता है - पहले सेवा से फिर गुरु जिन लोगों को अपना समझता है उनसे प्रेम उत्पन्न होता है, यानी सत्संगी भाइयों से। वैसे तो गुरु सँसार के सभी व्यक्तियों को अपना समझता है लेकिन यह गुण शुरू में नज़र नहीं आता। जब हमारा प्रेम दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है और अभ्यास में अधिक प्रगति हो जाती है तब यह गुण नज़र आने लगता है । इसलिए हम लोगों को चाहिए कि हम अपने भाइयों से प्रेम करें।

प्रेम प्राप्त करने के लिए हमें उनकी सेवा करनी चाहिए। सेवा करने के लिए हमें त्याग करना होगा। त्याग केवल पैसों का नहीं होता। पैसों के त्याग की अपेक्षा विचारों का त्याग करना प्रायः अधिक कठिन होता है । जब तक हम अपने विचारों का त्याग करके अपने भाइयों के विचारों के अनुकूल नहीं बनायेंगे तब तक कैसे उनसे प्रेम कर सकेंगे ? विचारों के त्याग से ही हम अपने अहं भाव के ऊपर क़ाबू पा सकते हैं। भाइयों से प्रेम करने के लिए अपने विचारों का त्याग में यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि कोई कार्य धर्मशास्त्र के विरुद्ध न हो। और इसके लिए अपने को सदा सेवक समझना चाहिए।

भाइयों से प्रेम करने के लिए विचारों का त्याग तभी सम्भव है जब हम तम से हटकर रज पर और रज से हट कर सत पर चलने की कोशिश करें। जब तक हम तम और रज से हटकर सत पर नहीं आ जाते तब तक अहं पर क़ाबू पाना बड़ा ही कठिन है और जब तक अहं पर क़ाबू नहीं होगा, हम भाइयों से प्रेम न कर सकेंगे। प्रेम से ही हम भाइयों को जीत सकते हैं।

एक बार जब प्रेम उत्पन्न हो गया तो फिर मार्ग सरल हो जाता है । प्रेम में बदले की भावना कभी भी नहीं आनी चाहिए।

भाइयों से प्रेम जब पराकाष्ठा पर पहुँच जायेगा तभी यह सम्भव हो सकेगा कि हम सभी अन्य प्राणियों से प्रेम करें। ऐसा पाया जाता है कि ज़रा सी कोई बात अपने विचारों के अनुकूल नहीं हुई कि हममें घृणा की भावना उत्पन्न हो जाती है । जब कोई अन्य मनुष्य अपने विचारों के अनुकूल नहीं होता तो हमें उससे घृणा करने से पहले यह खूब अच्छी तरह देख लेना चाहिए कि कहीं हम ही तो ग़लती पर नहीं हैं क्योंकि प्रायः अपना प्रतिविम्ब दूसरे में दिखाई देता है ।

मुझे याद है कि एक बार अपने घर में ही कुछ असन्तुष्टता थी। असन्तुष्टता दूर होने के पश्चात् हम लोग परमपूज्य गुरुदेव के दर्शनों के लिए सिकन्दराबाद पहुँचे। सिकन्दराबाद पहुँचने पर ज्यों ही मैने परमपूज्य गुरुदेव के पैर छुए वह कह उठे कि " *तुम चाहते हो कि दुनियाँ तुम्हारी जैसी हो जाये, यह कैसे सम्भव है । तुम्हें अपने को दुनियाँ के मुआफ़िक (अनकूल) बनाना होगा ।"* इन वाक्यों में कितना ज्ञान भरा हुआ था, इस पर यदि हम विचार करें तो शायद बहुत सा भ्रम दूर हो जाये। हम यह चाहते हैं कि सभी लोग हमारे कहने के मुताबिक़ चलें और जब वह नहीं चलते तो प्रेम की जगह द्वेष उत्पन्न होता है, फिर प्रेम में बृद्धि कैसे हो सकती है ? अपना आपा मिटा देने और दूसरों का मन जीत कर ही हम भाइयों से तथा अन्य प्राणियों से प्रेम कर सकेंगे और तभी गुरु के आदेशों पर चलना सम्भव हो सकेगा ।

परमसन्त बैनर्जी साहब ने भी तो कहा है कि - *" जो कर्म एकता की तरफ ले जाता है वही धर्म है और जो द्वेष उत्पन्न करता है वह अधर्म है ।'* परमपूज्य गुरुदेव जी सदा यह कहा करते थे कि, " हमारा मार्ग तो प्रेम का मार्ग है " और उसी के कारण उन्होंने इतने क्रोध से भी मेरे ह्रदय को आकर्षित कर लिया। गुरु हम लोग क्यों बनाते हैं ? इसलिए कि उनमें हमें कुछ ऐसे गुण दिखाई पड़ते हैं जिनका हम अपने में अभाव पाते हैं। गुरु तो ईश्वर हैं। और ईश्वर भी प्रेम का दूसरा नाम है । -God is love, Love is God (*ईश्वर प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है)* इसी प्रेम के सूत्र को मज़बूत करने का उपाय यही है कि परमपूज्य गुरुदेव जी के समान हम सभी भाई अपने प्रेम को बढ़ाने की कोशिश करें। जिस प्रकार गुरुदेव जी को संसार के सभी प्राणी प्यारे थे उसी समान तो हमें भी बनना है । उनके आदेशों-उपदेशों को अपनाने की

कोशिश करें और उनके समान बन जायें। उनके गुणों को अपनाने से ही हममें अपने अहं का नाश होगा और फिर उस अमूल्य तत्व - प्रेम की बृद्धि हो सकती है, जो कि हमारे गुरुदेव का ही स्वरुप है ।

उनकी जन्म शताब्दी के पर्व पर सबसे सबके प्रति निःस्वार्थ प्रेम की भावना बढ़े - यही शुभकामना है ।

oooooooooo

हमारे परमाराध्य से पग-पग पर प्राप्त

कृपा एवं मार्गदर्शन

श्री कैलाश नारायण जौहरी, ग्वालियर

सर्व विदित ही है कि वर्ष 1993-94 परम् पूज्य गुरुदेव परमसन्त महात्मा डॉ०श्री कृष्णलाल जी महाराज की जन्म-शताब्दी के रूप में मनाया जा रहा है । निरन्तर कुछ लिखने का आग्रह होता रहा। परन्तु गुरु-शिष्य का सम्बन्ध नितान्त व्यक्तिगत एवं विशेष अन्तरगतता लिए होता है, इसके अतिरिक्त मैं स्वयं को इस योग्य भी नहीं पाता कि उस महान सूरजों के सूरज की एक छोटी सी किरण को भी शब्दों में व्यक्त कर सकूँ - जो अपनी गर्मी अपने प्रकाश और ऊर्जा के रूप में सर्वव्यापक (omnipresent) होकर सबको महसूस होता रहता है, सभी आश्रितों की देखरेख करता है तथा संजीवनी शक्ति देता रहता है ।

अन्तरंग सम्बन्धों के प्रति कुछ लिखना सर्वथा उचित नहीं है और ऐसे महान संत की छबि, गुण। शैली, आध्यात्मिकता का बखान करने का इस तुच्छ लेखनी में साहस नहीं है । पूर्व में प्रेमी भाइयों के अनेक संस्मरण, श्रद्धांजली प्रकाशित हो चुकी हैं, संदर्भित स्मारिका में भी पर्याप्त ख़जाना उपलब्ध होगा, अतएव इस अकिंचन की लेखनी की सामर्थ्यहीनता से संभावित त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

संत शत-प्रतिशत महात्मा के ही रूप होते हैं। जब-जब संसारी लोग बेराह होकर भटक जाते हैं, अनाचारी हो जाते हैं, तो उन्हें राहेरास्त पर लाने, ईश्वरोन्मुख बनाने, व पृथ्वी का सन्तुलन बनाये रखने के लिए वो नारायणी शक्ति, संत-सद्गुरु के रूप में अवतरित होती है जो बाहर से जगत व्यवहार करते हुए ग़ायबाना तौर पर (अपरोक्ष रूप से) अपने संपर्क में आने वालों को प्रभु चरणों में लीन होकर अपने प्रेम, सेवा और व्यवहार से प्रभावित करते रहते हैं।

उनके ईश्वरीय गुण सम्पन्न व्यक्तित्व से निरन्तर प्रसारित हो रही प्रभु प्रेम की तरंगें आस-पास के वातावरण को प्रभावित करती हैं। परिणामतः अप्रयास ही हर संपर्क में आने वाले

प्राणी को सच्चे रास्ते पर चलते हुए दुनियावी एवं परमार्थी जीवन सफल बनाने की प्रेरणा मिलती है ।

गुरु शब्द का शाब्दिक अर्थ (गु = अँधेरा + रु = रौशनी) होता है, अँधेरे से उजाले (सच्चे ज्ञान) की और ले जाने वाला - 'तमसो मा ज्योतिर्गमय '। हमारे परमगुरु भी ऊपर से सबके - भाईसाहब, चाचाजी, मामाजी, बाबाजी, बने हुए हर एक प्रेमाश्रित की देख-रेख करते थे और अपनी इस नरलीला में ईश्वरीयलीला का परिचय करा देते थे ।

जैसा कि वे स्वयं हमेशा कहा करते थे कि परमात्मा की तरह सच्चा संत कभी मरता नहीं है, वह तो नर देह में नरलीला करनी होती है । नर देह से मुक्त होकर वो अपने आश्रितों की देख-रेख और अच्छी तरह से करते हुए उनका कल्याण करते हैं। ठीक इसी के अनुरूप हम सब आज भी अपने परमाराध्य की कृपा पग-पग पर महसूस करते हैं।

हमरे सिलसिले की विशेषता है कि यदि साधक वास्तव में अपने गुरु की शिक्षाओं का सच्चाई से पालन करे, अपनी बुद्धि लगाए बिना अपना सब कुछ (होशियारी, अहंकार, इत्यादि) गुरुचरणों में अर्पण कर दे तो ठीक उसी तरह अपने गुरु की मुराद बन सकता है जिस प्रकार हमारे पूज्य गुरुदेव परमसन्त डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी अपने परम गुरु रामचन्द्र जी महाराज की मुराद थे । ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए गुरु के हर एक शब्द का दृढ़ता से अक्षरशः पालन करना होगा।

सेवक के घर 1954 से भगवान् श्री कृष्ण जी की मोहिनी तस्बीर के समक्ष हर रविवार को 10-12 लोग मिलकर कीर्तन, बाजा-ढोलक इत्यादि पर करते थे, भगवान कृष्ण की आरती ***" करो कृपा श्री कृष्ण आस बस तेरी, लगाई क्यूँ मेरे कारज में इतनी देरी " ही निर्बल पुकार का प्रमुख माध्यम थी।***

नर देह में भगवान् श्री कृष्ण - महात्मा डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी के प्रथम दर्शन की वास्तविक तिथि याद नहीं। ग्वालियर में सन 1957 में ग्रीष्म ऋतु में पूज्य गुरुदेव मेरे मामाजी स्व। पूज्य दामोदर दास जी के निवास पर पधारे, विशेष-आकर्षण में खिंचे से सपत्नीक दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। किन्हीं पूर्व संस्कारों के प्रादुर्भाव से हम पति-पत्नी अपने बिछुड़े

हुए आराध्य के दर्शन-चरणस्पर्श कर कृतार्थ हुए। ऐसा जन्म-जन्म का खोया अथाह अपार आनन्द प्राप्त हुआ जो वर्णनातीत है । पूज्य स्व। दामोदर दास जी ने परिचय कराया, पूज्य गुरुदेव ने आदेश दिया - "कैलाश बाबू, आप मेरे पास बैठे रहें। " तत्पश्चात ऊपर छत पर गुरुदेव खाट पर लेटे रहे व सेवक करीब3 घंटे उनके पास ही मंत्र-मुग्ध सा बैठा रहा। आपने फ़रमाया, " अब जाइये, सुबह आ जाना ।"

प्रथम मिलन में ही फ़रमाया *" तुम में प्रेम तो बहुत है, पर बाहरी दुनियाँ में लगा रखा है, बाहर से हटो, अन्दर घुसो, परमात्मा प्रेम रूप है, उससे प्यार करो। दुनियाँ और दुनियाँ के पदार्थ कभी सुख नहीं दे सकते, इनका जायज़ तरीके से भोगना तो सही है परन्तु इनमें फंसना नहीं है । तुम दुनियाँ में बुरी तरह से फंसे हुए हो, दुनियाँ छोड़ो और प्रभु चरणों में* लगो। "

उनकी प्रथम दिवस की उक्त चेतावनी शत-प्रतिशत सत्य थी। मैं संसार व रिश्तेदारों की मोहब्बत में इतना फंसा था कि उनकी चेतावनी को समझते हुए भी अंगीकार नहीं कर सका, ना ही उनकी तनिक सेवा, ना ही उचित साधना कर सका। उनकी कृपा से इतना अवश्य था कि उनकी मोहिनी छवि कभी बिसरती नहीं थी, उनका ख्याल कभी छूटता नहीं था।

उनके एकतरफा प्यार और ग़ायबाना निगेहबानी ने कभी अकेला नहीं छोड़ा, दीन और दुनियाँ, जिसके मैं लायक भी नहीं था, सब उन्हीं की कृपा और प्यार का फल है ।

वे सिकन्दराबाद में रहकर ग्वालियर में बीमार पड़े बच्चे की प्राण रक्षा न जाने कैसे कर देते - यह बात बाद में वहाँ उपस्थित भाई वर्णन करते, मुझमें तो कृतज्ञता प्रकट करने की सामर्थ्य नहीं होती थी। समय-समय पर पत्रों द्वारा यद्यपि चेतावनियाँ देते थे । उन चेतावनियों में से कुछ प्रमुख आपके समक्ष रख रहा हूँ जो कि मैं अपने पास नोट करके रख लेता था। तिथिवार प्रस्तुत हैं। आशा है साधना-पथ में सहायक होंगी।

29-9-62 को पूज्य गुरुदेव ने कहा था - " मन हमेशा दुनियावी कामों में फंसाये रखना चाहता है और परमार्थ से दूर रखता है । आज तक कोई दुनियांवी कामों को खत्म नहीं कर पाया। अक़्लमन्द वही है जो अपने वक्त को परमार्थ में लगाता है ।और दुनियाँ में ज़रूरत के मुआफ़िक ही फँसता है । "

12-12-62 - " दिल एक है चाहे दुनियाँ में लगाओ, चाहे दीन में। अपनी कोशिशों से कुछ होता नहीं, हुआ भी तो कितने दिनों के लिए ? सिर्फ़ इस ज़िन्दगी के लिए। दुबारा फ़िर पैदा होना और फँसना होगा। तुम्हारा यह ख़्याल गलत है कि दुनियाँ तुमको नहीं छोड़ती, फ़िर यह भी नहीं कहा जाता कि दुनियाँ छोड़ दो। ज़रूरत के मुताबिक़ काम रखो।"

" यह सुनकर ख़ुशी हुई कि सत्संग बराबर हो रहा है । मेरी बड़ी ख्वाहिश है कि तुम इस तरफ़ राग़िब हो, लेकिन मेरी ख्वाहिश से कुछ न होगा जब तक तुम साथ न दो। मैं तो बराबर कहता ही रहता हूँ, लेकिन ज़रूरत इस बात की है कि लगन तुमको अन्दर से पैदा होनी चाहिए। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ, कि तुमको सच्चा ज्ञान दे। वगैर अन्दर का ज्ञान पैदा हुए कुछ नहीं हो सकता।"

21-3-63 - " मन का स्वभाव तीन तरह का है : एक, यह बहुत से ख़्यालात से परेशान रहता है । दूसरा, यह कि जब कोई ख़्याल न हो तो यह सो जाता है । तीसरी हालत है कि 'एक ख़्याल' रहे इसमें वो शान्त रहता है । तभी सच्चा ज्ञान मिलता है । "

" परमार्थ का अधिकारी वो है जो दुनियां से बेज़ार हो चुका है और उससे छूटने का ख़्वाहिशमन्द है । जिसने दुनियां को ही सब कुछ समझ रखा है वो इसका अधिकारी नहीं है । गुरु तो हरेक से मोहब्बत करता है और उठाना चाहता है । लेकिन जब तक आदमी मन के चक्कर में फँसा रहता है, उसको कुछ फ़ायदा नहीं होता। गुरु सही रास्ता बताता है और कुछ मदद भी करता है लेकिन चलना तो तुम्ही को है । इसलिए अभ्यास किये जाओ और दुनियां की तरफ़ से तबियत को हटाओ, तभी फ़ायदा होगा। "

4-12-63 - " हम सबकी यही हालत है एक कर्म कटने नहीं पाता कि सैकड़ों नए कर्म आ घेरते हैं। इनसे छुटकारा पाना नामुमकिन नहीं तो नामुमकिन सा ज़रूर है । वगैर प्रभुकृपा के नामुमकिन है, प्रभु की कृपा वगैर निज कृपा नहीं होती। निज कृपा यह है कि सत पर चलो जिससे मन शुद्ध हो, और मन शुद्ध होने से बुद्धि की शुद्धि होती है, बुद्धि की शुद्धि से सच्चा ज्ञान मिलता है और बुद्धि अपना रास्ता खुद निकाल लेती है । और सत पर चलने से हमेशा की शान्ति और भरपूर आनन्द जो कभी ख़त्म न हो, जिसके बाद किसी और आनन्द की ख्वाहिश न रहे, मिलता है । "

" ऐसे आनन्द के मिलने पर उसमें सब ख्वाहिशात लय हो जाती हैं और इन्सान आवागमन से छूट जाता है । यही निर्वाण पद है और यही मोक्ष है । सत का रास्ता यह है कि सच्चाई को अपना जीवन बनाओ।"

पूज्य गुरुदेव कुछ बातों पर खास ज़ोर दिया करते थे, जैसे :

1. सच्चा विश्वास : सच्चा विश्वास यह है कि इसका पूरा यकीन हो कि अपनी तक़दीर के बनाने वाले हम खुद हैं।

2. हक़ हलाल की कमाई : जो कुछ जायज़ तरीक़े से मिलता हो उसमें गुज़ारा करना।

3. सच्ची सोहबत : जो लोग ईश्वर भक्त हैं उनकी ज़्यादा से ज़्यादा संगत करना।

4. सच बोलना : हमेशा निडर होकर सच बोलना।

5. सच्चा कर्म : जिस कर्म से दूसरों को फ़ायदा हो वही सच्चा कर्म करना।

6. सच्ची याददाश्त : जो गुरुदेव से सुना है या पढ़ा है या शास्त्रों में लिखा है उसको कर्म करते वक्त याद रखना।

इन सब बातों पर चलने से परमात्मा से प्रेम पैदा हो जाता है और दुनियां से उपरामता पैदा हो जाती है । फिर बुद्धि खुद अपना रास्ता निकाल लेती है । जितना आगे बढ़ता जाता है शान्ति और आनन्द प्राप्त होते जाते हैं। यही संग्राम देवासुर संग्राम है, जो एक जन्म नहीं कई जन्म चलता है । इसमें कुब्बते-इरादी, यानी इच्छा शक्ति और अटल विश्वास की ज़रूरत है, जो अभ्यास से पैदा होती है । रास्ता बड़ा लम्बा और मुश्किल है । लाखों आदमियों में से कोई एक-दो इस पर चलने की कोशिश करते हैं और लाखों चलने वालों में से कोई एक-दो क़ायम रहते हैं। जो आख़िर तक क़ायम रहते हैं वो ही कामयाब होते हैं। परमात्मा आपको तौफ़ीक़ (शक्ति) दे कि इस रास्ते पर आप क़ायम रह सकें।"

20-12-66 - " हर विद्या हासिल करने के लिए दिली लगन, वक्त और रूपये की ज़रूरत होती है, और ब्रह्म विद्या तो सब विद्याओं की सरताज है । इसलिए जब तक आप

पूरी दिली ख्वाहिश के साथ वक्त निकाल कर एक साल में दो-तीन बार न आयेंगे और कहने के मुताबिक रहनी-सहनी न बनायेंगे यह विद्या हासिल होना नामुमकिन है ।

11-5-68 - " मन जिस चीज़ को भोग लेता है और उसमें आनन्द पा जाता है उसको मुश्किल से छोड़ता है । उसके लिए कोशिश करना और छोड़ना ये ही असली तप है ।

22-12-68 - " धर्म, गुरु और परमात्मा एक ही चीज़ के अलग-अलग रूप हैं। धर्म पर चलने से गुरु का प्रेम मिलता है और गुरु के प्रेम से ईश्वर का प्रेम मिलता है । तुममे प्रेम मौजूद है लेकिन दुनियावी वासनाओं ने उसे दबा रखा है ।दुनियांवी ख्वाहिशात कम करो, ईश्वर प्रेम ज़ाहिर होने लगेगा। घबराओ नहीं यह काम आहिस्ता-आहिस्ता का है ।"

" मन का स्वभाव है कि जिस चीज़ को पकड़ लेता है आसानी से छोड़ता नहीं, न चाहते हुए भी कर बैठता है । इसके लिए पछताओ, रोओ और ईश्वर से प्रार्थना करो, छूट जायेगा। मैं भी दुआ करता हूँ।"

तौफ़ीक़ अताकर मेरा सज्दे में सर झुके,

दुनियाँ को भूल जाऊँ, फ़क़त तू ही तू रहे !

बख्शीं हज़ार नेमतें बस एक और दे,

लबरेज़ तेरे प्यार से जामों-सुकूँ रहे !!

oooooooooo

मालिक तेरी रज़ा रहे, और तू ही तू रहे

मालिक तेरी रज़ा रहे, और तू ही तू रहे !

मुझको तेरी तलब, व तेरी आरज़ू रहे !!

मुझको न दीन, और न दुनियाँ की आरज़ू !

तेरा ख़्याल और तेरी जुस्तजू रहे !!

तौफ़ीक़ अता कर मेरा सजदे में सर झुके !

तेरा ख़्याल तेरा अमल तेरी बू रहे !!

कोई गिला किसी का, न दिल में रहे मेरे !

दुनियाँ भी छूट जाये फ़क़त तू ही तू रहे !!

तेरे करम से प्यार तेरा, इस तरह मिले !

दुनियाँ को भूल जाऊँ, तेरी रंग बू रहे !!

बख्शीं हज़ार नेमतें बस एक और दे !

लबरेज़ तेरे प्यार से जामो सुबुं रहे !!

जब तलक जी में जान, रगों में लहू रहे !

अपने को भूल जाऊँ फ़क़त तू ही तू रहे !!

नर रूप में नारायण : श्री गुरुदेव और उनके सहज जीवन दर्शन की झाँकी

डॉ॰ श्याम बिहारी श्रीवास्तव, बक्सर

जगत के सब प्राणी माया सुन्दरी के बहुविध रूपों के जाल में फंसे हुए , कुछ अपनी मनमानी से तथा कुछ हर प्रकार से निराश होकर, हर जगह से टूट कर, अपने असली घर और प्रियतम की याद करते हैं और इस क़ैद से निकलने की युक्ति चाहते हैं। इस विपन्न और असहाय अवस्था में ही उन्हें ईश्वर के भरोसे की याद आती है और ईश्वर गुरु के रूप में उनके समक्ष वर्तमान रहता है । कोई भरोसा शेष न हो वैसी दशा में परम् शुभेच्छु परमात्मा ही गुरु रूप में दर्शन देकर जीवन का ताप हरण करता है, उसके ह्रदय में अमर शांति का भाव होता है । इस प्रकार केवल गुरु ही इस भवजाल से उन्हें मुक्त करा सकता है और वही अपना सच्चा प्यार देकर लोगों को दुःख से निवृति दिलाता है तथा अखिल शांति देता है ।

निर्वाण प्राप्त परमसन्त परमात्मा स्वरुप डॉ॰श्रीकृष्ण लाल जी साहब ,सिकन्दराबादी (उत्तर प्रदेश) ऐसे ही परमगुरु थे जिन्होंने असंख्य जीवों का उद्धार किया और माया के दलदल में फंसे जीवों को ईश्वर-प्रेम का अमृत-पान कराया। आप नर रूप में नारायण थे । श्री गुरुदेव की वह मनोहारी छवि, उनका पावन चरित्र, उनकी वीतरागिता, आदर्श प्रियता, उनकी सेवा भावना तथा उनका सबके प्रति निश्छल-प्रेम, भुलाये भी नहीं भूलता। संतों का चरित्र ही जीवन मूल है ।

आपने आध्यात्म विद्या का प्रचार सम्पूर्ण भारतवर्ष में किया, किन्तु उत्तरी भारतवर्ष तो आपकी सेवाओं एवं आशीर्वादों का विशेष रूप से ऋणी है । आप परमात्मा के साक्षात् सगुण रूप थे । आपके सन्मुख होते ही जन्म-जन्म के पाप नाश हो जाते थे तथा एक अनिर्वचनीय शीतल आनन्द से मन भर जाता था। राम, कृष्ण, हज़रत मौहम्मद आदि अवतारों एवं संतों की तरह आप स्वयं में एक आदर्श चरित्र थे । आपके जीवन की हर घटना, आपकी हर बात, आपका नित्य व्यवहार हम सबके लिए प्रेरणा का स्रोत है ।

प्रेम और सेवा के साक्षात् रूप

श्री गुरुदेव प्रेम और सेवा के मनोहारी रूप थे । हर भाई की मुसीबत में उनका करुण-ह्रदय विह्वल हो जाता था और अपने पद और मर्यादा की तनिक भी चिन्ता न रखते हुए भक्त वत्सल भगवान के रूप में प्रेमी भाई की सहायता हेतु दौड़े फिरते थे । श्री प्यारे मोहन भाई साहब का तार आया कि उनके पिता जी का स्वगवास हो गया है और वो राजस्थान से गोरखपुर जा रहे हैं। उन्होंने श्री गुरुदेव से अमुक गाड़ी के समय दिल्ली में दर्शनों की प्रार्थना की थी। श्री गुरुदेव का भक्त-वत्सल ह्रदय उस प्रेम पुकार में भीग गया और उसी क्षण वे चलने के लिए तैयार हो गए।

एक उपस्थित भाई ने कहा कि अब इस रात के समय दिल्ली स्टेशन पहुँच कर कोई विशेष लाभ तो होगा नहीं।आपको कितनी परेशानी आने-जाने में होगी। आपने मर्म भरी बात कही कि - " वह (प्यारे मोहन जी) इस समय दुःख में हैं और मुझे बुलाया है उसने, तो फिर मैं कैसे न जाऊँ? " आपने कृपावश मुझे भी अपने साथ ले लिया।

रेल से हम लोग रात में दिल्ली गए। रात का सफर था। आप थके थे । किसी तरह जगह मिल गयी। मैं भी आपके सामने बैठ गया। थोड़ी देर में एक आदमी जो उनकी बगल में बैठा था वो नींद की दशा में था, उनके कन्धे पर झुक गया। मुझे यह अच्छा न लगा। मैनें उसे जगाना चाहा और श्री गुरुदेव के कन्धे से उसे हटाना चाहा। आपने मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा - " बेटे, छोड़ दो इसे। हमें तो सोना नहीं है, नींद भी नहीं आती। यह थका -मादा है, थोड़ी देर विश्राम ही कर लेगा तो मेरा क्या नुकसान होगा, इसे न जगाओ।" मुझे तो जैसे काठ मार गया। उनके ह्रदय की विशालता, उनकी मानवता एवं उनकी प्रेम-प्रवणता को देखकर क्षण-भर के लिए मैं ठगा-ठगा सा रह गया। मैं खड़ा रहा, किन्तु आपने मुझे आदेश देकर अपनी जगह पर बैठा दिया। वह बेचारा दिल्ली तक श्री गुरुदेव के कन्धे पर सोता विश्राम करता रहा। दिल्ली पहुँचने पर श्री प्यारे मोहन भाई साहब तथा सभी परिवार वालों से भेंट हुई। आपने अपना प्रेम भरा आशीर्वाद दिया तथा सबको भेज कर तब वापस आये। प्रेमी भक्त की पुकार पर श्री गुरुदेव का दौड़ जाना ही उनका प्रेम स्वरुप एवं जीवन दर्शन था।

वीतरागिता का व्यावहारिक रूप

एक बार आप मुरार में सत्संग कराने आये थे । एक प्रेमी भाई ने श्रद्धा एवं प्रेम-वश एक सोने की अंगूठी आपकी सेवा में भेंट की। आपने लेना नहीं चाहा, किन्तु भक्त की श्रद्धा एवं प्रेम की उस पुनीत भाव -दशा को देखकर स्वीकार कर लिया। पहले आपने बड़े प्यार से समझाया कि भाई हमें अंगूठी की क्या आवश्यकता है ? फिर तुम्हारी हालत हमसे छिपी नहीं है । मुरार से आप वाराणसी सत्संग में आये। वहाँ आपने बड़े ही प्रेम-पूर्वक कहा कि एक भाई ने प्रेम और श्रद्धा से मुझे यह अंगूठी दी है । मैने पहन तो ली लेकिन कभी इस और ध्यान चला जाता है । भाई, जो वस्तु ईश्वर की ओर से ख़्याल को हटाकर अपनी ओर लगाए, वह पास रखने की वस्तु है या अलग हटाने की ? वहाँ से आप गोरखपुर सत्संग में पहुँचे। वहाँ वह भाई भी पहुँचे। बसन्त का भंडारा था। आपने एकांत में एक दिन उन्हें बुलाकर कहा - " लो भाई, अपनी यह अंगूठी वापस ले लो।" वे भाई सन्न से चुपचाप खड़े रहे। आपने फ़रमाया - " यह सोने की अंगूठी मैं तो आपने पास रखूँगा नहीं। तुम न लोगे तो किसी दूसरे को दे दूँगा। इसलिए उत्तम तो यही है कि तुम्हीं ले लो।" और उन्होंने प्रेम पूर्वक यह कहते हुए अंगूठी वापस लौटा दी कि तुम्हारी बात मैने मान ली, अब हमारी बात तुम भी मान लो। यह गुरुदेव की वीतरागिता का व्यावाहरिक रूप है । सच्चा एवं पूर्ण गुरु शिष्य से किसी वस्तु की लालसा नहीं करता। उसे किसी हीरे-मोती या किसी वस्तु की कामना नहीं होती। श्री गुरुदेव को जो कोई भाई प्रेमवश कुछ देते थे, उन्हें वे गरीबों, निस्सहायों, ग़रीब लड़कियों की शादी में, ग़रीब बच्चों की पढ़ाई में तथा विधवाओं को सहायता में ख़र्च कर देते थे । दूसरों की सुख-सुविधा की चिन्ता, सत्संगी भाइयों को किसी तरह की तक़लीफ़ ओर असुविधा न हो, इसके लिए सदैव चिन्तित एवं सतर्क रहते थे । एक दिन मैं सिकन्दराबाद गया था। कुछ दिन ठहरा था। एक दिन आप कुछ चिन्तित दीख पड़े। मैं सामने बैठा था। मौज़ में कहने लगे " क्या बताऊँ, बिजली का बिल एक माह का सत्तर रूपये आया है । दूध के दो माह के एक सौ अस्सी रूपये हैं। कैसे ख़र्च चले ? सत्संगी भाई आते हैं तो पंखा चलेगा ही, चाय के लिए दूध आवश्यक ही है । फिर ख़र्च का भार कैसे हल्का हो ? परमात्मा ही पार लगाए ।" उन दिनों श्री गुरुदेव की बीमारी के कारण दर्शन हेतु भाइयों का ताँता नित्य बंधा रहता था। अपनी बीमारी में भी श्री गुरुदेव का अतिशय

कोमल चित्त सत्संगियों की ओर लगा हुआ रहता था। स्वयं चाहे किसी भी दशा में हों, यदि कोई भाई आ जाये तो पहले उसके चाय-पानी की चिंता घेर लेती थी और सत्संग भवन में उचित जगह पर उसे ठहराने का प्रबन्ध कर स्वयं अपने हाथों पंखा चला आया करते थे । पूर्ण संत होते हुए भी सेवक एक बार जब आपके श्री दर्शनों के लिए गया तो शर्मा बहिन से आपने चाय लाने को कहा और शीघ्र अपने एक कमरे में जहाँ स्नान करते थे, गुनगुना पानी रख गए ओर अपना जय साबुन जो स्वयं लगाते थे वहाँ रख आये। मैने समझा अपने स्नान के लिए रख रहे हैं ।किन्तु आकर कहा कि भाई चाय पी लो ओर इस कमरे में चले जाओ। गुनगुना पानी ओर साबुन भी रखा है । दूर से आये हो, हाथ मुंह धो लो और स्नान कर लो। मैं शर्म के मारे झुक गया किन्तु उनके उस प्रेम में पागल हो उनका साबुन प्रेम प्रसाद समझकर खूब मलमल कर देर तक स्नान करता रहा। वे सभी सत्संगी भाइयों के लिए स्वयं सेवा हेतु तत्पर हो जाते थे । यह उनकी सेवा भावना का आदर्श रूप था। पूर्ण संत होते हुए भी आपने सदा अपने को एक 'सेवक' समझा। आपकी दृष्टि में पूर्ण सेवक बनना ही सद्गुरु होने की कसौटी थी। आप कहा करते थे - " मैं गुरु नहीं, सेवक हूँ और जितनी सेवा आप भाइयों की कर सकता हूँ, करता हूँ।" सेवा, दीनता और प्रेम ही आपका जीवन दर्शन था। आप सभी भाइयों की शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक सभी प्रकार की सेवाओं में लीन रहे।

बात समझाने की निराली शैली

आपके समझाने की शैली बड़ी ही निराली एवं प्रेम भरी जादू की सी थी। कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना भी तर्क एवं जगत-बुद्धि लेकर आता, आपके सामने नत मस्तक हो जाता था और उसकी पिपासा शान्त हो जाती थी। आप में यह एक अद्वितीय कला थी। राम चरित मानस की बात याद आती है । ' जस जस सुरसा बदन बढ़ावा, तासु दुगुन कपि रूप दिखावा' की भांति आप अपने जिज्ञासुओं को भली-भांति शांति एवं संतोष से भर देते थे । दार्शनिकों के सामने दर्शन शास्त्र के व्याख्याता, वैज्ञानिक के सामने एक विराट वैज्ञानिक के रूप में, साहित्यिकों के सामने एक कुशल कलाकार के रूप में, अर्थात जिसको जिस विद्या में आवश्यकता हो, समझा देते थे ।

एक बार बक्सर में एक दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर आपसे मिलने आये। आपने सभी दर्शनों का सार तत्व बतलाते हुए ईश्वर प्राप्ति के लिए गुरु की महत्ता प्रतिपादित की। प्रोफेसर साहब आज भी आपकी बातों को सर आँखों पर रखते हैं। किसी अन्य स्थान पर एक वैज्ञानिक आपकी सेवा में गए। उन्होंने पूछा कि " क्या ईश्वर है और यदि है तो मैं कैसे समझूँ कि ईश्वर है ?" श्री गुरुदेव ने बड़ी शान्त मुद्रा में उनको वैज्ञानिक पद्धति में ही ईश्वर की सत्ता और गुरु की महत्ता प्रतिपादित कर दी। आपने फ़रमाया - " आप तो रसायन शास्त्र के सिद्धांतों को जानते हैं । Compound (यौगिक) बनाते हैं। Acid (अम्ल) भार Base (क्षार) से यह बनता है । अब यदि बहुत ज़्यादा अम्ल में एकदम थोड़ी सी मात्रा क्षार की डाली जाये तो क्या Compound बन सकेगा ? वैसे ही बहुत अधिक क्षार में एक बूँद अम्ल डालने देने से भी वह नहीं तैयार हो सकता। इसके लिए दोनों को सिद्धान्तानुसार एक निश्चित अनुपात में आप मिलाते हैं तभी Compound (यौगिक) बनता है । इसी तरह आध्यात्म की बातें भी हैं। ईश्वर सर्वशक्तिमान एवं सर्वज्ञाता है । उसने प्रकृति के सभी पदार्थों को किन-किन अनुपातों में मिलाया है, वही जानता है । यदि कोई इन अनुपातों का ज्ञाता न होता तो ये सारे पदार्थ, चाँद ,तारे, फूल, पत्ते, उषा-संध्या, पशु-पक्षी, आदि उस Compound (योगिक) की तरह कैसे तैयार हो सकते थे ? क्या अभी भी आपको उस असीम सत्ता के ऊपर संशय ही बना है ।? अर्थात इतना तो आप समझ ही गए होंगे कि परमात्मा है जिसने यह सारी श्रष्टि बनाई है ।"

बातों बातों में गूढ़ जीवन दर्शन

एक बार सिकन्दराबाद में श्री नन्द जी भैया (समस्तीपुर) श्री सतीश भैया (लखनऊ) एवं हम कुछ भाई बैठे थे । आपने कहा - " देखो भाई, परमार्थ में दो बातें आवश्यक हैं। ब्रह्मचर्य पालन करना अति आवश्यक है । इसका आशय आपने को एकदम रोकना नहीं है । पत्नी है तो साथ रहे और ब्रह्मचर्य का पालन करे। फिर धीरे-धीरे आपने को संयमी बनायें। दूसरा रुपया है । रूपये से प्रेम न करें। यह भी ढेर कर देता है । "।

फिर कहने लगे - " कर्म का लिखा मिट नहीं सकता। जिसने जैसा किया है, कर्म-फल मिल कर रहेगा, उसे कोई टाल नहीं सकता। कर्मों का नियम अपनी जगह पर पूर्णतः अचल एवं अटल है । मन जो कराना चाहता है, सोचने लगता है । बुद्धि उसी के अनुसार युक्ति निकालने

लगती है । मन और बुद्धि दोनों मिलकर जीव का नाश कर देते हैं। इसलिए सोचकर क़दम बढ़ायें। परमार्थ आसान काम नहीं है । जो बात मन में आये और बुद्धि उसे सही बताये उसे गुरु वर्तमान हों तो उनसे पूछ लें। नहीं तो संतों की वाणी से मिलायें। यदि विपरीत हो तो छोड़ दें। संतों की एक-एक वाणी में सारगर्भित अर्थ छिपा है । वे अक्षरशः सत्य हैं। जीव उन वाणियों को पढता तो है समझता भी है, किन्तु उन पर अमल नहीं करता। उसे अमल में लाना ही असल है । पहले इन्सान समझता है लेकिन उसे अमल में नहीं लाता। बाद में जब अमल में लाने की बात सूझती है तब तक समय बीत चुका होता है । ज़िन्दगी ख़त्म होने को आयी रहती है और इस तरह वह कुछ भी नहीं कर सकता ।दर्शन को नित्य व्यवहार में उतारो, यही साधना का मूल मन्त्र है । जो अपना आचरण पवित्र नहीं कर पाया, आपने को बना नहीं सका, वह दूसरों को क्या बनाएगा ? पहले अपने आपको बनाओ और अपना नमूना पेश करो।"

सतीश भैया ने पूछा - " मन बुद्धि के प्रभाव को कैसे दूर किया जाए ?" आपने उत्तर दिया - " यही तो मैने कहा। कि मन बुद्धि की बातों को गुरु से पूछ लो। गुरु न हो तो संतों की वाणी से मिलाओ। मिले तो समझो तुम्हारे मन ने सही ख़्याल (impression) लिया है ।" हमारी तरफ देखकर कहने लगे - " क्यों साहब समझा आपने ?" मैने कहा - " जी हाँ "। और वे चुप हो गए। फिर किसी ने कुछ नहीं पूछा। इस प्रकार आदर्श एवं दर्शन को नित्य जीवन में व्यावहारिक रूप देना ही श्री गुरुदेव का जीवन-दर्शन था।

गुरु महाराज की अभिलाषा

आपकी उत्कट इच्छा थी कि इस सत्संग के भाइयों में पूर्ण प्रेम बना रहे और जगह-जगह पर जो केंद्र हैं वहाँ के रहने वाले अपना आदर्श उपस्थित करें। वे आदर्श रूप में हों जिनका प्रभाव औरों पर पड़ सके। इन केंद्रों से (हम लोगों से) दादा गुरुदेव के मिशन का लोगों में प्रचार हो। वे आश्रमवासी की तरह पवित्र चरित्र में रहें। एक बार आपने गौ सेवा की महत्ता बताई थी और फ़रमाया था कि गाय रखो और उसकी स्वयं सेवा करो। इसका उत्तम फल है । उनकी यह भी इच्छा थी कि गुरुदेव के मिशन को लेकर कोई विदेश जाता।

बस सबसे प्रार्थना है कि गुरुदेव के जीवन दर्शन को तथा उनकी इच्छाओं को हम अपने जीवन में सच्चाई के साथ उतारें। यही श्री गुरुदेव के प्रति हमारी प्रेम एवं श्रद्धा की भावांजलि

होगी। बस अब श्री गुरुदेव से यही प्रार्थना है कि वे आशीर्वाद दें कि हम सभी उनके बताये एवं दिखाए रास्ते पर चलें और उनकी आत्मा को शान्ति एवं सन्तोष दे सकें। वर्तमान गुरुजन से भी प्रार्थना है कि आशीर्वाद दें कि हम सबकी कमज़ोरियाँ दूर हों और हम सभी सच्चे सीधे रस्ते पर अग्रसर हों और श्री गुरुदेव का जीवन दर्शन आपने नित्य व्यवहार में उतार सकें।

श्री गुरुदेव की कृपा से सबके जीवन में अपार शान्ति उतरे ।

oooooooooo

जगद्गुरु श्री कृष्णा-स्वरुप

हमारे दादागुरु महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी

श्री रामवृक्ष सिंह, चकिया-वाराणसी

एक बार श्रीकृष्ण को भोग-विलास से आच्छादित वातावरण में अपनी संचेतना में दिव्य आदर्श का स्पन्दन लाया और अपने जीवन में आम-अलोक की पुनीत अभिव्यंजना प्रकट करते हुए, जीवन के सारे संघर्षों को झेलते हुए आध्यात्मिक प्रकाश लाया। दूसरा सद्गुरु संतप्रवर श्रीकृष्ण जीवन और जगत की चमक-दमक इन्द्रियजनित सुखों, आकर्षणों के मायाजाल के बीच फ़क़ीर अनन्त चिरन्तर सत्ता का अभिनन्दन एवं आलिंगन लाया। दोनों ही के अन्तस् में विवेक-चेतना का बहाव था। दोनों में स्वर्णिम आत्मा की खोज और ब्रह्मतेज तथा आत्मदीप जलता रहा, जिससे उन दोनों के समय के समाज को दिशा-निर्देश मिला। एक महान कर्मयोगी द्वारिकाधीश, गीता के रचियता, भव-भय हारी, मंगलकारी, ने भोली-भली ब्रज-बालिकाओं के बीच रासलीला ही नहीं की बल्कि महाभारत युद्ध भी किया, जो उनकी रासलीला ही रही। दूसरा संत, फ़क़ीर जन-जन का कंठहार, ह्रदयेश, दृढ़तापूर्वक संयम-नियम का पालन करता हुआ दीन एवं दुखियों का सम्पूर्ण कार्यकलाप करता रहा, सबके ह्रदय महाभारत-युद्ध का साक्षी रहा, अपने जिज्ञासुओं की आत्मा-राधा का श्रीकृष्ण रहा जो जीवन की दुर्बलताओं, अपूर्णताओं तथा सीमाओं के अज्ञान के अभिशाप से मुक्त करता रहा। भारतीय संस्कृत्याकाश के ये दोनों जाज्वलयमान सूर्य एवं चाँद हैं, जिनसे भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व प्रभावित एवं उदभासित हुआ। संतप्रवर श्रीकृष्ण ने प्रमाणित कर दिया कि सुख सुविधाओं का अम्बार एवं चक्र-सुदर्शन जैसा हथियार संत के तेज़ प्रेम-धार के समक्ष कुछ नहीं है । भगवन्त एवं संत दोनों ही परमात्मा की बड़ी तेज़ धार के साथ श्रष्टि पर अवतरित होते हैं, ईश्वरीय सत्ता को स्थापित करते हैं एवं वे दोनों ही श्रष्टि नहीं, दृष्टि को बदल देते हैं।

" चक्षुरून्मीलितम तस्मै श्री गुरुवे नमः "

दिव्यगुणों से विभूषित दिव्यपुरुष सद्गुरु ने बड़ी सरलता एवं सुलभता से बहुतों के दिव्य-चक्षु खोले एवं दिव्य स्वरुप का दर्शन कराया। दिव्यता के इस यथार्थवादी युग के लिए व्यावहारिक स्वरुप भी आपने प्रदान किया। डॉ०राधाकृष्णन का दिव्यता के प्रति कथन आपके सिद्धान्तानुसार है - " यह दिव्य स्वरुप दर्शन कोई किवदन्ती या पौराणिक कथा नहीं है अपितु एक आध्यात्मिक अनुभव है । यह दर्शन कोई मानसिक कल्याण नहीं, अपितु सिमित मन से परे एक सत्य का उद्घाटन है । जैसे ब्रह्माण्ड की सीधा सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र से है तथा सूक्ष्म जन्तुओं के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र आज्ञा-चक्र से जुड़ा हुआ है जिस आज्ञा चक्र का तीसरा अतिन्द्रिय दिव्य-चक्षु है जिसे तीसरा नेत्र, शिवनेत्र या केसर किरण कहते हैं।" इस वास्तविकता के आधार पर एक मात्र 'प्रेम' द्वारा आज्ञा-चक्र एवं ऊपर की चढ़ाई आप कराते रहे।

प्रेम एक नैसर्गिक स्वभाव है, जो प्रत्येक के ह्रदय में हिलोरें लेता रहता है । प्रेम के वास्तविक अधिकारी आप जैसे संत हो सकते हैं, जो हेतु रहित, दयालु, परदुःख-कातर हो ऐसे द्रवीभूत हो जाते हैं कि उसकी पीर पिघलने लगती है जिससे

" सुरसरिसम सबकर हित होई "।

आपका सेवा-भाव तो दिव्य चेतना की ही नैसर्गिक अभिव्यक्ति है । इस नैसर्गिक अभिव्यक्ति को ही आपने दिव्य जीवन की संज्ञा दी है । प्रेम बृक्ष है, जिसकी लताएं सेवा हैं, आपस में ये दोनों अभेद होकर ईश्वर से अभेद हो जाते हैं। यही अवस्था आप जैसे संत के जीवन-बसन्त की है ।

आपके अनुसार " मनुष्य कुछ जड़ ऊर्जाओं का करिश्मा नहीं, वह दिव्य-चेतना की ज्योति है, वह दिव्यात्मा है, तथा उसे उस रूप में खुलना और चमकना है हम लोग ऐसे कर्म करें जिससे वह परमेश्वर या सद्गुरु शक्ति दे, प्रकाश दे, आनन्द दे, अमरत्व दे एवं आत्म-स्वातंत्र्य दे। आत्म-चेतना में स्थित कर्म करते हैं तभी हमारे कर्मों से प्रकाश एवं आनन्द झरता है । ऐसे ही कर्म समस्त विश्व को दिव्य, पूर्ण एवं शाश्वत स्पंदन देते हैं एवं मानवता को मुक्ति-पंख प्रदान करते हैं।" आपने बड़े धड़ल्ले एवं सह्रदयता से कहा - " दीन एवं दुनियाँ सहयोगपूर्ण चला सकते हैं तो चलायें अन्यथा अपना लगाव एवं ख्वाहिशात को अपने और आप मुझे प्रेमपूर्ण भाषा में बुलाते हैं किन्तु हम आपको ठुकराते हैं। " गुरु का तो दया का हाथ हर वक्त

है और हर वक्त उसकी ख़्वाहिश्य है कि साधक सीधे रास्ते पर आ जाये। शमा (दीपक) जल रही है, यह परवाने (शलभ) के लिए पैगाम (सन्देश) है कि आये और जले तथा ज़िन्दगी हासिल करे।

हाय रे अभागे जीव भागे फिरते हो तुम,

दूर हट जाते, गुरु निकट बुलाते हैं !

लेने को समोद गोद, उत्सुक अनाथ नाथ

किन्तु उनके हाथ उठे ही रह जाते हैं। !!

फ़नाफ़िल शेख, फ़नाफ़िल रसूल एवं फ़नाफ़िल अल्लाह, - इन मुहब्बत की तीन मन्ज़िलों को अपने पार किया। प्रथम मन्ज़िल गुरु से मोहब्बत करना एवं उसका सहारा लेकर दुनिया की मोहब्बत से मुँह मोड़ लेना है । दूसरी मन्ज़िल जब परमात्मा का अनुभव होने लगे तो गुरु का ध्यान भी छोड़ दीजिये अर्थात किसी रसूल का ध्यान छोड़कर अपने आप में मग्न रहिये --

" हरसायें में जो उसकी झलक पड़ेगी,

उस दिन दुई का पर्दा इस दिल से दूर होगा "!

गुरु की मोहब्बत ईश्वर का साक्षात्कार करा देगी।

' दिल के आईने में है तस्वीर यार !

जब जरा गर्दन उठाई, देख ली !! "

उसके बीच से हटा दो तो इसी जन्म की बात क्या, इसी वक्त वह तुम्हें मिल सकता है ।"

आपका बड़ा रोचक दृष्टांत उल्लेखनीय है । " आत्मा परमात्मा से विमुख हो गयी और दूर चली गयी। जब लौटकर देखती है तो तो उसे समीप पाती है । राधा जो कृष्ण की प्रेमिका है नाराज़ होकर दूर चली गयी तो ख़्याल आया कि मैं क्यों नाराज़ हो गयी तो देखा कि कृष्ण

मौजूद हैं।" आपने अपने जिज्ञासुओं, साधकों के बीच इसे बड़ी विह्वलता से सुनाया। ऐसा मालूम हुआ कि आप स्वयं श्रीकृष्ण और सभी जीवात्मायें राधा हों।

वास्तव में परमात्मा की प्रेम करने वाली सिफ़त (गुण), खींचने वाली शक्ति, जीव को अपने में मिला देती है । भगवान् कृष्ण की तरह आपने जिसे एक बार पकड़ा, छोड़ा नहीं । अपने पैर के दर्द के कारण सीढ़ियों पर चढ़े नहीं, सन्देश दिया कि " मिलने आया हूँ "। गुरुदेव सरदार जी दौड़े हुए बड़ी शीघ्रता से आते हैं, आत्मा परमात्मा दोनों मिलकर एक हो जाते हैं।

वृन्दावन की गोपियाँ महान थीं, सदा सुहागिन थीं, जिन्होंने अपना अस्तित्व खो दिया । पूर्ण शरीर अपना नहीं। अपना मन, बुद्धि, प्राण नहीं, अपना अहँकार खोकर श्रीकृष्ण का चरण-रज बन जाती हैं। ह्रदय में पति, कानों में पति की ध्वनि, पति प्रेम का रसास्वादन और आँखों में पति श्रीकृष्ण ही दृष्टिगोचर होते हैं ।

" मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर "

" तू, तू करता तू भया , मुझ में रहा न मैं ।"

" जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाही"

जिस दिन कबीर " कुतिया राम की " बन गए उस दिन से परमात्मा ' कबीर-कबीर" पुकारने लगे। तब कबीर ने अपने में मगन रहते हुए लिखा -

" लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल !

लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल !! "

समर्थ गुरु लाला जी महाराज आपके साथ एक महान संत के पास गए। उक्त महात्मा से आपने गुरुदेव लालाजी के सम्मान में कहा, - " गुरुदेव आपसे मिलने आ रहे हैं।" पूज्य लाला जी ने इस बात को मालूम होते ही कहा, " किसी संत के यहाँ पहुँचने पर ख़ाली झोली करके अपना दामन फैलाये चुपचाप बैठे भिक्षा लेनी चाहिए।" प्रभु को पाना है तो दीनता को अपनाना ही होगा। अहंकार से प्रभु नहीं मिल सकते।"

आप और भगवन कृष्ण दोनों स्वयं ही रसिया हैं , स्वयं ही रस हैं और स्वयं ही रसपान करते हैं। यदि ये दोनों ही दो हों तो अशान्ति स्वाभाविक है क्योंकि दो होंगे तो राग-द्वेष स्वाभाविक है, जब तक दोनों ज्ञानी न हों। जहाँ साधक और सिद्धि, परमात्मा और साधक एक हैं। वहाँ सुहागिन की स्थिति है । भगवान ने एकता दी है, आत्मा दी है ।

मानव ह्रदय, जिसके पास ही आत्मा स्थित है, कोई यंत्र नहीं, हारमोनियम या सितार के बाजे नहीं हैं। जब कभी सत्संग में भाव-विभोर सद्गुरु के साथ ध्वनि निकलती है - " सबमें आप रमो भगवान " - " तन में कृष्ण, मन में कृष्ण, रोम-रोम में कृष्ण ही कृष्ण " - " ह्रदय हमारे आजा राम अब तो दरस दिखा जा राम ।"

इन ध्वनियों के साथ राधा भाव का आनन्द स्रोत उमड़ पड़ता है, जो प्रत्येक व्यक्ति के भीतर है । अहंकार विगलित मनुष्य का मन उच्चतम धरातल पर स्थित हो जाता है । शरीर एवं इन्द्रियों से उसका लगाव समाप्त हो जाता है, संतों में शरीर एवं आत्मा ही है । आत्मा ही समीपता एवं एकता का अनुभव कराती है, जिससे जीवन का उदात्तीकरण तथा दिव्यीकरण हो जाता है । भाव भक्ति से भरी हुई गोपी या राधा स्वरूपिणीं सत्संगियों की आत्मायें और स्वयं श्रीकृष्ण रासलीला करते हैं। भगवान् विष्णु स्वयं नारद मुनि से कहते हैं - " मैं गोपियों को भजता हूँ। " संत सद्गुरु ने तो सुख-दुःख, राग-द्वेष से परिपूर्ण ह्रदय-कुरुक्षेत्र में द्वंदों के महाभारत-युद्ध में श्रमशीलता, मितव्ययिता , सुव्यवस्था, अनुशासन तथा शिष्टता जैसे सद्गुणों के शंखध्वनि का उद्घोष किया। यदि हम पलायनवादी, मोहग्रस्त सत्संगी श्रीकृष्ण वाक्य " सर्व धर्मं परित्यज्य मामेकं शरणम ब्रज " नहीं सुन पाते, वीर अर्जुन नहीं बनते तो प्रभु का दोष ही क्या ?

क्रिया एवं भाव का मिलन पूजा है । पूजा से भाव अलग हुआ तो एक मात्र क्रिया का अस्तित्व अर्थात कोरा आडम्बर रह जाता है । ऐसे लोगों का मन, बुद्धि, ह्रदय न अहंकार ग्रस्त और न राग-द्वेष से परिपूर्ण होता है । वे प्रेम की पराकाष्ठा का अमृत पान कैसे कर पायेंगे ? मृग-मृदा जैसी भक्त वत्सलता दोनों कृष्ण में थी। मृग सदैव अपना कान खड़ा रखकर सुनता रहता है कि कहीं कोई आवाज़ तो नहीं दे रहा है । द्रोपदी की " हा कृष्ण ! हा कृष्ण ! की आवाज़ द्वारिका के द्वारिकाधीश के कानों में गयी " नारी बीच साड़ी है कि साड़ी बीच नारी है

" जैसा भ्रम पैदा करके कृष्ण ने सभा में नंगी होने से द्रोपदी को बचा लिया।गजराज को उबारा एवं सुदामा को अपने समान कर दिया। इधर संत प्रवर ने स्व। नन्दी चाचा के समस्तीपुर में दुर्घटनाग्रस्त होने पर सिकन्दराबाद सत्संग में बड़ी बेचैनी से उनके प्राण रक्षार्थ दुआ माँगी, जिससे उनके प्राण बच गए। ऐसी ही स्थिति स्व। महेश चाचा के जीवन में भी उनकी बीमार पत्नी के समय पायी गयी। एक बहुत प्रिय भाई के पुत्र को तो यमराज से लड़कर मौत के मुख से आपने बचाया। गुरु महाराज (डॉ०करतारसिंह जी महाराज) की पूर्व पत्नी के स्वर्गवास के समय आप अपनी शेष आयु देने के लिए तैयार थे, किन्तु भगवान ने नहीं सुना जिससे उन्हें कहना पड़ा " सरदार जी पहली बार आयु देने पर भी परमात्मा ने मेरी बात नहीं सुनी।।" भोले-भाले ग्रामीणों के यहाँ सहसा आप पहुँच जाते थे तो मालूम होता था कि सुदामा के यहाँ श्रीकृष्ण आ गए। आप निष्काम और निःस्वार्थ भाव से रोगियों की सेवा स्वयं करते थे । उन्हें रूपये पैसे, खाने एवं दवा की व्यवस्था करते थे । उन्हें अपने यहाँ ठीक न होने पर उन रोगियों की यथोचित चिकित्सा के लिए आप दूसरे अस्पतालों में उन्हें ले जाते। वहाँ उन्हें सारी सुविधाएँ प्रदान करते हुए उनकी सेवा- शुश्रुषा में रात-दिन फर्श पर सोकर किसी तरह समय बिता लेते थे ।

" देहि मान प्रद आप अमानी" और 'दीन बन्धु ' जैसे परमात्मा के गुणों से आप विभूषित थे ।"

जगत और जीवन में जो भी 'सत्य' खड़ा है, जो भी 'सौन्दर्य ' बिखरा है, जो भी 'आनन्द' नृत्य कर रहा है, वह कहीं आता जाता नहीं है, वह स्वभावतया सर्वत्र, शाश्वत, अभेद परात्पर और निरपेक्ष है । हमारी आत्मा ने अमरता, प्रकाश एवं आनन्द का वरदान दिया है, हमारे पीछे सच्चिदानन्द भगवान खड़े हैं, हम निखिल सृष्टि के साथ एकीभूत हैं और हमारा ह्रदय इस श्रष्टि के ह्रदय के साथ-साथ रहा है । इस अज्ञान के पर्दे को आपने उठाया, अक्षुणा आत्मा का तेज दिखाया, अंतर्ज्योर्ति से हमें अपनी विस्मृत आत्मिक अस्मिता को जगाया और जीवन को उसकी समग्रता में उठाया। आपने जीवन को संगीत से भर दिया।

oooooooooooooo

मेरे साक़िया बता दे, वो शराब कौन सी है

मेरे सक़िया बता दे, वो शराब कौन सी है !

जिसे पीके सारी दुनियाँ, तेरे दर पै झूमती है !!

तेरी हर नज़र मुहब्बत, मेरी हर नज़र क़यामत !

मैं ख़राबे ज़िन्दगी हूँ, तू बहारे ज़िन्दगी है !!

तू हज़ार बार ठुकरा, मेरा सर यहीं झुकेगा !

तेरे दर पे सिज़दा करना, मेरी शाने बन्दगी है !!

मैं जानता नहीं हूँ, कुछ दीन और मज़हब !

तुझे याद करके रोना, आज़िज़ की बन्दगी है !!

तेरी बन्दगी की लज़्ज़त, कोई मेरे दिल से पूछे !

तुझे कैसे भूल जाऊँ, तू हबीबे ज़िन्दगी है !!

न अलम मेरा अलम है, न ख़ुशी मेरी ख़ुशी है !

मुझे जिस तरह से रक्खे, तेरी बंदा-परवरी है !!

मेरा दामने गदायी, तेरे आगे क्यूँ न फैले !

तू मताये दो जहाँ है, तेरे घर में क्या कमी है !!

<u>जीवन गाथा</u>

' राम ' के ' श्रीकृष्ण ' तुमको

लाख - लाख प्रणाम हैं !

वर्ष सन चौरानवे अट्ठारह सौ ईस्वी का था,
मास आश्विन, दिन शरद-नवरात्र की नवमी का था,

प्रान्त यू.पी. में सिकन्दराबाद नामक है शहर,
कायस्थवाड़ा में वहीं के एक 'भटनागर' के घर,

पुत्र-रत्न हुआ पैदा - **श्रीकृष्ण** जिसका नाम था
तेजोमय, प्रदीप्त मुखड़ा, गौर रूप ललाम था !

माता कृष्णा देवीजी और पिता भगवत दयालजी,
धन्य हो गए पा जिनको, ऐसी यह संतान थी !!

बाल्यकाल से ही थे लक्षण, पुरुष एक महान के,
चिकने होते पात हैं ज्यों होनहार बिरवान के !

बीस की जब आयु थी, गुरु से हुआ प्रथम मिलन,
लग गयी बिजली सी तन में, जब मिले उनसे नयन !

बिक गए उन्हीं के हाथों में, हो गए उन्हीं के वे,
दास गुरु " श्री रामचंद्रजी महाराज" के हो गए !

संग आते शिष्य हैं अवतरित जब होते है संत,
सद्गुरु-सन्देश को फैलाते हैं दिगदिगन्त !

ब्रह्म-विद्या से उन्हें परिपूर्ण गुरु ने कर दिया,
प्रेम, सेवा, भलाई की भावना से भर दिया !'

सिल्सिले का दक्ष पूर्णाचार्य फिर उनको बनाया,
कार्य गुरु-सन्देश फैलाने का जीवन भर निभाया !

दीन-दुखियों, पीड़ितों की करने सेवा-सुश्रुषा,
डाक्टर उनको बनाया, वृष्टि कर अपनी कृपा !

लग गए गुरु कार्य में तन-मन से, धन से, प्राण से,
प्रिय थी सत्संग सेवा उनको अपनी जान से !

पीड़ितों और रोगियों की सेवा करना कर्म था,
भूले-भटके मनुज का सन्मार्ग-दर्शन धर्म था !

दुःखी या असहाय का थे कष्ट वे सकते न सह,
बस मदद को आ गये जिसने पुकारा जिस जगह !

छोड़ नाता प्रेम का नहीं दूसरा थे जानते,
प्रेम से जो भी मिला, उसको थे अपना मानते !

कृपा के थे सिन्धु, पारावार वे करुणा के थे,
भक्त-वत्सल, पतित-पावन सर्वहितकारी थे वे !

ज़िन्दगी अपनी बिता दी प्रेम, सेवा के लिए,
जान उनकी थी न अपनी, सब की थी, जब तक जिए !

एक दिन फिर जग के सारे बंधनों को तोड़कर,
चल दिए संसार से, सबको बिलखता छोड़कर !

उड़ चला पंछी कि जिसने सबको बाँटा प्यार चिर,
पार जाकर क्षितिज के लौटा नहीं इस पार फिर !

थी तिथि वह द्वादशी और शुक्ल पक्ष बैसाख का,
मई अट्ठारह, वर्ष सन उन्नीस सौ सत्तर का था !

बार था शुभ भौम का वह, और प्रातः का समय,
हो गया उस 'बून्द' का जब महासागर में विलय !

उस महामानव को अर्पित हैं मेरे श्रद्धा-सुमन,
परम् संत महान सद्गुरु के चरण में है नमन !

'राम' के 'श्रीकृष्ण' तुमको लाख-लाख सलाम हैं,
सद्गुरु 'करतार' के तुम्हें कोटि-कोटि प्रणाम हैं !

-- *डॉ. मुद्रिका प्रसाद, मुज़फ़्फ़रपुर .*

परमपूज्य लालाजी महाराज के कृपापात्र

श्रद्धेय डॉ० हर नारायण सक्सेना, जयपुर द्वारा

गुरुदेव का व्यक्तित्व-कृतित्व

परम पूज्य भाई साहब महात्मा डॉ०श्रीकृष्ण लाल साहब हमारे गुरु भगवान परम् पूज्य श्रीमान महात्मा रामचन्द्र जी (लाला जी) महाराज के वरिष्ठ शिष्य थे । आपका जन्म सिकन्दराबाद (उ। प्र।) में तारीख 15 अक्टूबर सन 1894 ई। को हुआ था। आपके पूज्य पिता श्रीमान भागवत दयाल जी भटनागर सिकन्दराबाद के पुराने निवासी थे और उत्तर प्रदेश के निर्माण विभाग (PWD) में ओवरसियर के पद पर कार्य करते थे । परिवार में चार भ्राता और तीन बहने थीं जिनमें आप सबसे बड़े थे ।

आपका शरीर लम्बा सुडौल था - रंग गोरा - हाथ सामान्य से थोड़े बड़े थे । स्वभाव सरल और मुद्रा आकर्षक थी। हम कह सकते हैं कि आप अपने यौवन काल में बड़े सुन्दर युवक थे । मेरा परिचय आपसे सन 1926 में हुआ - जब फतेहगढ़ में भण्डारा के अवसर पर आप बहुत से सत्संगियों के साथ प्रबन्ध कार्य में रत रहते थे । आगे चलकर जब अपने दाढ़ी रख ली तब तो आपका व्यक्तित्व और भी भव्य और आकर्षक हो गया था।

मैं सन 1925 में ही कानपुर कॉलेज शिक्षा के लिए गया था। उन्हीं दिनों (श्रीमान चच्चा जी) महात्मा श्रीमान रघुवर दयाल साहब की सेवा में पहुँच गया और श्रीमान लालाजी महाराज के दर्शन वहीं हुए। फिर तो मैं भण्डारा आदि के अवसरों पर जाने लगा और धीरे -धीरे सभी सत्संग परिवार से मेरा परिचय बढ़ता गया ।

पूज्य भाई साहब श्रीमान लाला जी महाराज के सम्पर्क में सन 1914 में आये। उस समय आपके पिताजी फतेहगढ़ में कार्यरत थे । आपके पिताजी ने आपको एक चैक का रुपया लेने बैंक ट्रेज़री में भेजा। प्रथम दर्शन के समय ही आप पर गुरुदेव का ऐसा प्रभाव पड़ा कि सारे शरीर में जैसे बिजली का संचार हुआ हो । एक बार और परेड ग्राउंड पर आपकी भेंट गुरुदेव से हुई। परन्तु आप कुछ समझ नहीं पाए कि उनकी दृष्टि पड़ने पर क्यों ऐसी हालत हो जाती है

। शीघ्र ही आप उनके घर कुछ साथियों के साथ पहुँच गए - और वहाँ जाते ही जीवन-भर के लिए प्रेम के अटूट बंधन में जकड़ लिए गए ।

संस्कारी महापुरुष भगवान् के नाम तथा संतों के आध्यात्म प्रसार के लिए ही जन्म लेते हैं। आपने भी अपने गुरु -भगवान् के सम्पर्क में आकर उनकी सारी आध्यत्म विद्या सहज ही में ग्रहण कर ली। उनके समय में भी कार्य किया और उनके निर्वाण के पश्चात् जो कार्य किया उससे हमारे सत्संग के भ्रातागण भली-भाँति परिचित हैं।

पूज्य भाई साहब ने हाई स्कूल की परीक्षा फ़तेहगढ़ में ही पास की। फिर कुछ समय इधर-उधर कार्य करते रहे । 1919 में श्रीमान लाला जी महाराज के आदेशानुसार आप आगरा मैडिकल कॉलेज में पढ़ने गये और डाक्टर बन गए। गवर्नमेन्ट सर्विस भी की परन्तु फिर सिकन्दराबाद आकर अपना ही क्लीनिक खोल लिया। आरम्भ में कुछ कठिनाई हुई परन्तु शीघ्र ही क्लीनिक चल गया और धीरे-धीरे आपकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी और आपकी गिनती अच्छे मशहूर डाक्टरों में होने लगी।

रोग निदान (diagnosis) का वरदान आपको गुरु भगवान से मिला। इस व्यवसाय के लिए यह अत्यन्तावश्यक है । औषधि उपचार बाद की बात है - उसके लिए तो साधन भी उपलब्ध हैं। आपका विश्वास होमियोपैथी में भी खूब था और जहाँ उचित समझते होमियोपैथिक औषधियों का भी प्रयोग करते थे ।

आपकी जीवनी आपके शिष्यों द्वारा लिखी जा चुकी है जिनमें उनके जीवन का परिचय पर्याप्त रूप से मिलेगा।अतः मैं इतना ही परिचय - देकर मेरी जानकारी में उनके जीवन की वे घटनायें लिखना उचित समझता हूँ - जिनकी जानकारी सम्भवतः कम ही महानुभावों को होगी।

सन 1928 में मेरे एक सहपाठी श्री रामप्रसाद जी दलेला - फतेहगढ़ निवासी - के साथ मुझे एक परीक्षा के लिए दिल्ली जाना था। परीक्षा के पश्चात् हम दोनों ने सलाह की कि वापसी में ग़ाज़ियाबाद, सिकन्दराबाद होते हुए ही लौटें। ग़ाज़ियाबाद में पूज्य भाई साहब डॉ०श्याम लाल जी के साथ तथा सिकन्दराबाद में आपके दर्शन किये - तबसे हमारी घनिष्टता आपसे बढ़ी और दिनोंदिन बढ़ती ही चली गयी।

कभी आप कानपुर श्रीमान चच्चा जी महाराज के पास भी पधारते। मैं तो अधिकतर उनके पास हुई रहता - आपके सम्पर्क का लाभ वहाँ भी मिलता रहा। मैने आपको श्रीमान लालाजी तथा श्रीमान चच्चा जी महाराज के परिवारों में इस प्रकार रहते देखा कि जैसे उनके कुटुम्ब के ही सदस्य हों। आत्मिक कुटुम्ब के साथ आप थे ही - आत्मिक सम्बन्ध शारीरिक सम्बन्ध से कम घनिष्टता का किसी प्रकार भी नहीं होता।

सभी की सेवा में श्रीमान लालाजी महाराज के समय से ही आप पूजा के अतिरिक्त सत्संगियों के निवास-आराम-भोजन आदि की व्यवस्था करने में अग्रसर रहते। परिवार में विवाहादि के अवसर पर भी इसी प्रकार सारा कार्य करते जैसे परिवार के आम सदस्य करते।

इज़ाज़तनामा - आपकी स्वयं की बतलायी हुई घटना इस प्रकार है । श्रीमान हुज़ूर मौलवी साहब, भौगाँव निवासी का एक पात्र आपको मिला, लिखा था - " बरखुर्दार तुम्हें देखने को जी चाहता है, वक्त निकालकर मिल जाओ।"

आप भौगाँव गए , 2-3 दिन सेवा में रहे - इज़ाज़त ली और लौट आये। कुछ समय बाद फिर ऐसा ही पत्र मिला और पूज्य भाई साहब गए और 2-3 दिन रहकर लौट आये।

तीसरी बार फिर ऐसा ही पत्र आया और पूज्य भाई साहब चले गए। इस बार जब लौटने लगे तो श्रीमान मौलवी साहब ने अपने बॉक्स में से एक क़ागज़ निकाला और फ़रमाया - " बरखुर्दार, ये तुम्हारा इज़ाज़तनामा मुंशी जी (श्रीमान लाला जी) मुझे दे गए थे थे । लो मैं तस्दीक किये देता हूँ। इसे ले जाओ - तुम्हें मुबारक़ हो।"

पूज्य भाई साहब ने मुझे बतलाया था कि श्रीमान लाला जी महाराज ने दो इज़ाज़तनामे लिखे थे । एक तो यह था - दूसरा श्री चच्चा जी, जयपुर वाले (पूज्य श्रीमान डॉ० कृष्णा स्वरुप साहब) के लिए। पूज्य भाई साहब के अनुसार हमारे यहाँ मौखिक आज्ञा के अतिरिक्त लिखित आज्ञा होना भी आवश्यक होता है ।

दाँत का दर्द - आपने एक बार बतलाया कि श्रीमान लाला जी महाराज बैठे हुए कुछ आगुन्तकों से बातें कर रहे थे । उनका हाथ बार-बार अपने गाल और ठोढ़ी पर जाता था । पूज्य भाई साहब ने समझ लिया कि इनके दाँत में दर्द हो रहा है । अपने एक तरफ बैठ कर दर्द को

सल्व कर लिया। परन्तु उस समय न तो आपको सल्व करने का नियम ही मालूम था और न गुरु भगवान की आज्ञा ही इसके लिए मिली थी। अतः वह दर्द आपके दाँत में आ गया। आप बताते थे कि चारपाई के नीचे लोटने लगे, " हाय मरा, हाय मरा " ऐसे शब्द निकल पड़े। श्रीमान लाला जी महाराज का ध्यान तुरन्त ही उधर गया। बोले - "अरे श्रीकृष्ण ये तुमने क्या किया ? तुमसे बर्दाश्त नहीं होगा - मुझे तो इसकी आदत है ।" यह कहते कहते दर्द वापिस ले लिया।

बीमारी - पूज्य भाई साहब डॉ०श्याम लाल जी ने एक बार बतलाया कि वे फतेहगढ़ गए थे और इन भाई साहब का भी प्रोग्राम उस दिन फतेहगढ़ पहुँचने का था। परन्तु इन्हें शिकोहाबाद पहुँचते-पहुँचते हैज़ा ( ) का ऐसा प्रकोप हुआ कि शिकोहाबाद गाड़ी से उतारकर इन्हें अस्पताल पहुँचा दिया गया। कुछ घंटों में तबियत सम्भल गयी और दूसरे दिन आप फ़तेहगढ़ पहुँचे और अपना समाचार बतलाया। भाई साहब डॉ०श्याम लाल जी ने बतलाया कि जिस समय वे भाई साहब बीमार हुए, ठीक उसी समय से कई घंटे तक श्रीमान लाला जी महाराज बरामदे में बराबर जल्दी-जल्दी टहलते रहे। उस समय कोई बात करने आता तो उसे टाल देते। चेहरे से पता चल रहा था कि बहुत परेशान हैं। पूज्य भाई साहब के पहुँचने पर यह सब समझ में आया कि श्रीमान लाला जी महाराज की परेशानी क्या और क्यों थी ?

फ़क़ीरों की सात मंजिलें

जयपुर में पूज्य संत श्रीमान डॉ०कृष्णा स्वरुप जी रहते थे । मैं इनकी सेवा में जाता ही रहता था। एक दिन दोपहर को चला गया तो देखा कि ये भाई साहब वहाँ बैठे चच्चा जी से बात कर रहे हैं। चच्चा जी की दृष्टि उन दिनों बहुत मंद हो रही थी। मोतियाबिन्द उन दिनों बढ़ गया था। बाद में तो ऑपरेशन हुआ और वे ठीक हो गए। परन्तु उस समय उनकी लिखित एक पुस्तक का प्रारूप ऐसा था कि वे स्वयं उसे पढ़ भी नहीं सकते थे । ये प्रारूप उन्होंने पूज्य भाई साहब को दिखलाया कि इसे कौन पूरा करे ? पूज्य भाई साहब ने उस पुस्तक का प्रारूप उनके अनुरोध पर ले लिया। बाद में आपको जब आपको समय मिला तो उसे एक पुस्तक के रूप में - *" फ़क़ीरों की सात मंज़िले "* नाम से प्रकाशित करा दिया।(रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन पर उपलब्ध)

सन 1966 में रिटायरमेंट की छुट्टी पर था और एक मित्र के पास दिल्ली आया हुआ था। मेरे बड़े पुत्र कैप्टेन प्रेम प्रकाश उन दिनों बम्बई में पोस्टेड थे और फ्लाइट लेकर दिल्ली आये थे । मैने एक टैक्सी का प्रबन्ध किया और प्रेम को साथ लेकर सिकन्दराबाद पूज्य भाई साहब की सेवा में गया और प्रेम को उनके सामने पेश किया। आपने बड़े प्यार से अपने पास बिठलाया - फिर खाना खिलाया और कहा - " बेटे, लंगोट के सच्चे रहना, गुरु महाराज तुम्हारा भला करेंगे।" उस समय का आशीर्वाद कई वर्षों बाद फलीभूत हुआ जब उनकी पोस्टिंग बम्बई से दिल्ली हुई और पूज्य श्रीमान सरदार साहब ने उन्हें दीक्षित किया।

सौभाग्यवश पूज्य भाई साहब के छोटे भ्राता श्रीमान डॉ०महाराज कृष्ण जी की पोस्टिंग शाहजहाँपुर में हैल्थ ऑफ़िसर के स्थान पर हो गयी। पूज्य भाई साहब भी वहाँ आते-जाते रहते थे । मैने पहले इन्हें इन हैल्थ ऑफ़िसर साहब से मिलवाया और फिर पूज्य भाई साहब से भी इनका सम्पर्क हुआ। गुरु भगवान की दया कृपा से इन भाई साहब के प्रति उनका विश्वास जाग्रत करने में सहायता मिली और पहले शाहजहाँपुर में इनसे मिले - भाई साहब इनके घर भी गए - और ये मामा जी सिकन्दराबाद आने लगे और कई बार आये।

गुरु भगवान की कृपा से इनका विश्वास बना और बनता ही चला गया। परन्तु फिर भी पूज्य भाई साहब इन्हें मामा जी कहते और ये भांजे नाते उन्हें उपहार देते। यह व्यवहार देखकर मुझसे रहा नहीं गया और पूज्य भाई से अकेले में यह प्रश्न कर ही डाला कि ये आपका भांजा और आप इन्हें मामा जी मानते हैं - इन्हें इस समय गुरु की आवश्यकता है जो इनका काम बनाये ? ये सब कैसे होगा?

पूज्य भाई साहब ने मुझे आश्वासन दिया कि " सब ठीक हो जायेगा - चिन्ता न करो। गुरु महाराज श्रीमान लालाजी महाराज की कृपा इन पर है - वे सब सम्भाल लेंगे।"

इन मामाजी के बड़े सुपुत्र, जिनके पास ये अपने अन्त समय में रहे - बतलाते थे कि उनके दोनों हाथ निर्बल होने के कारण उठते नहीं थे - सहायता करनी पड़ती थी। अन्त समय में उठे और हाथ जोड़कर मस्तक पर हाथ लगाए और उसी मुद्रा में प्राण त्याग दिए। तब हाथ भी गिर गए। इस सबको जानकर यही लगता है कि उस समय उन्हें श्रीमान लालाजी महाराज तथा

पूज्य भाई साहब दोनों के दर्शन हुए और उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और उनके साथ ही चले गए।

इन मामाजी ने अपने सुपुत्र श्री गुरु प्रकाश, एडवोकेट, शाहजहाँपुर तथा भतीजे श्री विद्या शरण कंचन को भी पूज्य भाई साहब से दीक्षा दिलवाई।

प्रेम नारायण जी -- जब आप अपने बड़े सुपुत्र श्री शिवनाथ सहाय के पास बरेली रहते थे, आपके एक प्रियजन श्रीमान प्रेम नारायण जी - भी पूजा में सम्मिलित होने लगे। ये प्रेम नारायण जी भी मामाजी के साथ सिकन्दराबाद आये और पूज्य भाई साहब से दीक्षा के लिए निवेदन किया। आपने (पूज्य भाई साहब ने) इनसे पूछा तो बतलाया कि वे इससे पहले तीन गुरु कर चुके हैं जिनसे उन्हें कोई आत्मिक लाभ नहीं मिला। आपने आज्ञा दी कि इन गुरुओं से पूछ आओ - यदि यह विद्या उनके पास हो तो उन्हीं से लो नहीं तो आज्ञा ले लो - तब मैं अभ्यास में दाखिल करूँगा। इन प्रेमनारायण जी को कई मास बाद एक गुरु ने तो आज्ञा दे दी - एक संसार से जा चुके हैं - एक का पता ही नहीं चला कि जीवित भी हैं अथवा नहीं। तब आपने अभ्यास बतलाया और फिर दीक्षा भी दी।

संतों की सन्तान के विषय में हमारी परम्परा में मैंने देखा कि कुछ महानुभावों ने तो संतों की जीवनी लिखते हुए ही लिख दिया कि अमुक सन्तान को आध्यात्म में कोई रूचि नहीं है ।यह अनुचित ही नहीं - गुरुदेव की सन्तान का निरादर है । गुरुदेव की सन्तान आध्यात्म में कभी भी उतर सकते हैं और हम सब से आगे निकल सकते हैं - किसे पता है ? मैं इस विषय में हमारे श्रीमान लालाजी महाराज की एक घटना प्रस्तुत करना आपकी सूचनार्थ -अपना कर्तव्य समझता हूँ।

एक बार श्रीमान लालाजी महाराज अपने चौक में बैठे हुए कुछ आगुन्तकों से बातें कर रहे थे कि द्वार पर एक इक्का आकर रुका। आपने थोड़ा झुककर देखा कि कौन आया है, और उठकर बिना जूता पहने ही लपकते हुए द्वार पर पहुँचे और आगुन्तक को आदर से इक्के पर से उतारा और उन्हें आगे करके पीछे-पीछे आये। जिस स्थान पर आप बैठते थे वहाँ उन्हें बिठलाया और हाथ बांधकर सामने बैठे, उनसे कुशल समाचार पूछा। बाद में श्रीमान जी ने

बतलाया कि ये सज्जन हमारे गुरुदेव के परिवार के थे - यद्यपि इनका आध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं था।

जहाँ तक मुझे पता है सन 1964 में ही पूज्य भाई साहब ने अपनी संस्था " **रामाश्रम सत्संग** " का पंजीकरण करवा दिया था। उसके पहले से ही वे तीन खाते रखा करते थे :

(1) भंडारा फण्ड - भेंट की आय और व्यय

(2) पुस्तकों का फण्ड

(3) मासिक पत्रिका (राम सन्देश) फण्ड

इनकी आय तथा भोजन आदि पर व्यय का पूरा हिसाब रहता था। वार्षिक भण्डारा पर ये तीनों वार्षिक आय -व्यय का हिसाब एक सभा में प्रस्तुत किया जाता था और पास कराया जाता था। यह क्रम बाद में भी चलता रहा और अब भी चल रहा है । मासिक पत्रिका में यदा-कदा कमीं पड़ती तो भण्डारा फण्ड से पूर्ति की जाती है ।

पूज्य भाई साहब को यह तो पता था ही कि मैं कई वर्ष कानपुर में श्रीमान चाचा जी महाराज की सेवा में रहा। इसी कारण उन्हें अनुमान था कि मेरी दीक्षा भी श्रीमान चाचा जी महाराज द्वारा हुई है । सिकन्दराबाद जब आया तो आरम्भ में ही आपने मुझसे पूछा कि तुम्हें दीक्षा तो श्रीमान चच्चा जी महाराज ने दी है । मेरे यह निवेदन करने पर कि मुझे मार्च सन 1928 में श्रीमान लाला जी महाराज ने दीक्षा दे दी थी - वे बहुत प्रसन्न हुए। मुझे ऐसा लगा कि मेरी और उनका झुकाव तथा प्रेमाकर्षण कुछ अधिक हो गया।

हमारे सन्तमत में जिन्हें अपना अधिकारी बनाना अभीष्ट होता है - उनसे सद्गुरु प्रायः अपने जीवन-काल में ही काम लेना प्रारम्भ कर देते हैं - ऐसा देखा गया है । हमारे श्रीमान लाला जी महाराज ने भी अपने कई शिष्यों से समय-समय पर काम लिया और सामूहिक आयोजनों में, भण्डारों आदि में, अपने शिष्यों से अपने स्वयं की देख-रेख में काम कराया। मेरी जानकारी के अनुसार मैने इन सभी संतों की सूची अपनी पुस्तक 'यादें' में दी है ।

हमारे भाई साहब ने भी कई महानुभावों को 'पूर्ण' किया और काम करने योग्य बनाकर उन्हें 'गुरु' पदवी दी। इनमें मेरी जानकारी में उनके निम्नलिखित शिष्यों को यह अधिकार प्राप्त है :

(1) श्रीमान डॉक्टर करतार सिंह धींगरा - दिल्ली

(2) श्रीमान डॉक्टर। हरीकृष्ण भटनागर - सिकन्दराबाद

(3) श्रीमान डॉक्टर राजेंद्र कुमार - ग़ाज़ियाबाद

(4) श्रीमान डॉक्टर वीरेन्द्र कुमार - लखनऊ

(5) श्रीमान डॉक्टर ब्रजेन्द्र कुमार - रुड़की

(6) श्रीमान डॉक्टर ब्रजेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ - सुपुत्र परमसन्त डॉ०चतुर्भुज सहाय जी - मथुरा

इनके अतिरिक्त और भी हो सकते हैं जिनकी जानकारी मुझे नहीं है ।

लगभग सभी संतों के निर्वाण के पश्चात् उनके सत्संग का विभाजन हुआ और उनके शिष्यों ने अपना-अपना सत्संग अलग करना प्रारम्भ कर दिया। श्रीमान लालाजी महाराज के पश्चात् उनके शिष्यों के द्वारा भी अलग-अलग काम हुआ और फिर उनके शिष्यों के काम भी इसी प्रकार बँट गए।

श्रीमान लालाजी महाराज ने अपने समय में ही ऐसा एक संगठन बनाना चाहा था कि सारा कार्य-संचालन एक ही स्थान पर रहे। उनके द्वारा लिखित एक नोट भी उन्होंने सन 1929 या 1930 के भण्डारे के अवसर पर पढ़कर सुनाया था, परन्तु उस समय वातावरण अनुकूल न होने के कारण उस सबको उन्होंने उठाकर रख दिया। यह सब मुझे पूज्य भाई साहब ने स्वयँ ही बताया था।

हमारे पूज्य लालाजी महाराज तथा पूज्य भाई साहब जैसे संतों के विषय में बहुत कुछ और लिखा जा सकता है । हमारे भ्रातागण यह सब लिखते ही रहते हैं और भविष्य में भी

लिखते रहेंगे। मैने जो निवेदन किया है वह मेरी निजी जानकारी के अनुभव के अनुसार हुआ है । कोई त्रुटियाँ रह गयीं हों तो पाठकगण कृपा करके मुझे क्षमा कर दें।

गुरु भगवान हम सबका कल्याण करें।

oooooooooooooo

<u>सुधा बिन्दु</u>

O केवल गुरु ही हमारे सच्चे हितैषी और शुभचिन्तक है ।

O ज़िन्दगी का आदर्श ईश्वर से मिलकर एक हो जाना है ।

O ईश्वर तुम्हारे अन्दर है । उसे प्रेम से बुलाओ। वह ज़रूर आयेगा

पूज्य गुरुदेव डॉ॰ श्रीकृष्ण लाल जी

उनके गुरुजन तथा वंश-परिवारी

- श्री जयनारायण गौतम, अहमदाबाद

पूज्य डॉ॰ श्रीकृष्ण लाल जी प्रातः स्मरणीय संत प्रवर 'श्रीकृष्ण' ने उत्तरप्रदेश के सिकन्दराबाद में जब एक सौ वर्ष पहले ,पिताश्री भगवददयाल व माता श्रीमती विशन देवी के यहाँ आश्विन शुक्ल नवमी, विक्रमी संवत 1951 तदुनसार 15 अक्टूबर सन 1894 ईस्वी के पुनीत दिवस जन्म पाया होगा, उस समय 'वैदिक' भावना का आशीर्वाद " शत जीवी भव" में निहित आंतरिक आकाँक्षा उन माता-पिता के मन में सक्रिय रही होगी कि बेटा प्रसिद्धी प्राप्त शतायुष बने। इस ही भावना के अनुरूप 'श्रीकृष्ण' नामकरण हुआ। ऐसे व्यक्ति दुनिया में इनेगिने ही मिलते हैं जो 'यथानाम तथा गुण' वाले सिद्ध हुए हों, पर हमारे महामना 'श्रीकृष्ण' ऐसे ही खरे उतरे थे।

'शत' शब्द का प्रथमाक्षर 'श' और श्रीकृष्ण शब्द का प्रथमाक्षर भी 'श' इस अनुरूपता की पुष्टि करते हैं कि महामना परम संत के समारोह आयोजन में 'जन्म शताब्दी' भाव सार्थक हुआ, फलतः चंहुओर प्रकाश की राशिमयां बरस रहीं हैं।

इन महामना का भौतिक शरीर तो 76 वर्ष में दिवंगत हो गया था, पर मानवी कल्याण की भावना की प्रसिद्धि आज भी छिपी नहीं है । एक ओर सन 1994 ई। के जन्माष्टमी पर्व में उन 'वासुदेव' की याद में समस्त भारत देश नतमस्तक है कि उन्होंने स्वयं को ज्ञान, विज्ञानं, कर्म, उपासना के रहस्य का प्रतीक बनकर दिखाया था, तो दूसरी और संत प्रवर डॉक्टर 'श्रीकृष्ण' ने आचरण, गृहस्थ धर्म, जीवन का समुच्चय स्वयं बनकर दिखाया कि जन साधारण उस व्यवहार को अपनाकर अपनी गिरी पड़ी वर्तमान स्थिति से उभर सके। इन्हीं कल्याणकारी महान विभूति की पृष्ठभूमि में रहे उनके गुरुजन तथा वंश-परिवार का संक्षिप्त सा परिचय, अपरिचित प्रेमी भाई-बहनों के लाभार्थ पुनः प्रस्तुत है ।

गुरुदेव के गुरुजन

परमगुरु महात्मा रामचन्द्र जी

पूज्य गुरुदेव के परम पूज्य गुरु महाराज महात्मा रामचन्द्र जी अपने इलाक़े के एक प्रसिद्ध कायस्थ घराने चौधरी ख़ानदान के चौधरी हरबख़्श राय जी के सुपुत्र थे । चौ। हरबख़्श राय के दूसरे सगे भाई का नाम चौधरी उल्फ़त राय सक्सेना था। चौधरी हरबख़्श राय के दो पुत्र थे - (1) महात्मा रामचन्द्र, और (2) महात्मा रघुवर दयाल । उधर चौ. उल्फ़त राय के दो पुत्र - (1) श्री राम स्वरुप, (2) डॉ० कृष्णस्वरूप जी थे । रामचन्द्र जी का जन्म बसन्त पंचमी पर्व के दिन 02-02-1873 को हुआ था । पढ़े एवं आध्यात्मिक शिक्षा जनाब फ़ज़्ले अहमद खां साहब से पायी। आपको शिक्षक पदवी 23-01-1896 को मिली एवं आचार्य (ताअम्मा) पदवी के 11-10-1896 को पुष्टिकरण हुआ। सत्संग कार्य प्रसारण 1914 ई० से किया, कुल आयु 58 वर्ष में 15-08-1931 को 01.00 बजे (रात) को शरीर का निधन हुआ था । इनकी समाधि फ़तेहगढ़ में कन्नौज मार्ग पर है ।

पूज्य महात्मा रामचन्द्र जी (लाला जी) महाराज ने सबसे पहला सत्संग इलाहबाद (प्रयाग) में 1929 में किया था। विचारों में 'सन्तमत' के अनुयायी थे । हिंदी, उर्दू, फ़ारसी व अंग्रेजी भाषाओँ में प्रवीण थे । दान-दक्षिणा नहीं लेते थे - यदि कभी किसी ने हठ पूर्वक श्रद्धा से कुछ दिया भी तो तुरन्त 'सत्संग' कार्य में लगा देते। मनुष्य का आध्यात्मिक, सामजिक उत्थान उनका ध्येय रहा। स्वामी ब्रह्मानन्द सन्यासी उनके मित्र थे एवं उनके न्योछावर शिष्य रहे। हमारे पूज्य डॉ० श्रीकृष्ण लाल जी ।

महात्मा रामचन्द्र जी के बाद कुछ काल उनके पुत्र मा. जगमोहन नारायण ने कार्य संचालन रखा - उनको दीक्षा मौ। अब्दुलग़नी खां साहब ने दी।थी। मा। डॉ० महेश्वरी सहाय ने उज्जैन में (शिष्य मा० रामचन्द्र - सहपाठी मित्र डॉ० श्रीकृष्ण तथा म० बा० श्यामबिहारी, पोस्टमॉस्टर, फ़तेहगढ़ ने लोकल कार्य देखा। और मा।पं। हीरालाल जोशी रावटी (रतलाम) शिष्य लाला जी + डॉ०कृष्णस्वरूप जी - ने मध्य प्रदेश में सत्संग कार्य चलाया ।

महात्मा श्री रघुवर दयाल जी

महात्मा रघुवर दयाल जी म० रामचन्द्र जी के सगे छोटे भाई एवं मा। रामचन्द्र जी की तरह गृहस्थी साधु थे - गुरु परम्परा में अटूट विश्वास था एवं मौलवी फ़ज़्ले अहमद खां के शिष्य थे । म० रामचन्द्र जी को उन्होंने मात्र बड़े भाई ही नहीं, अपितु गुरुवत श्रद्धा दी । इनका जन्म भी करवाचौथ के दिन 07-10-1875 को हुआ । 1911 ई० को होलिका पर्व पर श्री लाला जी से आचार्य पदवी मिली थी जिसकी 1913 ई. में जनाब मौ० अब्दुलग़नी खां० ने पुष्टि की थी ।

आपका स्वभाव अत्यन्त विनोद प्रिय था और शिक्षा की प्रणाली भी इसी रंग में रमी हुई थी। इनका आशीर्वाद सबको सहायक था। इनका कार्यक्षेत्र कानपुर रहा, और इन्होने काफ़ी प्रसद्धि पायी। इनकी समाधि भी कानपुर में है । वहीँ हर वर्ष भण्डारा आयोजित किया जाता है । आपने 07-06-1947 को कानपुर में शरीर त्याग किया था। इन्हीं के नाम पर कानपुर में 'रघुवर नगर ' है

पूज्य बैनर्जी साहब का सानिध्य

एक अन्य सन्त श्री अक्षय कुमार बैनर्जी से गोरखपुर में मिलन 1958 में हुआ । उनसे भी श्री गुरुदेव को प्रेमदान 1966 तक मिला। वे 'शिव सिद्धान्त प्रणाली' के सिद्ध पुरुष थे एवं समय-समय पर उपयुक्त मार्गदर्शन देते रहते थे । श्री गुरुदेव ने पुनः अपना 'गुरु' बैनर्जी साहब को नहीं बनाया था, पर आदर उनके प्रति वैसा ही था। सन्तों में दुइ नहीं होती । श्री बैनर्जी साहब अपनी आध्यात्म प्रसादी श्री गुरुदेव को दे गए थे - श्री बैनर्जी साहब के लिखित गूढ़ रहस्यों को स्पष्ट करने वाले विचार अंग्रेजी में लिखित - Discourses on Hindu Spiritual Culture नामक तीन पुस्तकों में पूज्य गुरुदेव ने वर्तमान अध्यक्ष डॉ०करतार सिंह जी के संरक्षण में दिल्ली में करवाया ।

गुरुदेव के गुरुभाई म. डॉ० कृष्णा स्वरुप जी

मा। डॉ०कृष्ण स्वरुप जी, जयपुर, सुपुत्र चौ। उल्फ़तराय, मा। रामचन्द्र जी के चचेरे भाई थे, एवं उन्हीं की आज्ञा से महात्मा फ़ज़्ले अहमद साहब से दीक्षा ली थी। परन्तु तरबियत म. रामचन्द्र से पायी थी। उनकी जन्मतिथि 22-12-1879 है । आगरा मेडिकल कॉलेज से 1905 में पास करके डॉक्टर बने थे ।

म० रामचन्द्र से उन्हें 1931 के प्रारम्भ में आचार्य पदवी मिली थी । वे 1915 से 1920 तक रतलाम ज़िले के रावटी में सरकारी डॉक्टर थे एवं उनके ही यहाँ काम करने वाले प्रिय शिष्य थे पं। रेवाशंकर और श्री हीरा लाल जोशी (बाप्पा जी) फिर वे 1920 से 1934 तक अजमेर और 1934 से 1958 तक जयपुर रहे एवं 19-09-1958 को जयपुर में शरीरान्त हुआ। आपने सत्संग प्रसार राजस्थान एवं मध्यप्रदेश में किया।

म. डॉ० चतुर्भुज सहाय जी

मा। डॉ०चतुर्भुज सहाय जी का कार्यक्षेत्र पहले एटा फिर मथुरा में ही मुख्यतः रहा। वे। भी मा। रामचन्द्र के शिष्य थे । उनका जन्म कासगंज के ही समीप ग्राम चमकरी में 03-11-1883 ई। कार्तिक शुक्ल चतुर्थी को हुआ था। पिताश्री का नाम था श्री रामप्रसाद कुलश्रेष्ठ। प्लेग की महामारी के दिनों में डॉ०चतुर्भुज सहाय जी ने सतत 'फ्री' सेवा दी थी।

विचारों में स्वतन्त्र दार्शनिक हिन्दुत्व प्रभाव के थे एवं दार्शनिक इतिहास की जानकारी का बाहुल्य उनमें था। अनेक पुस्तकें उन्होंने प्रकाशित करीं थीं। 'साधन' पत्रिका (मथुरा) उनकी संस्था का मुख्य प्रकाशन है । उनकी यौगिक प्रणाली में 'प्रकाश' का महत्त्व रहा है । ७४ वर्ष की आयु पर शरीरान्त मथुरा सत्संग भवन में हृदयगति रुकने से हुआ। डॉ०साहब के बाद उनकी पत्नी 'जियामाता' के नाम से सत्संग चलाती रहीं। उनके पुत्र डॉ०विजेंद्र कुमार एवं श्री हेमेंद्र कुमार ने दीक्षा डॉ०श्रीकृष्ण जी से ली थी। साधन मासिक पत्रिका को अब उनके पुत्र प्रोफेसर (डॉ) नरेन्द्र कुमार मथुरा से चला रहे हैं ।

म. श्री बृज मोहन लाल जी

आपका जन्म रामनवमी के पवित्र दिन 31-03-1898 को पूज्य लालाजी के गुरु महाराज पूज्य हुज़ूर जनाब रायपुरी साहब के आशीर्वाद से पूज्य चच्चा जी महाराज के सुपुत्र के रूप में हुआ । साँसारिक व आध्यात्मिक शिक्षण पूज्य लालाजी से पाकर भौगाँव वाले मौलवी साहब ने अपनी पगड़ी इनके सिर दशहरे पर सन 1928 में बाँधी और पूज्य लालाजी ने ही इन्हें सम्पूर्ण आज्ञाएँ दिनांक 31-01-1928 को प्रदान कर दीं।

पू. लालाजी के कहने पर थानेदारी छोड़कर क्लर्की करी व जीवनयापन पूरी निष्ठां और सादगी से किया। आप पूज्य लालाजी की भाँति भजन बहुत सुरीले ढंग और भाव से गाते थे । आप सिकन्दराबाद और मथुरा भण्डारों में भी जाते थे । इनके दो पुत्र हुए, श्री ओंकार नाथ जी तथा मुन्ने बाबू और शिष्यों में प्रमुख रहे सर्वश्री पेशकर मोहन लाल (बुलन्दशहर) , पेशकर कुंवर बहादुर (बरेली) और यशपाल जी (देहली) में सत्संग कार्य करते रहे।

अन्य सद्गुरूजन

संगत की सेवा जहाँ एक ओर उत्तराधिकारी करते हैं - तहाँ अपने आपको दबा या छुपाकर अन्य भाई लोग भी अपने आपको सेवा में व्यस्त रखते हैं। म। रामचन्द्र जी, म। रघुवरदयाल जी एवं डॉ०कृष्णा स्वरुप के बाद यशस्वी भक्तों में जयपुर के ठाकुर रामसिंह के बाद डॉ० हरिनारायण सक्सेना जी हैं । वे अब जीर्ण-शीर्ण परिपक्व आयु में भी फ़तेहगढ, कानपुर, लखनऊ, रावटी, सिकन्दराबाद, ग़ज़ियाबाद, भण्डारों में सम्मिलित होते रहते हैं । इन्होने भी अंग्रेजी, हिंदी में 'दर्शन' विषय पर कई पुस्तकें लिखीं हैं । डॉ०हरनारायण जी ने मार्च 1928 में म० रामचन्द्र से दीक्षा ली थी एवं तकमील म० रघुवर दयाल, म० डॉ० कृष्ण स्वरुप जी से पायी थी और अब वे पूरी तरह से सत्संग समर्पित जीवन में रहते हैं । अपने पुत्रों को दीक्षा डॉ० सरदार करतार सिंह जी से दिलाई है ।

वंश परिवार - संस्कारी माता पिता

परम पूज्य महात्मा डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी के पिता जी, श्री भगवत दयाल भटनागर, मुहल्ला कायस्थवाड़ा, सिकन्दराबाद (जिला बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश) के कौटुम्बिक निवासी थे, कि जो अपनी सर्विस की अवधि में पर्याप्त समय फ़तेहगढ़(फ़र्रुख़ाबाद, उ।प्र।) में सार्वजनिक निर्माण विभाग में 'ओवरसियर ' रहे। 'सर्विस' के बाद सिकन्दराबाद में आटे की बिजली की चक्की चला रखी थी। शरीर से लम्बोतरे, गौर वर्ण के थे । पिताश्री डेरा बाबा जयमल सिंह, व्यास, जिला अमृतसर (पंजाब) के 'राधास्वामी' सत्संग के अनुयायी थे, एवं स्वयं संत सावनसिंह जी महाराज के शिष्य थे और उनकी पत्नी स्वनाम धन्य 'श्रीमती कृष्णा जी इन्हीं महाराज सावन सिंह जी से दीक्षित थीं, जो आजन्म अंतिम सांस तक हुज़ूर सावन सिंह जी की पुस्तिका संतमत का नित्य पाठ करती रहीं। इस प्रकार घर में शुद्ध सात्विकी वातावरण था ।

जन्म एवं शिक्षा-दीक्षा

महामना डॉक्टर श्रीकृष्ण लाल जी सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश) का जन्म आश्विन शुक्ला नवमी (श्राद्ध पक्ष) के बाद पवित्र नवरात्र पर्व की मंगलवार संवत 1951 विक्रमी, तदनुसार 15-10-1894 का है । सुन्दर छवि व हृष्ट-पुष्ट शरीर के पाँच फुट साढ़े सात इंच के थे । श्रीकृष्ण जी का विवाह 1916 ई। में हुआ था। आपने 76 वर्ष की आयु में वैशाख शुक्ला 12 संवत 2027 वि। सोमवार तदनुसार 12 रबी उलअव्वल बारे वफ़ात दिनांक 18-05-1970 को शरीर छोड़ा ।

युवा श्रीकृष्ण लाल ने एस। एल। सी। एन्ट्रेंस पास करने के बाद कुछ समय 'क्लर्की', फिर 'टीचरी' करी पर असंतुष्ट से रहते थे । इस पर गुरुदेव की अद्भुत कृपा से डॉक्टरी करने की इच्छा पूर्ण हुई ।

उनकी भेंट महात्मा रामचन्द्र से 1914 ई।में फ़तेहगढ़ में हुई थी एवं पूर्वजन्म के संस्कारों ने यकायक ज़ोर मारा, कि 1915 ई। में उनको म। रामचन्द्र ने आगे शिष्य वर्ग को उपदेश करने की अनुज्ञा दे दी। मई स। 1920 ई। में श्री लालाजी ने 'इज़ाज़त ता अम्मा ' मौखिक दी

फिर उसको ही 1931 में लिखित प्रदान कर दी थी कि जिसकी तसदीक़ (पुष्टि) मौ.अब्दुलग़नी खां साहब ने करी थी ।

गुरुदेव के भाई-बन्धु

परमपूज्य मा। श्रीकृष्ण ने भाइयों को पढ़ाया। दूसरे भाई श्री गिरवर कृष्ण जी भी श्री लालाजी महाराज से दीक्षित थे । वे पंजाब एवं दिल्ली में इनकम टैक्स अधिकारी रहे एवं हमारे वर्तमान अध्यक्ष आचार्य डॉ०करतारसिंह जी के साथी थे, तीसरे भाई 'बैनी' का शादी से पहले ही निधन हो गया था। चौथे भाई डॉ०महाराज कृष्ण भटनागर (अब 84 वर्ष) रिटायर्ड हेल्थ ऑफीसर, ग़ाज़ियाबाद में रहते हैं - जिन्हें पू.डॉ०श्रीकृष्ण जी ने दीक्षा परमपूज्य मा।रघुवर दयाल (चच्चा जी) से दिलवाई थी एवं सत्संगी तरबियत स्वयं देते रहे। अब वे तन-मन-धन से सत्संगी सेवा में रत हैं। पाँचवे भाई जगदीश कृष्ण जी को पढ़ा-लिखा कर केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग में 'ओवरसियर' कराया था, वे श्री गुरुदेव से दीक्षित थे ।

तीनो बहनोइयों में से बड़े बहनोई श्री बलबीर सहाय भटनागर महात्मा श्री बृजमोहन नारायण मा। रघुवर दयाल, चच्चा जी महाराज के शिष्य थे।दूसरे बहनोई डी०ए०वी०कॉलेज बुलन्दशहर के प्रिन्सिपल थे एवं तीसरे बहनोई वेस्टर्न रेलवे में सीनियर पी०डव्लू०आई० इंजीनियर थे ।

सुयोग्य सुपुत्र

परम् पूज्य डॉक्टर साहब के बड़े सुपुत्र डॉक्टर हरिकृष्ण जी ने अपने पूज्य पिता जी की डाक्टरी दुकान सम्भाली थी कि जिस पर आज भी उन्हीं के पौत्र डॉ० नरेन्द्र बैठते हैं । माननीय डॉ०हरिकृष्ण तीनों भाइयों में आध्यात्मिक शिक्षा में सबसे अग्रणी रहे और आजीवन सत्संग कराते रहे। आपको पूज्य गुरुदेव ने 'इज़ाज़त ता अम्मा ' देकर पूर्णाचार्य भी बनाया ।

पूज्य डॉ०साहब के दूसरे सुपुत्र श्री राधाकृष्ण हैं जो देहली में राजकीय लेक्चरर थे, अब निबृत आयु में ग़ाज़ियाबाद अपने फ्लैट में रहते हैं - एवं पर्याप्त पढ़ी-लिखी संतानों के पिता हैं। तीसरे सुपुत्र श्री गोपाल कृष्ण जनरल इंश्योरेन्स के सीनियर अधिकारी हैं एवं अपने मकान में ग़ाज़ियाबाद में रहते हैं। सभी की सत्संगी वृतियाँ हैं ।

दो महान विभूतियों का स्नेहिल सम्बन्ध

पूज्य बनर्जी साहब एवं पूज्य गुरुदेव

- श्री राम सागर लाल, गोरखपुर

स्वप्न में आवाहन

सन 1959 या 1960 की बात है । परमपूज्य परमसन्त डॉ०श्रीकृष्ण लाल भटनागर साहब वाराणसी में गोला घाट पर श्री सच्चिदानन्द लाल जी के आवास पर सत्संग के सिलसिले में पधारे हुए थे । दूसरे दिन की रात्रि में, भोर में, आपने स्वप्न में एक महापुरुष को देखा जिनका रंग गोरा चिट्टा, शरीर लम्बा-चौड़ा-स्थूलकाय, माथा खल्वाट, चमकता हुआ ललाट, तेज से दमकता चेहरा, आकृति देव-पुरुष जैसी, एक ही धोती आधी पहने, आधी कमर में लपेटे हुए, बाकी निर्वस्त्र था। उस महापुरुष ने कहा - *" डाक्टर साहब ! आप यहाँ सोये हुए हैं, आपका कुछ हिस्सा मेरे पास है, आकर मुझसे लें, मेरे जाने का वक्त हो गया है, मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ"* इतना कहकर वे महापुरुष अन्तर्ध्यान हो गए। इसके बाद पूज्य गुरु महाराज की नींद खुल गयी। उस महापुरुष ने न तो अपना नाम बताया, न ही अपना पता ठिकाना बताया। पूज्य गुरु महाराज परेशान थे । उनका कहना था कि वे मात्र वही या वैसे ही स्वप्न देखते थे जो बाद में सत्य सिद्ध होते थे ।

प्रातः सत्संग के बाद प्रायः सभी लोग तो चले गए पर कुछ ख़ास ख़ास लोग रुके हुए थे । चाय -नाश्ते के बाद उन लोगों से बातचीत के दौरान पूज्य गुरु महाराज जी के मुँह से कुछ नैराश्यपूर्ण भाव निःसृत हुए, जिसका आशय था कि हिन्दुओं में शायद आध्यात्म का जानने वाला कोई महापुरुष अब देखने में आता ही नहीं है । उन श्रोताओं के मध्य डॉ०बाँके बिहारी लाल श्रीवास्तव जी भी थे, उन्होंने पूज्य गुरुमहाराज की बातों का प्रतिवाद करते हुए कहा - "महाराज जी ! ऐसी बात न करें। हिन्दुओं में सन्त हैं, अवश्य हैं, शायद आपकी जानकारी में नहीं हैं।"। इस पर पूज्य गुरुदेव को मानो तिनके का सहारा मिल गया। उन्होंने डाक्टर साहब से साश्चर्य उन महापुरुष के बारे में विशेष पूछताछ की। डाक्टर बाँके बिहारी जी के बताने पर पूज्य

गुरु महाराज को लगा हो न हो यही महापुरुष हैं जिन्होंने आने का निमंत्रण दिया है । आपने डॉ०बाँके बिहारी साहब से अनुरोध किया कि वे थोड़ा कष्ट करके उन महापुरुष से आज्ञा प्राप्त कर लें तो वे उनकी सेवा में उपस्थित होवें।

डॉ०बाँके बिहारी जी दोपहर में पूज्य बनर्जी साहब जो **'सन्त-निवास'** गोरखपुर मंदिर के प्रांगण में रहा करते थे, की सेवा में उपस्थित हुए। डॉ०बाँके बिहारी जी आपकी सेवा में वर्षों से आते जाते थे । ऐसे असमय में आने पर पूज्य बनर्जी साहब ने डाक्टर साहब से आने का कारण पूछा, तो डाक्टर साहब ने निवेदन किया - " रामाश्रम सत्संग के आचार्य डॉ०श्रीकृष्ण लाल भटनागर साहब यहाँ सत्संग हेतु पधारे हैं, और मोहद्दीपुर में ठहरे हुए हैं, वे आपकी सेवा में उपस्थित होने हेतु आपकी अनुमति की प्रार्थना कर रहे हैं।" कुछ क्षण मौन रहने के अनन्तर पूज्य बनर्जी साहब ने मुस्कराकर कहा -

" *अरे ! उनको भी अनुमति चाहिए ? जाइये, अभी ले आईयो"* डाक्टर श्रीवास्तव जी ने लौटकर पूज्य बनर्जी साहब की बात ज्यों की त्यों सुना दी।

पूज्य गुरु महाराज को मानो अयाचित 'अक्षय' रूप में अक्षय भण्डार की प्राप्ति हुई हो, वे हर्ष से फूले नहीं समा रहे थे । शीघ्र ही उन्होंने डॉ० श्रीवास्तव के साथ खाना खाया और फिर रिक्शा मंगाकर तत्काल उनके साथ 'सन्त-निवास' हेतु प्रस्थान किया।

प्रथम भेंट का दिव्य दृष्टांत

दोनों महापुरुषों के प्रथम मिलन का दृश्य जो डाक्टर श्रीवास्तव ने बाद में बताया वह अत्यन्त स्पृहणीय था। पूज्य गुरुदेव ने भी समयान्तर में अपना अनुभव बताते हुए कहा था - 'द्वार पर पहुँचते ही मेरे शरीर में बिजली का करेंट जैसा जारी हो गया तथा श्री महाराज जी में समाधि की हालत में ध्यानमग्न बैठे हुए भगवान महादेव के साक्षात् दर्शन हुए, और बाद में जब-जब उनके दर्शनों को गया, हमेशा शिव भगवान के दर्शन उनमें होते रहे। यहाँ तक कि 20 जनवरी सन 1966 ई। को परम् पूज्य बनर्जी साहब ने तो स्वयं ही भावावेश में कहा था - " Doctor Sahib ! Do not take me to be a man, I am Shiva personified " ये आपके अन्तिम शब्द थे जो इस सत्संग के एक साधक द्वारा सुने गए थे ।

शुरू-शरू में पूज्य बनर्जी साहब की सेवा में पूज्य गुरुदेव अकेले ही जाते थे, पर बाद में वे अपने साथ ख़ास-ख़ास व्यक्तियों को ले जाने लगे। लगभग एक-डेढ़ साल के बाद अपने सारे सत्संगियों को आपने खुला आदेश दे दिया था कि सभी लोग महात्मा बनर्जी साहब की सेवा में नित्य नहीं तो दूसरे-तीसरे दिन, अपनी सुविधानुसार, अवश्य जाकर माथा टेकें। एक बात पर ध्यान देने को आगाह करते हुए अपने कहा था - 'वहाँ जाकर माथा टेक कर चुपचाप बैठ जाएँ और अपने अन्तर में ध्यान लगायें। अन्तर में आदेश मिलने पर शालीनतापूर्वक उठें, चरण स्पर्श करें और हाथ जोड़े वापस आ जाएँ।"

यदाकदा परम् पूज्य बनर्जी साहब प्रवचन भी करते थे । पूज्य गुरुदेव ने एक दिन मुझसे कहा - "आप तो स्टेनोग्राफर हैं, पूज्य बनर्जी साहब के प्रवचनों को शॉर्टहैंड में नोट कर लें और फिर उसे ट्रांसक्राइब करके दे दें तो उन प्रवचनों को राम-सन्देश में छपवा दिया करूँगा। " उसके बाद जब-जब मैं पूज्य गुरुदेव के साथ पूज्य बनर्जी साहब की सेवा में जाता तो शॉर्टहैंड नोटबुक व पेन्सिल लेकर ही जाता और जो-जो प्रवचन मैने नोट किये, सभी को पूज्य गुरुदेव ने राम-सन्देश में छपवा दिया।

महात्मा बनर्जी साहब के साथ वार्तालाप के दौरान पूज्य गुरुदेव को लगा कि पूज्य बनर्जी साहब कुछ किताबें छपवाना चाहते हैं, पर, चूँकि कोई दौड़ -धूप करने वाला नहीं है अतः वह काम वैसे ही पड़ा है । पूज्य गुरुदेव ने निवेदन किया कि अगर मैनुस्क्रिप्टस मिल जाएँ तो उनकी छपाई वे स्वयं करवा देंगे। इस पर महात्मा बनर्जी साहब ने कहा कि -"बहुत सी मैनुस्क्रिप्टस की मात्र एक-एक प्रति ही उपलब्ध है, उन्हें टाइप कराना होगा, क्योंकि प्रेस को शायद दो प्रतियाँ देनी होती हैं, और एक प्रति मैं आपने पास रखना चाहूँगा। पूज्य गुरुदेव ने अनुरोध किया - "मेरे एक सत्संगी स्टेनोग्राफर हैं, वे इस काम को प्रसन्नतापूर्वक कर लेंगे। फिर तो मेरा अहोभाग्य ! वह सेवा ईश्वरेच्छा से मुझे मिल गयी।

पूज्य बनर्जी साहब के एक प्रिय शिष्य थे श्री उपेंद्र नाथ पाल। वे नित्य एक आर्टिकल लेकर ठीक दस बजे मेरे पास आ जाते। *' ईश्वरेच्छा वलीयसी' और जैसी हो भवितव्यता वैसी मिले सहाय*। इस काम के दौरान मैं तिगुनी कृपा का खुला अनुभव करता था - पहली, पूज्य गुरुदेव की, दूसरी परमपूज्य बनर्जी साहब की और तीसरी हरिजनों की व चिन्ता

करने वाले हरि की। अति संकोची भाव से वस्तुस्थिति बता रहा हूँ की मेरे द्वारा छापे गए दो-तीन लेख पढ़ लेने के बाद महात्मा बनर्जी साहब ने पूज्य गुरुदेव को स्वयं बताया कि दर्जनों स्टेनोग्राफर्स उनके सम्पर्क में आये, पर किसी का काम इतना साफ-सुथरा और भूलरहित नहीं मिला।

उसके बाद तो मेरे द्वारा टाइप किये गए आर्टिकल्स को उन्होंने पढ़ना ही बन्द कर दिया था। लगभग आठसौ पन्ने मेरे द्वारा टाइप किये गए थे । इस काम का जो कुछ श्रेय था, सब मेरे पूज्य गुरुदेव का था , वर्ना इस नाचीज़ की क्या मजाल जो इतना कुछ कर पाता।
तुलसीदास जी ने सच लिखा है -

' चाहत करत करावत सोई !

करै अन्यथा असनहिं कोई !! '

टाइप का काम जब पूरा हो गया तो मैं एक दिन शाम को महात्मा बनर्जी साहब की सेवा में उपस्थित हुआ, शाम का वक्त था और बाहर बरामदे में बैठ गए। आपने कहा - " कुछ पूछना चाहते हो तो पूछो ।" मैने निवेदन किया - " महाराज जी, आपके लेख देखने के पहले मुझे मिथ्या अहँकार हो गया था कि मैं भी अंग्रेजी पढ़-लिख लेता हूँ, पर आपके लेखों को देखने के बाद वह अहँकार धाराशाही हो गया कि मेरा ज्ञान मात्र अणुवत ही है, किवां कुछ नहीं है ।" कुछ क्षण मौन रहने के बाद आपने कहा - " यह तो कुर्सी -कुर्सी की बात है । जिस कुर्सी पर बैठ कर ये लेख लिखे गए हैं, जब तुम उस कुर्सी पर बैठोगे तो तुम्हारे लिए भी सारी चीज़ें वही हो जाएँगी।।" *उन्होंने आगे कहा - " मुझे जीवन में सैंकड़ों साधक, सिद्ध-सुजान, योगी, यति, वैरागी, त्यागी, परिब्राजक मिले, परन्तु perfect liberated man (पूर्ण जीवन मुक्त व्यक्ति) कोई व्यक्ति मिला तो वे हैं तुम्हारे डाक्टर श्रीकृष्ण लाल भटनागर जी। तुम लोग अत्यन्त भाग्यशाली हो कि एक ही व्यक्ति में तुम्हें गुरु और निर्देशक दोनों मिले। इनके जीवन में जो कुछ लेना हो ले लो, वर्ना यह चीज़ फिर नहीं मिलेगी।"*

ज्ञातव्य रहे, परम् श्रद्धेय डॉ०एके। बनर्जी साहब अपने कार्यकाल के अति प्रसिद्ध विद्वान तथा गोरखपुर के प्रमुख कॉलेज के सम्मानित प्रधानाचार्य रहे थे । यही थे जिन्होंने हमारे पूज्य गुरुदेव को स्वप्न में बुलाकर उन्हें थोड़े ही दिनों में पूर्ण-पूर्णा की मुहर लगाकर 'सोने में सुगंध' कर दिया। इन्हें हमारे पूज्य गुरुदेव ने अपने श्री गुरुदेव - परम् सन्त महात्मा रामचन्द्र जी साहब उर्फ़ लालाजी, फतेहगढ़ी की ही तरह माना, जाना और सम्मान दिया था।

यह सब मेरे पूज्य गुरुदेव की अहैतुकी कृपा ही थी कि मुझ अकिंचन को पूज्य बनर्जी साहब की सेवा में लगाया और उनका कृपापात्र बनाया।

oooooooooo

हे सतगुरु स्वामी, दया कीजियेगा

हे सतगुरु स्वामी दया कीजिएगा, मुझे अपने चरणों की रज दीजिएगा !

रहूँ आपके प्रेम में मग्नो-सरशार, मुझे अपनी भक्ति का बर दीजिएगा !

मैं बहरे-अलम में बहा जा रहा हूँ, मुझे डूबने से बचा लीजिएगा !

मैं निर्धन हूँ, निर्बल हूँ , कामी हूँ, क्रोधी, बने जैसे मुझको निभा लीजिएगा !

हे स्वामी, हों जिस काम से आप राज़ी, वही काम मुझसे करा लीजिएगा !!

महाराज जी के अंत समय तक पूज्य गुरुदेव की सेवा और सानिध्य

श्रीमती वीरमती जौहरी, गोरखपुर ।

पूज्यपाद बनर्जी साहब के प्रथम मिलन के विषय में गुरुदेव ने कई बार यह चर्चा की थी। उनके कुछ अन्तरंग भक्तों को विदित है कि गुरुदेव को किसी महान सन्त को पाने की व्याकुलता थी और इसी तलाश में पूज्य सरदार जी भाई साहब के साथ दक्षिण भारत तथा और कई स्थानों पर गए, किन्तु उनकी सन्तुष्टि कहीं नहीं हुई। जब मिलन का समय आया तब बनारस गए तो उन्हें शिव कल्याणकारी शान्त स्वरुप के दर्शन हुए तो वो स्वयं बताते थे कि जो बनारस में स्वरुप देखा उसी रूप के दर्शन उन्हें पूज्य बनर्जी साहब में हुए, और जिनके लिए व्याकुल थे, जगह - जगह भटक रहे थे, वे मिल गए। इस भेंट के सम्बन्ध में पाठक पीछे एक लेख में पूरा विवरण जान ही चुके हैं। इस लेख में पूज्य गुरुदेव ने उनकी कैसी सेवा करवाई - उसका वृतान्त है ।

महाराज जी (पूज्य बनर्जी साहब) के निर्वाण प्राप्त करने से कुछ दिन पूर्व से ही गुरुदेव यहीं (गोरखपुर में) थे और नित्य उनकी सेवा में दोनों समय जाया ही करते थे । पू.महाराज जी का 'रक्तप्रवाह' बहुत बढ़ा हुआ (हाई ब्लड प्रेशर) था। गुरुदेव भी चिन्तित थे।और दवा आदि की व्यवस्था भी की होगी। एक दिन समाचार मिला कि महाराज जी अचेत हो गए है । गुरुदेव वहाँ गए, फिर गोरखनाथ के महन्त जी, श्री दिग्विजय नाथ, से कुछ बातें हुईं जो मुझे पता नहीं। महाराज जी को रेलवे चिकित्सालय में रखा गया। वह दो शैया का ही कमरा था, दूसरा बैड ख़ाली था।

गुरुदेव ने अपने सेवकों को उनकी सेवा के लिए नियुक्त कर दिया। रात में भी दो आदमी रहते थे । जहाँ तक मुझे याद है, महाराज जी सात-आठ दिन चिकित्सालय में रहे । वाणी ही मौन थी, वैसे ऐसे अचेत नहीं थे कि कुछ सुन- समझ न सकें। मैने स्वयं अपनी आँखों से देखा, उनका बलग़म गले में आ जाता था और उसके कारण उनको कष्ट होने लगता था, तो उसे साफ़ करने के लिए कहा जाता कि मुँह खोलिये तो वे मुँह खोल देते थे और गले की सफाई करा लेते थे । किसी चिमटी की सहायता से रुई द्वारा तो-तीन बार में गला साफ़ हो जाता था।

चिन्तित गुरुदेव के भाव

पूज्य महाराज जी जब तक चिकित्सालय नहीं लाये गए थे, तब तक उनका रक्तचाप बहुत अधिक था, गुरुदेव तो बहुत ही चिन्तित थे, दोनों समय देखने जाते भी थे । एक दिन अपने निवास पर जहाँ पर वह रहा करते थे आँगन में दोपहर का भोजन धूप में कर रहे थे, मैं भी पास में खड़ी थी। मैने कहा कि महाराज जी की ऐसी हालत देखकर बड़ा दुःख हो रहा है ।आप ठंडी आह भर कर बोले - *" अरे नहीं ! हमारी तो दुनियाँ ही उजड़ी जा रही* है । " इसी वाक्य से पूज्य श्री बनर्जी साहब के प्रति उनके प्रेम का अन्दाज़ मिल जाता है । किन्तु ऐसे सन्तों का जो पूरी तरह दुनियाँ से विरक्त हो जाते हैं, उनका दुनियाँदारों की संगत में मन नहीं लगता। वैसे हम जैसे संसारियों के बीच अपने गुरुदेव की आज्ञा पालन हेतु जीवों के उद्धार के लिए वे दिखावा और वार्तालाप आदि व्यवहार करते रहते हैं ।

जब महाराज जी आये तो उससे पहले से ही बराबर वाले वार्ड में उनके अनन्य प्रेमी शुक्ल जी भी थे । जहाँ तक मेरी जानकारी है, वह एक महीने के लगभग गम्भीर रूप से अस्वस्थ थे । जब शुक्ला जी का अन्तिम समय आया तो महाराज जी की सेवा में जो भाई उस समय थे, वे बताते हैं कि महाराज जी इतनी बुरी तरह से छटपटा रहे थे कि उनकी सेवा में जो भाई थे वे उन्हें बलपूर्वक पकड़ कर सम्हाल रहे थे, नहीं तो वे बिस्तर पर से गिर जाते। जब शुक्ला जी का प्राणान्त हो गया तभी महाराज जी भी शान्त हो गए। यह है सन्तों की अनुपम दयालुता, भक्त को कष्ट हो रहा है और भगवान झेल रहे हैं ।

हमारे गुरुदेव की अन्तिम बीमारी के कुछ महीने जिन भाइयों ने देखे हैं, वह जानते हैं कि गुरुदेव ने हम जैसे पामर जीवों के कुसंस्कारों के विकटतम भोग अपने ऊपर लेकर कितनी यंत्रणा पाई। ऐसे महान पुरुषों के तो कोई संस्कार शेष ही नहीं रहते, जो थोड़े बहुत होते भी हैं वे उन्हें दग्ध करके निर्मल, निर्विकार हो जाते हैं । वे हर समय परमात्मा में लीन रहते ही हैं ।

एक अद्भुद अनुभव

पूज्यपाद महाराज जी के निर्वाण प्राप्त करने के दो-तीन दिन पहले की बात है कि एक रात को गुरुदेव ने पतिदेव (श्री श्रीकृष्ण जौहरी) और भाई श्री गोपाल बक्षपाल को महाराज जी की सेवा के लिए नियुक्त किया। इन दोनों में आपस में यह निश्चय हुआ कि पहले आधी रात तक यह जागेंगे, फिर गोपालजी सेवा करेंगे। ये बैठे हुए थे और आवश्यकतानुसार सेवा कर रहे थे । काफ़ी रात बीत चुकी थी, एक बजे का समय रहा होगा। अचानक इनकी दृष्टि महाराज जी के सिराहने गयी तो वहाँ एक सफ़ेद आकृति दिखाई दी। मुख या वस्त्र स्पष्ट नहीं थे, बस श्वेत सा केवल आकार था। इन्होने अपना भ्रम समझ कर नज़र हटा ली। थोड़ी देर में फिर देखा तो वही दिखा। तन मन में कुछ भय का संचार हुआ, फिर भी बैठे रहे। हठात तीसरी बार फिर दृष्टि घुमाई तो फिर वही अनुभव हुआ। तब इन्हें कुछ अधिक ही भय लगा तो इन्होने दूसरे भाई को जगा दिया, किन्तु उन्हें बिना कुछ बताये अपने निवास पर जो पास ही था, चले आये। सवेरे नित्य की भांति गुरुदेव की सेवा में पहुँचे। पूजा के बाद एकान्त में गुरुदेव को रात की घटना बताई। आप कहने लगे - " वे उनके गुरुदेव थे । ऐसे सन्तों को लेने के लिए उनके गुरु या देवदूत आते हैं । "

महाराज जी का महाप्रयाण

अगले दिन सवेरे ही जब संध्या (साधना) शुरू हुई तो एक भाई ने सूचना दी कि महाराज जी को निर्वाण प्राप्त हो गया है । गुरुदेव तुरन्त तत्परता से जाने को उद्धत हो गए। हम सब भी उनके साथ चले गए। वहाँ जाकर उनके कमरे में उनका पार्थिव शरीर देख कर वे फफक-फफक कर रो पड़े। हम लोग भी शोकाकुल रो रहे थे । कुछ समय पश्चात् उनकी निर्जीव देह गोरखपुर मन्दिर में उनके निवास 'संत निवास' ले जाई गयी। गुरु महाराज शर्मा बहिन के साथ वहाँ गए। वहाँ महन्त जी से मिलकर उनकी कुछ अस्थियाँ लेने की प्रार्थना की, जो उन्होंने स्वीकार कर ली। उसी पवित्र अस्थिपुंज की सिकन्दराबाद के सत्संग भवन में गुरुदेव ने स्थापना कराई, समाधि बनवाई। वह बाद की घटना है ।

पूज्य बनर्जी साहब भी हमारे गुरुदेव से बहुत प्रेम करते थे और उनकी बड़ी प्रशंसा करते थे । कहते थे कि ***"इतने वर्षों*** **में कोई ब्रह्म विद्या का सच्चा जिज्ञासु यहाँ नहीं आया और**

इतनी दूर से एक आदमी आया और मुझसे सब कुछ ले गया।' । गुरुदेव की महती कृपा से हमारे घर में सबको तथा अनेक प्रिय सत्संगियों को उनके दर्शन और सत्संग का लाभ मिला । महापुरुषों के चरणों में दीनभाव से नतमस्तक हूँ। ऐसे स्वयंसिद्ध गुरुजन हम पर सदा कृपा बनाये रखें यहीं प्रार्थना है ।

0000000000000000

रामाश्रम सत्संग, ग़ाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश

-- डॉ० दिनेश कुमार श्रीवास्तव, भभुआ

रामाश्रम सत्संग की स्थापना फ़तेहगढ निवासी निर्वाण-प्राप्त महात्मा रामचन्द्र जी उर्फ़ लालाजी साहब ने की थी। उसी की एक प्रमुख शाखा सिकन्दराबाद (उत्तर प्रदेश) में पूज्य लालाजी की प्रेरणा से उनके परम् प्रिय शिष्य डॉ०श्री कृष्ण लाल जी महाराज ने स्थापित की। वर्तमान अध्यक्ष एवं प्रधान आचार्य हैं दिल्ली निवासी डॉ०करतार सिंह जी।

संस्था का प्रमुख उद्देश्य है : मानव जीवन के चरम लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति के लिए किसी सिद्ध पुरुष अर्थात समर्थ गुरु के माध्यम व मार्ग दर्शन से प्रयास करना और सफलता पाना। साधना का आधार संतमत या सहजमार्ग की मूलभूत प्रणाली है : धारणा, ध्यान एवं समाधि - जिनके लिए सहायक होते हैं सतगुरु, सत्संग एवं सतनाम (ओम आदि)।

इस संस्था में सभी धर्मों के महापुरुषों व धर्मग्रंथों, उपदेशों व सिद्धांतों का समान आदर-सम्मान किया जाता है । देश, काल व समाज के नियमों तथा मर्यादाओं को निभाते हुए जीवन को सुधारना और गृहस्थ, परिवार, समाज व देश के प्रति कर्तव्य-पालन करना, साधकों के कर्मक्षेत्र की सार्थकता है ।

जीवन में सात्विकता एवं व्यवहार में सरलता और दीनता को दिनोदिन बढ़ाते हुए ईमानदारी की कमाई की आवश्यकता है । रोज़ी-रोटी के लिए कोई काम छोटा नहीं होता, महत्व उसको करने की भावना का है । ईश्वर ने हमें जो भी काम करने को दिया है उसे हमको पूर्ण प्रमाणिकता से प्रभु की पूजा मानकर करना चाहिए।

हमारा मुखपत्र **'राम सन्देश'** मासिक है जो लगभग 40 वर्ष से बिना किसी विज्ञापन के निकलता आ रहा है । इसके साथ ही लगभग 30 पुस्तकें भी प्रकाशित की जा चुकी हैं जो कि भण्डारे की बुकस्टॉल पर तथा मैनेजर, राम सन्देश,

9-10 रामकृष्णा कॉलोनी, जी।टी।रोड, ग़ाज़ियाबाद - 201009 तथा सम्पादक जी के पास ब्लॉक 15/291, लोधी कॉलोनी, नई दिल्ली 11003 में भी उपलब्ध हैं।

हमारे सत्संग के प्रमुख समारोहों में दो **त्रिदिवसीय भण्डारा समागम** हैं। प्रथम - बसंत पंचमी के सुअवसर पर पूज्य लालाजी, श्रीमान रामचन्द्र जी महाराज, की जयन्ती पर पूर्वी क्षेत्र में बिहार के किसी प्रमुख नगर - पटना, भभुआ, टाटानगर, मुज़्ज़फ़्फ़रपुर या देवघर में आयोजित होता है । दूसरा महत्वपूर्ण वार्षिक भण्डारा पूज्य गुरुदेव, डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी की जयंती पर दुर्गाष्टमी-दशहरा के दिनों में ग़ाज़ियाबाद (उत्तर प्रदेश) में संपन्न किया जाता है ।

इन भण्डारों के अतिरिक्त गुरु पूर्णिमा पर्व दिल्ली में और क्षेत्रीय सम्मेलन विविध स्थानों पर ग्वालियर, रतलाम (मा।प्रा।) झुंझनू, जयपुर, अलवर, (राजा।) वाराणसी, प्रयाग, गोरखपुर, आगरा, लखनऊ (उ।प्रा।) एवं मुंगेर, गया, सासाराम (बिहार) आदि में होते रहते हैं। सभी ५०-६० नगर-केंद्रों में रविवार एवं गुरुवार को नियमित रूप से स्थानीय सामूहिक सत्संग हुआ करते हैं। श्रद्धेय अध्यक्ष महोदय का बाहर से आने वाले भाइयों के लिए द्वार तो हरदम खुला रहता है ।

oooooooooooooo

परिचय

रामाश्रम सत्संग (रजि.)

(मुख्यालय - ९-१० रामाकृष्ण कॉलोनी, जी.टी.रोड, ग़ाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश)

वर्तमान कार्यकारिणी समिति (१९९४-९५) - दिनांक ९/८/१९९४ को घोषित

क्र.	पद	शुभ नाम	निवास स्थान	व्यवसाय
१.	अध्यक्ष	डॉ. करतार सिंह	८ कलावती भवन राम नगर, नई दिल्ली -११००५५	डाक्टरी
२.	मंत्री	श्री कैलाश नारायण जौहरी	ज्योत्स्ना,३५ खेरापति कॉलोनी, ग्वालियर-४७४००२	शा. सेवानिवृत
३.	सयुंक्त मंत्री	श्री के.बी.सक्सेना	कृष्णा करतार भवन ,बी.१०७, राजाजी पुरम, ताल कटोरा रोड,लखनऊ -२२६०१६	सेवानिवृत
४	.कोषाध्यक्ष	डॉ. शक्तिकुमार सक्सेना	ए-३६ शास्त्री नगर, ग़ाज़ियाबाद -२०१००३	डाक्टरी
५.	सदस्य	श्री जय नारायण गौतम	२१-बी पल्ल्वी एपार्टमेंट्स नवरंगपुरा,ईश्वर भवन रोड,अहमदाबाद -३८०००९	शा.सेवा निवृत
६.	सदस्य	श्री कृष्णा मुरारी लाल श्रीवास्तव	१४२, वीनस एपार्टमेंट्स, इंदिरा एन्क्लेव रोहतक रोड, नई दिल्ली -११००४१	सेवानिवृत
७.	सदस्य	श्री भजन शंकर सक्सेना	कोठी न.८४, सेक्टर १४, गुडगांवा -१२२००१	सेवानिवृत
८.	सदस्य	श्री उमाकांत प्रसाद मार्फत श्री नागेश्वर प्रसाद	मो.चकविंदा अलकापुरी,पो.गर्दनी बाग-पटना -८००००१	शा. सेवा
९.	सदस्य	कैप्टन के.सी. खन्ना	७०१ होयसला अपार्टमेंट्स कन्निंघम क्रिसेंट कन्निघम रोड,बैंगलोर -५६०००२	शा. सेवा
१०.	सदस्य	श्री के.एस.सक्सेना	ए-१/बी/२४/बी डी.डी.ए.फ्लैट्स पश्चिम विहार,नई दिल्ली ११००४१	सेवानिवृत
११.	सदस्य	श्री बी.पी.शर्मा	३१३/२ विष्णु एस्टेट देहली रोड, गुड़गावां -१२२००१	शा. सेवानिवृत
१२.	सदस्य	श्री बी.एम्.शर्मा	७०२ बाबा खड़कसिंह मार्ग, नई दिल्ली-१	शा. सेवानिवृत

---

१३. लेखापरीक्षक श्री अनिल खन्ना पी.-६०६ अनुपम अपार्टमेंट ४ सी.बी.डी, लेखापरीक्षक
ईस्ट अर्जुन नगर दिल्ली-११००३२

१४.. सम्पादक श्री सतीश वर्मा ब्लॉक १५/२९१ लोधी कॉलोनी केन्द्रीय सेवानिवृत
नई दिल्ली-११०००३

==========

==========

साहित्य परिचय

हमारे रामाश्रम सत्संग के प्रकाशन

-- श्री बृज मोहन शर्मा, नई दिल्ली ।

हमारे सिलसिले के बुज़ुर्गों ने इस 'सीना-ब-सीना' रूहानी विद्या के बारे में हर प्रकार के प्रचार की मुमानियत कर रखी थी । तो भी जब इस आध्यात्मिक मार्ग में जिज्ञासु साधकों की संख्या काफी बढ़ गयी तो एक अनिवार्य सी आवश्यकता महसूस की गयी कि उन्हें सहज ज्ञान कराने के लिए लिखित साहित्य को भी प्रकाशित कराया जाये।

इसी आशय से परम् संत प्रवर डॉ०श्रीकृष्ण लाल साहब ने अपनी प्रवृति के अनुसार एक मासिक पत्रिका 'राम सन्देश' के प्रकाशन को बहुत ही सुनियोजित ढंग से उच्च स्तर पर प्रारम्भ किया था। इसी उद्देश्य को राम सन्देश की प्रारम्भिक भूमिका में परम् पूज्य डॉ०साहब ने अपनी भाषा में स्पष्ट किया था जोकि पुनः उद्घृत है :

राम सन्देश की भूमिका

' मुद्द्त से बहुत से सत्संगी भाई इस बात पर ज़ोर दे रहे थे कि एक रिसाला इस किस्म का निकाला जाए जिसके ज़रिये हिदायत वक्तन-फवक्तन (समय-समय पर शिक्षायें) सत्संगी भाइयों को मिलती रहें और गुरुदेव के हालात ज़िन्दगी (जीवनी) जो मुझको मालूम है, छप जाये और उनकी तालीम को यकजाई (एकत्रित करके) किताब की शक्ल दे दी जाये।

मैं अपनी नाक़ाबलियत अदीमउल्फुर्सती (समयाभाव) और मायावी झंझटों से बचने के लिए यह हिम्मत न कर सका, लेकिन अब मुझको कुछ फुरसत है और यह देखकर कि अभी तक कोई हालात ज़िन्दगी गुरुदेव की मुकम्मिल सूरत में शाये नहीं हुई, जो वाक़यात मुझे मालूम हैं, जिनको मैं परमसन्त जनाब चाचाजी साहब (महात्मा मुन्शी रघुबर दयाल साहब) से सुनता रहा और खुद सोहबत में रह कर देखता रहा, गुम हो जायेंगे। और यह देखकर कि आपकी तालीम अगर उसको कलमबन्द न किया गया तो आहिस्ता-आहिस्ता महब (लुप्त) हो जाएगी। हर क़िस्म की कमी महसूस करते हुए भी, उसके सहारे पर भरोसा करते हुए,जो सबको सहारा देता है, इस काम को शुरू करता हूँ।"

(यह ज्ञातव्य रहे कि पूज्य डाक्टर साहब अंग्रेजी, उर्दू-फ़ारसी के अच्छे विद्वान थे और आपने लगभग चालीस वर्ष की आयु में हिंदी भाषा सीखी)

सत्संग का अपना प्रेस था और उस दौर में पं। काशीनाथ जी का इस कार्य सम्पादन में काफ़ी सहयोग रहा। परमपूज्य डाक्टर साहब स्वयं इसके सम्पादक थे । डॉ० महेश चन्द्र पत्रिका के प्रकाशक एवं मुद्रक सदैव रहे।

सन 1970 से 1984 तक इसका सम्पादन वर्तमान आचार्य डॉ०करतार सिंह जी ने भले ही किया हो, परन्तु डॉ०महेश चन्द्र जी सह-सम्पादक के रूप में कार्य बराबर करते रहे। उन्होंने वैधानिक रूप से सम्पादन सन 1985 से 1991 तक किया। वास्तव में जीवन-पर्यन्त डॉ०महेश भाई साहब इस पत्रिका के सम्पादन, प्रकाशन और मुद्रण के मेरुदण्ड बने रहे। वे इस कार्य को सपरिवार गुरु-पूजा के रूप में ही करते थे । परमात्मा ने उन्हें इस काम के लिए अवश्य नवाज़ा होगा।

आदरणीय महेश भाई साहब के स्वर्गवास के उपरान्त सन 1991 से पत्रिका का सम्पादन श्री सतीश वर्मा जी बड़ी निष्ठां के साथ कर रहे हैं। उन्होंने पत्रिका के आकार में विस्तार-सुधार करके उसे दिनोदिन अधिक साहित्यिक और सुन्दर रूप दिया है । हमारी शुभकामनायें हैं कि यह विधा दिनोदिन परिष्कृत होगी और आध्यात्मिकता की ऊँचाइयों को छूती हुई पत्रिका का बहुमुखी विकास करेगी।

इस मासिक पत्रिका के अतिरिक्त परमपूज्य डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी महाराज ने उच्चकोटि के आध्यात्मिक साहित्य के प्रकाशन को यथोचित महत्व दिया । अपने गुरुतुल्य परमसन्त डॉ०अक्षय कुमार बनर्जी साहब की रचनाओं को प्रकाशित साहित्य का रूप दिया, जिसे देश-विदेश में उचित सम्मान और सराहना मिली है । इस समय हमारे सत्संग के तीस प्रकाशन हैं, जिनसे हम सब आध्यात्मिक लाभ उठा रहे हैं। इन्हीं प्रकाशनों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है ।

(1) **<u>फ़क़ीरों की सात मन्ज़िलें</u>** - महात्मा रामचन्द्र जी के चचेरे और गुरु भाई, संतवर डॉ०कृष्ण स्वरुप जी जयपुरी, ने इस पुस्तक की रचना की है । आपने ब्रह्मविद्या के सोपानों को बहुत ही सरल, सहज और स्पष्ट ढंग से समझाया है । इस पुस्तक में उस मार्ग को सात

सोपान या सीढ़ियों में विभक्त कर, प्रत्येक में पड़ने वाले विघ्न के प्रति जिज्ञासुओं को सतर्क किया है । पुस्तक की भाषा फ़ारसी मिश्रित सरल उर्दू है । परमसन्त डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी ने पुस्तक का प्रकाशन और मुद्रण करते समय इसका संशोधन और परिवर्धन किया और क्लिष्ट शब्दों के अर्थ सरल हिन्दी में लिखवाये हैं। पुस्तक स्व-अनुभव पर रचित है, इस कारण पाठक पर अपनी अमिट छाप डालती है । हर श्रेणी के साधक के लिए बहुत ही उपयोगी है और इस मार्ग पर चलने वालों के लिए कवच का काम करती है ।

(2) **जीवन चरित्र** : पूज्य महात्मा रामचन्द्र जी महाराज - परम् सन्त डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी ने अपने गुरु श्रेष्ठ के जीवन चरित्र को बहुत ही रोचक ढंग से लिखा है । संतमत के सिद्धान्त, अपनी आध्यात्म-वंश-परम्परा, पूर्व संतों का परिचय, गुरु-शिष्य आदर्श व्यवहार, पारिवारिक सम्बन्धों का दायित्व वहन आदि सर्व -सामाजिक विधाओं का परिपालन कर, इसे प्रबन्ध काव्य का सा रूप दे दिया गया है । साधकों को उनकी साधना में आने वाली समस्त समस्याओं का समाधान भी इसमें उपलब्ध है ।

(3) **सवाने उमरी** : जीवनी पूज्य डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी महाराज - उर्दू भाषा के शब्द 'सवाने उमरी ' का अर्थ हिन्दी में 'जीवन-चरित्र' होता है । किसी समय परम् पूज्य डाक्टर साहब ने अपने परमप्रिय शिष्य डॉ०(स्वा) महेशचन्द्र जी से कहा कि हमारी सवाने उमरी तुम लिखना। डॉ०महेश चंद्र जी इस कार्य को अपने जीवन में करने के लिए बड़े चिन्चित थे । परमात्मा का शुक्र है कि उन्होंने इस कार्य को सफलतापूर्वक अपने जीवन के अन्तिम दशक में पुस्तक का रूप देकर सम्पन्न कर दिया था।

इसमें परमपूज्य डाक्टर साहब के जीवनवृत तथा उनकी आध्यात्मिक शिक्षा और आचार्य-पद प्राप्ति, उनकी छवि और प्रारम्भिक जीवन का बड़ा रोचक वर्णन है । उनके व्यक्तित्व के अतिरिक्त अन्य कई विषयों यथा - सन्त मत की व्याख्या, गुरु की अनिवार्यता, आध्यात्मिक शिक्षा का तरीक़ा, उनके सानिध्य के संस्मरण आदि समाहित हैं। परमपूज्य डाक्टर साहब के काल से आजतक सिलसिले (सत्संग) के ऐतिहासिक तथ्य और समकालीन वक्त्वयों का विवरण जैसे पूज्य भाई साहब डॉ०करतारसिंह जी का पूज्य गुरुदेव की शरण में आना, बनर्जी साहब,

परमसन्त डॉ०श्याम लाल सक्सेना, परमपूज्य श्री सेवती प्रसाद, कासगंज से महात्मा श्रीकृष्ण लाल जो की भेंट सम्बन्ध और कुछ उपदेश आदि दिए गए हैं।

(4-5) **<u>अमृत रस</u>** (भाग 1 व 2)- सत्संगियों ने जो पत्र अपने दैनिक जीवन की व्यथा और समस्याओं के निवारण के लिए लिखे और उनके उत्तर में समाधान या व्यथा को दूर करने के साधन परमपूज्य महात्मा रामचन्द्र जी महाराज और परमपूज्य डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी ने दिए, वे ही इस पुस्तक में समाहित हैं। भाग-1 परम् पूज्य महात्मा जी के पत्रों का और भाग-2 डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी के पत्रों का संकलन है । इन पत्रों में दो विशेषताएं हैं। एक तो यह कि ब्रह्म-विद्या की गुत्थियों को सरल भाषा में खूब समझाया गया है । दूसरे, हर व्यक्ति के नित्य -प्रति के सांसारिक जीवन में जो सामान्य या विशिष्ट समस्यायें उठती हैं, उनका निवारण किस प्रकार किया जाये, यह बहुत ही व्यावहारिक रूप से दिया गया है । आप खुद सोचें कि यह पुस्तक हमारे लिए कितनी सहायक है ?

(6-8) **<u>Discourses on Hindu Spiritual Culture by Drl AlKl Banerji (Part 1, 2 & 3)</u>**

परमपूज्य डॉ०अक्षय कुमार बनर्जी जी ने समस्त धर्म के अनुयायिओं के लिए, चाहे वे हिन्दू हों या अहिन्दू, इस पुस्तक में हिन्दू-धर्म के सही सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर समस्त भ्रांतियों का निवारण करने का प्रयत्न किया है । महान संत ने भाग १ में संस्कृति के उत्थान या यों कहें कि मनुष्य मात्र के उत्थान को स्पष्ट किया है । उनका दृढ मत है कि हिन्दू धर्म के अनुसार मनुष्य शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सब का स्वामी है । आपने मात्र हिन्दू दर्शन का विवेचन ही नहीं किया है बल्कि पाठक को कलात्मक ढंग से उस स्तर तक ले जाते हैं जो सुख-दुःख से परे है और वहाँ वह अविनाशी में विलीन हो जाता है और जीवन के सार (आत्मतत्व), ज्ञान, आनन्द और अभेद का आनन्द विभिन्नता में लेता है । दर्शन और धर्म में भेद करने पर पूजयपाद श्री बनर्जी साहब ने बहुत ज़ोर दिया है । उन सबको सन्तों के जीवन-चरित्र देकर प्रमाणित किया है ।

(9) **<u>गुरु शिष्य सम्वाद</u>** - कबीर साहब और उनके शिष्य जनाब जहांगशत साहब, जो धर्म से मुसलमान थे और विदेश से आये थे, के बीच हुई ब्रह्मविद्या की चर्चा पर आधारित है ।

जनाब जहांगशत साहब के मन में जो शंकाएं थीं उन महापुरुष ने पूर्ण रूप से वर्णित करी हैं। वे शंकाएं और उनका समाधान ही 'गुरु-शिष्य-सम्वाद' में दिया है । गुरु भक्ति की समस्त विधाओं का इस पुस्तक में बहुत सुन्दर और सपाट विवेचन है । हिन्दू और मुसलमान दोनों ही में इसका बड़ा महत्व है । ब्रह्म-विद्या में जात-पाँत या हिन्दू और मुसलमान धर्म का कोई भेद नहीं होता। प्राणी मात्र उस परमात्मा का अंश है और पूर्णता प्राप्त करके उस अंशी में ही विलीन हो जाता है ।

(10-16) संत वचन (भाग 1 से 7) (अब 9) - इस पुस्तक के विंभिन्न भागों में परमपूज्य डॉ०श्रीकृष्ण लालजी के प्रवचन संकलित हैं जो वे सत्संग समागम, भण्डारों या साप्ताहिक सत्संग में देते थे, या तो उनके सेवकों द्वारा लिखे जाते थे या टेप कर लिए जाते थे । कुछ उनके स्वयं के हस्तलिखित थे । वे सभी इन भागों में छपे हैं। ब्रह्म-विद्या के क्षेत्र में लगभग हर विषय पर उनका प्रवचन उपलब्ध है । उनको पढ़ने और उन पर मनन करने से सत्संगियों को उनकी शिक्षा का लाभ उनके शरीर त्यागने के बाद आज भी मिलता है ।

(177-18) **<u>नवनीत</u>** (भाग 1 और 2) - इस पुस्तक के दोनों भागों में परमपूज्य डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी के संत-वचन के सातों भागों में से तत्वपूर्ण अंशों का सुन्दर संचयन प्रस्तुत किया गया है । सार-अंशों को जो जिज्ञासु अथवा साधक ध्यान से पढ़कर, मनन करके, अपने जीवन में इन्हें व्यावहारिक रूप देंगे, उन्हें आशातीत लाभ होगा।

(19) **<u>घट मार्ग</u>** - चक्र भेदन विद्या को कबीर साहब ने एक वाणी में वर्णित किया है - " जो ब्रह्माण्डे सो पिण्डे" यानी ब्रह्माण्ड की रचना पिण्ड (शरीर) जैसी ही है । शरीर के अन्दर के मार्ग को घट-मार्ग कहा है । यही चक्र-भेदन है । शरीर में स्थित चक्रों के पार करने पर ईश्वरी ज्ञान प्राप्त होता है । परन्तु योग्य शिक्षक के बिना इस मार्ग को तय नहीं किया जा सकता है । फिर भी उन्हीं गूढ़ रहस्यों कि सरल व्याख्या इस पुस्तक में की गयी है ।

(20) **<u>अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय</u>** - महात्मा बुद्ध ने चार आर्ष सत्यों का प्रचार किया था - दुःख का अनुभव करना, उसका निवारण ढूंढना, दुःख-निवृति पश्चात् क्या स्थिति होगी - इसका विचार करना तथा दुःख निवृति का उपचार। परमसन्त डॉ०श्रीकृष्णलाल जी ने ज्ञान गुरु-कृपा, निज प्रयास और सतत खोज से पाया था। उन्हें हर स्थिति का मौलिक

अनुभव था। मन न लगने के विभिन्न कारण जो उन्होंने इस छोटी सी पुस्तक में दिए हैं, उन्हें पढ़कर हर जिज्ञासु को ऐसा लगता है कि यही मेरी समस्या है । उसी का सरल उपाय पढ़कर उसे प्रसन्नता होती है और उन उपायों से निज समस्याओं से निजात पाकर तो वह कृतकृत्य हो जाता है ।

(21) **साधन चतुष्टय** - समर्थ गुरु परमसन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज द्वारा रचित इस पुस्तक में साधना के चार चरणों का इतना रोचक वर्णन है कि नौसिखियों को भी इधर आध्यात्म की ओर रुजू होने की प्रेरणा मिलती है ।

(22 से 26) **संत प्रसादी** (भाग 1 से 5) (अब 1-15) संत-प्रसादी वर्तमान आचार्य एवं अध्यक्ष के प्रवचनों का संकलन है । यह दीनता और गुरु का अदब ही है कि परमपूज्य सरदारजी महाराज संत-वचन से वाचन कराके उसकी विवेचना के रूप में अपना प्रवचन देते हैं। उनके प्रवचन सुनने-पढ़ने से ऐसा ही आभास और प्रभाव होता है जैसा समर्थ सद्गुरु महात्मा रामचद्र जी, परमसन्त डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी की उपरोक्त रचनाओं और किसी पूर्व आचार्यों की रचनाओं के पठन-पाठन से होता है । यह इस बात का प्रमाण है कि सिलसिले के हर बुज़ुर्ग से अब तक के आचार्य की कड़ी बड़ी मज़बूती से जुडी हुई रहती है ।

(27) **आराधना** - यह हमारे सत्संग की प्रचलित प्रार्थनाओं, भजनों और ग़ज़लों का संकलन एक वरिष्ठ प्रेमी सत्संगी भाई का आत्म-तुष्टि का प्रयास है । उन्होंने इस पुस्तक का प्रकाशन, मुद्रण आदि कराके सत्संग को (दानस्वरूप) भेंट कर दिया है ।

(28) **भजन मञ्जूषा** - पूर्व-प्रकाशित 'भजन संग्रह ' का ही संशोधित और परिवर्धित रूप है - 'भजन-मञ्जूषा'। 51

महान भक्तों और संत सूफ़ियों द्वारा रचित भक्ति-रचनाएँ, जिनका पठन-श्रवण मात्र ही जिज्ञासु में आध्यात्मिकता स्फुरित कर देते हैं, इसमें संकलित किये गए हैं।

(29) संत मत प्रवेशिका तथा (30) मार्फ़त की ग़ज़लें - यह दोनों पुस्तकें इस वक्त छपी न होने से उपलब्ध नहीं हैं।

सत्संग अब भी सदा उपयोगी आध्यात्मिक पुस्तकों के प्रकाशन और मुद्रण के लिए हर समय तत्पर व प्रयासरत रहता है ।

==========

उपरोक्त सभी पुस्तकों तथा सत्संग के अन्य प्रकाशनों के **डिजिटल संस्करण** इस वेबसाइट के **"डिजिटल प्रकाशन** " लिंक पर तथा **फेसबुक ग्रुप** पर उपलब्ध हैं ।

==========

सुधा बिन्दु

संतमत कोई मज़हब या धर्म नहीं है और न ही किसी सम्प्रदाय की शाखा है ।

न किसी का विरोधी है । सबके साथ उसका मेल है । यह तो सच्ची ख़ुशी,

हमेशा-हमेशा का सुख और निर्वाण-पद हासिल करने का तरीक़ा है ।

हमारे यहाँ का साधन एवं अभ्यास

पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों से उद्धरत

■ श्री भजन शंकर, नई दिल्ली।

हमारे यहाँ के अभ्यास का तरीक़ा ह्रदय से ही जिसे 'ज़िक्रे ख़फ़ी ' कहते हैं,जिसमें 'प्रकाश' या 'शब्द का ध्यान करते हैं।

आन्तरिक अभ्यास में अभ्यासी अपने मन और सुरत को शब्द या प्रकाश की धार (जैसा जिसको सतगुरु ने बताया हो) जो ऊपर से नीचे को आती है, के सहारे ऊपर को चढ़ाता है । साँसारिक तरंगें उठती हैं तो शब्द या प्रकाश की धार उनके साथ मिलकर, मन और सुरत को नीचे की और ढ़केलने में सहायक होती हैं जिसके कारण अभ्यासी को अपनी सम्हाल रखना कठिन हो जाता है ।

किन्तु यदि ध्यान के अभ्यास में चाव और प्रेम है तो उसी के अनुसार मन और सुरत की धार ह्रदय के स्थान से उठकर अपने प्रियतम परमेश्वर से मिलने तथा उसका दर्शन प्राप्त करने के लिए, उसके चरणों का स्पर्श करने के लिए, ऊपर को चढ़ती है जहाँ पर ध्यान जमाया गया है । ऐसी स्थिति में, दूसरी प्रकार की (यानी सांसारिक) चाहें पैदा नहीं होतीं और न ही उनका झुकाव नीचे की ओर होता है - जब तक की स्वयं अभ्यासी ध्यान छोड़कर दूसरा विचार न उठाये।

सन्तमत का आन्तरिक अभ्यास बड़ा आसान है, जिसे पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रियां (मातायें-बहनें) व बालक भी सुगमता-पूर्वक कर सकते हैं। परन्तु सबके लिए यह आवश्यक है कि आन्तरिक अभ्यास और सुरत को ऊपर चढाने के लिए रूचि और चाव हो, तथा सन्त सतगुरु अथवा ईश्वर के चरणों में प्रेम हो (चाहे वह थोड़ा ही क्यों न हो)।

यदि ऐसा नहीं है तो सुरत और मन ऊँचे चढ़कर भी रस और आनन्द नहीं लेते क्योंकि अभ्यास में भाँति-भाँति के साँसारिक विचार उठते रहते हैं। अतः जब तक कि अभ्यासी के चित्त में संसार की ओर से थोड़ा बहुत वैराग्य और प्रभु चरणों में थोड़ा बहुत अनुराग पैदा नहीं होगा, तब तक उसका मन और सुरत साँसारिक विचारों और उनकी गुनावन की लपेट में आकर नीचे

उतर आयेंगे। अभ्यास जैसा चाहिए वैसा नहीं बन पड़ेगा, न कुछ रस आएगा और न कुछ आनन्द।

इसलिए अभ्यासी को चाहिये कि अपने मन को संसार और उसके भोग पदार्थों से हटाकर या उपराम होकर ईश्वर के प्रति अपने मन में सच्चा वैराग्य पैदा करने का प्रयास करे और साथ ही साथ सतगुरु अथवा सतपुरुष (परमपिता परमेश्वर) के चरणों में अनुराग पैदा करके उसे दृढ करता जाये। ऐसा करने से ही आन्तरिक अभ्यास में उन्नति होगी। सन्तों का कहना है कि यह वैराग और अनुराग सन्तों के सत्संग करने से जल्दी आते हैं।

अभ्यास कि मामले में सन्तमत में एक और भी आसानी है । जैसा कि अभ्यासी का भाव होता है, वैसा ही अभ्यास उसे बता दिया जाता है । यदि उसका झुकाव सतगुरु के स्थूल रूप की ओर अधिक होता है तो उसे गुरु-रूप का ध्यान बता देते हैं। ऐसा बिरले ही अभ्यासियों को बताते हैं। यद्यपि इसमें उन्नति बहुत शीघ्र होती है किन्तु इसमें कई प्रकार के अनिष्ट भी हो सकते हैं - जैसे सतगुरु के स्थूल शरीर में कोई बीमारी हो तो वह अभ्यासी में भी उतर कर आ सकती है, आदि। अतः किसी एक-दो अभ्यासी को ही इस प्रकार का अभ्यास बताते हैं। जिस अभ्यासी का जिस स्वरुप में (गुरु-स्वरुप, शब्द स्वरुप ओर प्रकाश स्वरुप) प्रेम होता है उसी ओर मन ओर सुरत की धार जल्दी दौड़ती है । इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि मन की सफाई हो और प्रेम हो, तब आगे की चाल तेज़ी से चले।

सारांश यह है कि गुरु का स्वरुप (गुरु-स्वरुप, शब्द-स्वरुप, प्रकाश-स्वरुप) अभ्यासी के साथ बराबर सतलोक तक रहेगा और रास्ते में मन तथा सुरत के सिमटाव और चढ़ाई में बराबर सहायक रहेगा। जिन स्वरूपों का ऊपर वर्णन आया है, वे सब गुरु के ही स्वरुप हैं।

आगे हमारे साधन का खुलासा विवरण) दिया जाता है -

(1) परमात्मा की शक्ति की धार जो ऊपर से उतरी, पहले उसका असर दिमाग़ पर पड़ा। उसका ठहराव वहाँ हुआ, उसके बाद अलग-अलग मुकामों से उतरती हुई, उसका असर दिल पर पड़ा। उसी शक्ति की धार को **'सुरत'** कहते हैं। शब्द ॐ या राम या जो कोई और शब्द बताया जाये, उसका ख्याल करते हैं।

(2) साधन, शग़ल-राब्ता (गुरु स्वरुप का ध्यान) कहलाता है । इसमें ह्रदय पर गुरुमूर्ति का ध्यान करते हैं।

इन्हीं का मुतवातिर शग़ल (सतत अभ्यास) सुबह-शाम, जब भी वक्त मिले, यहाँ तक कि हर लम्हा करते रहना अभ्यास कहलाता है । जो अभ्यासी आशिक़-मिज़ाज़ के होते है,अर्थात जिनमें प्रेम का भाव अधिक होता है, उन्हीं को गुरुमूर्ति का ध्यान करने की इज़ाज़त देते हैं। ज़बान से नहीं कहते। हरेक अभ्यासी के लिए गुरुमूर्ति का ध्यान नहीं बताया जाता है । ह्रदय पर गुरु -मूर्ति का ध्यान , या अन्दर शब्द का अभ्यास या प्रकाश का ध्यान यह अभ्यासी की हालत पर निर्भर करता है । जैसा जिसको मौजू (ठीक) समझते हैं, वैसा अभ्यास उसके लिए तज़वीज़ करते (बताते) हैं। शब्द का अभ्यास देरपा (lasting) और बेहतरीन है । यह सीधी सड़क है जिसमें भटकाव नहीं है ।

प्रकाश और गुरुमूर्ति का ध्यान डिग सकता है । पर यदि गुरु से प्रेम पैदा हो गया और गुरु मुकम्मिल (पूर्ण) है तो अकेला वही प्रेम खिंचाव निकाल ले जाता है । अभ्यास शुरू-शुरू में दिन में दो या तीन वक्त, फिर पाँच वक्त और फिर आगे चलकर हर समय करने को बताया जाता है । जो अभ्यास हर वक्त होता रहता है उसे **'दिल का जाप'** कहते हैं।

यही सन्तों का तरीक़ा है । मुझको गुरुदेव ने सुरत शब्द की तालीम दी। ऊपर का ध्यान सुरत शब्द योग का है । नीचे का **ज़िक्र-ख़फ़ी** है ।

(3) तरीक़ा क्या है ? गुरु अपनी इच्छा शक्ति से शिष्य के ह्रदय में शब्द, प्रकाश या गुरुमूर्ति के ध्यान का बीज डाल देते हैं। इससे शुरुआत कराई जाती है । शिष्य उसी का अभ्यास करता रहता है और उसकी तरक़्क़ी आगे के स्थानों (चक्रों) तक हो जाती है ।

(4) धार्मिक पुस्तकों की इज़्ज़त, चाहे वह वेद हों या क़ुरान, अंजील या गुरु ग्रन्थ साहब, किसी का निरादर नहीं। यदि गुरु ने किताबों के विपरीत बताया है तो उसे (गुरु) ही सही मानो और उसके मुकाबले में किताबों के लिखे पर ध्यान न दो ।

(5) यदि कोई बज़ुर्ग किसी दूसरे सिलसिले के आ जाएँ तो उनको सर आँखों पर रखना, उनका सत्कार करना, लेकिन तरीके के मुताल्लिक (बारे में) बात न करना। अगर कोई बुज़ुर्ग

तुम्हारे सिलसिले के नहीं हैं तो बिना अपने गुरु की आज्ञा लिए उनके पास मत जाओ। हाँ, अगर मज़बूरी आ गयी है, तो अलबत्ता यह बन्दिश नहीं है ।

(6) शुरू में धार्मिक पुस्तकें मत पढ़ो। गुरु की मौजूदगी में दिल कि किताब पढ़ो और उन्हीं में अपने को फ़ना कर दो। परमात्मा या गुरु के ध्यान में लय कर दो।

(7) गुरु खूब देखकर करो। इस काम में चाहे एक जन्म क्यों न बीत जाये मगर वक्त के ऐसे पूरे सतगुरु को धारण करना चाहिये, जिसे अपनी जान तक अर्पण कर सको।

(8) गुरु करने के बाद यदि श्रद्धा में कमी आये तो उनसे निवेदन करो, वे उसे हटा देंगे। यदि वे नहीं हटा सके तो उन्हें छोड़ दो।

(9) पुराने बुज़ुर्गों (गुरुजनों) की इज़्ज़त करो। मगर फ़ायदा मौज़ूदा बुज़ुर्गों से ही होगा।

(10) यदि गुरु का शरीर छूट जाये और आत्मा का साक्षात्कार न हो पाया हो तो अपने सिलसिले के किसी योग्य भाई को अपना बड़ा भाई मान लो। अगर ऊपर से मदद मिलने लगी हो तो दूसरा गुरु करने की ज़रूरत नहीं है, वरना अपने सिलसिले के ही किसी मौजूदा बुज़ुर्ग को अपना गुरु बना लो।

(11)) गुरु की औलाद की बेक़दरी न करो, उसमें गुरु का अंश मौजूद है ।

(12) अगर गुरु नहीं मिले तो सफर (देशाटन) करो और गुरु की तलाश करो। अगर मिल गए तो वही तीरथ-व्रत हैं। कहीं आने जाने की ज़रूरत नहीं है । अगर तुम्हें इज़ाज़त है, तो मौक़े-बा-मौक़े घूमो ताकि औरों का फ़ायदा हो, प्रोपेगंडा (प्रचार) न करो। अपने आपको बना कर मिसाल के तौर पर पेश करो।

(13) गंडा-तावीज़ और चमत्कारी शक्तियों से परहेज़ करो। इनसे गिरावट होती है ।

(14) अपनी हालत किसी से बयान मत करो। लिखकर या ज़बानी गुरु के सामने पेश करो।

(15) अदब से रहो। अदब यह है कि जो शग़ल बतलाया गया है वह करते रहो। जो ख़्यालात गुरु रखते हों वैसे ही अपने को बनाओ ।

(16) हमारे गुरुदेव पैर छुवाने व छुलवा ने के खिलाफ़ थे । फ़ोटो खिचवाने से परहेज़ नहीं था पर उसकी पूजा करना मना है ।

(17) सत्संगियों में प्रेम देखकर खुश होते थे । सब मिलकर एक परिवार की तरह रहें, ऐसा उनका ख्याल था।

(18) माया का निरादर मत करो, मगर मायके पुजारी भी न बनो ।

अगर सत्संगी इन नियमों पर चलेंगे तो लाभ उठायेंगे और बुज़ुर्ग उन पर खुश होकर अपनी कृपा की वर्षा करते रहेंगे ।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।

Oooooooooo

अब मैं शरण तिहारी जी

अब मैं शरण तिहारी जी, मोहि राखऊ कृपा निधान !!

अजामिल तारे, तारे नीच सदान !

जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी विमान !!

और अधम तारे बहुतेरे, भाखत सन्त सुजान !

कुबजा नीच भीलनी तारी, जानत सकल जहान !! अब मैं !!

कहँ लग कहूँ गिनत नहीं आवे , थकि रहे वेद पुरान !

मीरा दासी जनम जनम की, सुनिये दोनों कान !! अब मैं !!

एक पुण्यपुरुष की विशेषताएँ

पूज्य गुरुदेव और उनकी शिक्षाएँ

-- डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार सक्सेना, रुड़की

हम गुरुदेव को क्या समझें ? यह प्रश्न बहुत ही मुश्किल है । वह हमारे सच्चे हितेषी, प्रियतम और इष्ट हैं। मगर सब भाई -बहिनों को वे पिताजी, चाचा जी, मामा जी, नाना जी, बाबा जी, अथवा भाई साहब आदि ही प्रतीत होते थे । नर- लीला में इतने निपुण और कुशल थे कि व्यवहार एकदम पारिवारिक ही था। सत्य और प्रेम की मूर्ति - दीनता और सेवा के आभूषणों से सुसज्जित, हम सबको तो वे अपने सच्चे संरक्षक ही नज़र आते थे । इससे ज़्यादा हम उनके विषय में कैसे समझ सकते हैं क्योंकि उनकी नरलीला और स्वाभाविक प्रेम हमारी बुद्धि को सदैव संतृप्त रखते थे और फिर प्रेम में समझ-बूझ का ख्याल भी नहीं रहता। मगर आइये आज हम कुछ भेद जो उन्होंने स्वयं ज़ाहिर किये, उन्हें पढ़कर अपने प्रियतम को अपने अन्तर्तम में दर्शन करें क्योंकि वह हमारे बहुत निकट हैं - वह आज भी हमसे पृथक नहीं हुए हैं।

मोक्षावस्था व सर्वव्यापकता

26 दिसम्बर सन 1967 की बात है । ग्वालियर में भाई कैलाश जौहरी के घर पर गुरुदेव पधारे हुए थे । सेवक प्रातः सेवा में हाज़िर हुआ - चरण कमलों पर माथा टेका और अपने प्रियतम का प्यार और आशीर्वाद पाया। तदुपरान्त अपने फ़रमाया कि " तुम आगये तो एक भेद बताता हूँ - वैसे यह हालत हरेक को बताते नहीं हैं। इस समय मेरी मोक्षावस्था है और मैं सर्वव्यापक हूँ । पूरी तरह आनन्द अवस्था है - यह आनन्द स्वाभाविक है - किसी पर निर्भर नहीं है । इसी हालत को प्राप्त करना चाहिए और यह permanent (स्थायी) हो जाना चाहिए। दुनियाँ के सब व्यवहार होते रहेंगे - मगर हालत एक सी रहेगी ।"

यह फ़रमाकर गुरुदेव मौन हो गए। थोड़ी देर बाद सेवक ने प्रश्न किया कि दुनियाँ में बिना फँसे हुए इस अवस्था को आसानी से प्राप्त कर सकते हैं या दुनियाँ को भोग कर ? आपने फ़रमाया "सवाल बहुत अच्छा है । गोरखपुर में मैंने यह सवाल बेनर्जी साहब से किया था। वहाँ

एक तेरह वर्ष के लड़के को संन्यास दिलाया गया। जब मैंने पूछा कि इस लड़के ने तो अभी कुछ देखा नहीं - अभी से ही संन्यास दिला दिया, तो बताया कि यही जीवन का लक्ष्य है - इसमें क्या हर्ज़ है ? फिर बेनर्जी साहब ने समझाया कि दोनों ही रास्ते ठीक हैं। मगर अपने सिलसिले में दुनियाँ भोग कर उपरति हासिल करने का तरीक़ा है । खतों में पढ़ा होगा कि जब मेरी शिकायत की कि ' मैं दुनियादार हूँ " तो गुरुदेव के जबाब दिया कि *" मेरी तालीम दुनियादारी सिखाती है । इसमें बरतकर श्रीकृष्ण एकसाथ पलटेगा।"*

ह्रदय की कोमलता व तकलीफें

सिकन्दराबाद में आपने फ़रमाया था की "फ़क़ीरों का ह्रदय बहुत कोमल होता है । वे दूसरों को तक़लीफ में नहीं देख सकते - यहाँ तक कि दूसरों के संस्कार भी अपने ऊपर ले लेते हैं। यही कारण है कि फ़क़ीरों को ज़्यादा तक़लीफ उठानी पड़ती हैं। कर्म फल का सिद्धान्त सब पर लागू होता है । अवतारों को भी नहीं बख्शती। अगर गुनाहों की मुआफ़ी के लिया दुआ की जाती है तो intensity (तीव्रता) कुछ कम हो जाती है मगर duration (समय) बढ़ जाता है या फिर मुआफ़ी करने वाले को खुद भोगना पड़ता है ।

फिर फ़रमाया कि *" तकलीफ़ें तो हमारे प्रीतम की अदा हैं, वो तो उसके आने की आहट हैं। जैसे पायल की आवाज़ की आहट से माशूक़ के आने का इन्तज़ार होता है वैसे ही तक़लीफ़ें हमारे प्रीतम के दर्शन की घड़ी नज़दीक आने का इशारा हैं। हम तो यह प्रार्थना करते हैं कि परमात्मा हमें ताक़त दे, ताकि भारी तकलीफें थोड़े समय में कट जायें।"*

उनकी अमूल्य शिक्षाएँ

गुरुदेव की तालीम सच्चाई, दीनता, सेवा और प्रेम सिखाती है । गुरुदेव के ही शब्दों में जो कि सेवक ने पत्रों और प्रवचनों से लिए हैं - इसका बयान करते हैं - " शुरू में तमाम गुण सत रज तक की समावस्था में होते हैं। बच्चा जैसे माँ-बाप के यहाँ जन्म लेता है और जिस सोसाइटी (समाज) में रहता-सहता है उनके असरात (प्रभाव) उस पर पड़ते रहते हैं। किसी से सुख मिलता है, किसी से दुःख। जिन से सुख मिलता है उनसे मुहब्बत हो जाती है और उनको अपना समझता है । जिनसे दुःख मिलता है उनसे नफ़रत (विमुखता) हो जाती है । और उनसे

दूर रहना चाहता है । समावस्था में फ़र्क़ आजाता है । किसी के हासिल (प्राप्त करने) और किसी को हटाने की ख़्वाहिशात पैदा हो जाती है और इन ख़्वाहिशतों के ज़ेरे-असर (प्रभाव से) उनके लिए प्रयास करता रहता है । इस अवस्था में जीवात्मा जो कि सद्चिदानन्द की अक्स (प्रतिबिम्ब) है इन ख़्वाहिशात (इच्छाओं) के नीचे दबी पड़ी रहती है और उसको अपने असली लक्ष्य का बिलकुल पता नहीं रहता।"

इच्छाओं का उतार-चढ़ाव

" जब उसको अपनी इच्छाओं में कामयाबी नहीं मिलती होती और दुनियाँ में अपने आपको दुखी पाता है, उस वक्त परेशान होकर ईश्वर से छुटकारे के लिए प्रार्थना करता है । ईश्वर की कृपा की मौज़ उठती है और वह गुरु-रूप में आकर दुनियाँ के दुखों से निकलने की तरकीब बताता है और मदद भी करता है । जब मन समावस्था में आ जाता है - कोई ख्वाहिश नहीं रहती तो आत्मा का अनुभव हो जाता है - जहाँ पर पूरा आनन्द - पूरा ज्ञान, पूरी ज़िन्दगी और जन्म मरण के फंदे से हमेशा के लिए छूट जाता है । यही मोक्ष है, यही निर्वाण-पद है - यही ज़िन्दगी का लक्ष्य है ।"

दर्शन और साधना की लय अवस्था, समाधि अवस्था सत्व खण्ड के दर्शन, ईश्वर से एकाकार, परमात्मा का प्रेम आनन्द के रूप में ज़ाहिर होता है, जो आत्मा अनुभव करती है । बुद्धि के मुक़ाम पर उतरकर ये ज्ञान के रूप में तब्दील हो जाता है और नीचे उतरकर मन की वासनाओं और इन्द्रिय भोग के रूप में और फिर उनके ज़रिये जीवात्मा दुनियाँ में फंस जाती है । जिस तरह से उतार होता है, उसी तरह से चढ़ाई होती है ।

साधक की अवस्थाएँ

ह्रदय के स्थान के नीचे तमावस्था है - ह्रदय के स्थान पर रज और उससे ऊपर सत। रज से यानी अज्ञानी ह्रदय से अभ्यास करके सत पर या आज्ञा चक्र पर आते हैं तब आत्मा का दायरा आता है । नीचे के स्थानों में मन का दायरा है - वहाँ आत्मा दबी हुई है । आज्ञा चक्र के ऊपर आत्मा का दायरा है - यहाँ आत्मा का राज्य है और यहाँ केवल सत-मन की ही पहुँच हो सकती है । मन का असली रूप सत है जिस पर रहकर यह आत्मा के नज़दीक रहता है । तम

और रज में बरतकर ग़लत काम करने से इसे दुःख होता है । तमावस्था से निकालने के लिए गुरु रज है और रज से ऊपर उठाने के लिए गुरु सत है । इससे ऊपर गुरु आत्मा है । निज मन यानी त्रिकुटी के स्थान पर पहुँच कर गुरु में लय हो जाती है तब यहाँ के दर्शन होते हैं। यह 'फनाफ़िल-शेख़' (गुरु में लय होने) का दर्ज़ा है ।

' मुरीद' और 'मुराद'

अभ्यास में तरक़्क़ी करते हुए जो साधक चलते हैं वो 'मुरीद' हैं। पहले उनकी इन्द्रियाँ मन, बुद्धि, मौतदिल हालत में यानी सत अवस्था में आते हैं और बाद में आत्म- साक्षात्कार होता है । इससे पहले होली होती है, फिर दशहरा, दिवाली और तब बसन्त आता है । और जो सच्चे प्रेमी ईश्वर के होते हैं उनको पहले आत्मा का साक्षात्कार होता है । फिर बुद्धि शुद्ध होती है - बाद को मन,इन्द्रियाँ और रहनी-सहनी ठीक होती है ।इन लिए पहले बसन्त आता है फिर दिवाली, दशहरा और बाद को होली होती है । यह 'मुराद' कहलाते हैं - यह गुरु के सच्चे आशिक़ होते हैं और यही सच्चे गुरु मत होते हैं, लेकिन हज़ारों मुरीदों में से सिर्फ़ एक या दो। (हमारे गुरुदेव अपने गुरु की मुराद थे) ।

प्रेम-भक्ति और ज्ञान

पूज्य गुरुदेव फरमाते थे - " प्रेम-मार्ग व ज्ञान -मार्ग दो रास्ते हैं। प्रेम-मार्ग में अहंकार नहीं रहता - यहाँ सेवा और दीनता का भाव रहता है । इस मार्ग में श्रेष्ठ अधिकारी वह है जो गुरु से बेग़र्ज़ाना (निःस्वार्थ) मुहब्बत करता हो - वह ईश्वर को भी नहीं चाहता। लेकिन जो ईश्वर-दर्शन चाहता है, वह भी सच्चा अधिकारी है । सन्तों से ईश्वर दर्शन की चाह करना सही है, जो ऊँचे अधिकारी हैं वह गुरु के ख्याल को receive (ग्रहण) करते हैं और उनकी तबियत के ख़िलाफ़ बातों को छोड़ देते हैं। इस रास्ते में ख़राब रुपया, ख़राब सौहबत, काम वासना और अहंकार गिराने वाले हैं। इनसे बचते रहना चाहिए। पहले सत पर आना है । जब सत पर आ जाओगे - नेकी ही नेकी रह जाएगी, तब तरक़्क़ी समझो। परमार्थ कई ज़िन्दगियों का सबाल है । घबराना नहीं चाहिए। सच्चाई के साथ कोशिश करते रहोगे, तो गुरु-कृपा से सब कुछ मिलेगा।

वापिसी का पूर्वाभास

3 सितम्बर, 1958 को सिन्दराबाद में आपने फ़रमाया था कि - "फ़क़ीरों को आपने जाने के बारे में आभास हो जाता है । लाला जी महाराज आख़िरी दिनों में फरमाते थे कि मेरे चारों और बुज़ुर्गों की रूहें रहती हैं। अब चलने का वक्त आ गया है । परमसन्त श्री शिवदयाल सिंह साहब ने आपने सत्संगियों को बतला दिया था कि कल वापिस जायेंगे। सत्संगी इकठ्ठे हो गए। उन्होंने सुरत ऊपर खेंच ली - पुतली चढ़ गयी। मगर थोड़ी देर बाद आँखें खोल दीं और कहा कि अभी वक्त नहीं है । उनके भाई ने पूछा तो फ़रमाया कि शाम को चार बजे वापिसी होगी और उन्होंने ठीक चार बजे ही देह छोड़ी। बैनर्जी साहब ने भी कह दिया था कि अब वापस जायेंगे और ठीक पन्द्रहवें दिन ऐसा ही हुआ।"

"मुझे 29 सितम्बर 1967 को लाला जी महाराज ने स्वप्न में कहा ' अब वापस आ जाओ'। मैंने पूछा 'कब तक' तो उन्होंने फ़रमाया - 'दो महीने तक'। फ़रवरी 1968 में आँख में रक्तस्राव (haemorrhage) हुआ और मुझे लग रहा था कि अब वक्त आ गया। मगर फिर महाराज जी ने दर्शन दिए और फ़रमाया कि यह भी भोग लो।

फ़रवरी 1970 में बसन्त भण्डारे के बाद सेवक को आपने न जाने कितनी दया, कृपा व प्रेम से अपने बिलकुल नज़दीक ही काफ़ी देर बिठाया और न जाने कितना प्रेम बख्शा और फिर परशादी दी और फिर फ़रमाया कि - "अब मैं जल्द ही शरीर छोड़ना चाहता हूँ।" चरण कमलों को ह्रदय और माथे से लगाकर बिदाई लेकर सेवक बाहर निकल चुका था कि आपने कुछ बातें बतलाने के लिए फिर बुला लिया। यह बिलकुल आसाधरण ही था। मगर सेवक इन इशारों को उस समय पूरी तरह नहीं समझ पाया कि मेरे प्रियतम की वापिसी का समय नज़दीक आ पहुँचा है ।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।

'

पूज्य गुरुदेव द्वारा निर्देशित

शरीर विज्ञान और आध्यात्मिक जानकारी

- श्री रामसागर लाल, गोरखपुर।

शरीर की रचना

परमपूज्य गुरुदेव जब अन्तर में सूक्ष्म चक्रों का अनुभव करा रहे थे उन्हीं दिनों उन्होंने शरीर की रचना का चित्र बनाकर 6 स्थूल, 6 सूक्ष्म, 6 कारण यानी 18 चक्र, 19 वां तदरूपता तथा 20 वां विशिष्ठा द्वैत का तथा अलग-अलग चक्रों के अलग-अलग रंग, तत्व, गुण, आदि का विस्तृत विश्लेषण किया था। उस चित्र की एक नकल मेरे रजिस्टर में अब तक सुरक्षित है । चूँकि उस चित्र में साधन सम्बन्धी हर आध्यात्मिक जानकारी उपलब्ध है, अतः हर कर्मठ साधक को व्यक्तिगत जीवन में उसका उपयोग सुरुचिकर हो सकता है, ऐसा मेरा अनुमान है । परमपूज्य गुरुदेव की शिक्षा हर सत्संगी तक पहुँच जाये, इसी भाव से प्रेरित होकर एक रेखा-चित्र भी आपने बनवाया था।

दीक्षा की विविध विधियाँ

बात सन 1962-63 की है । आन्तरिक शिक्षण के दौरान एक दिन परमपूज्य गुरुदेव ने बताया कि दीक्षा की तीन विधियाँ आध्यात्मिक जगत में अपनायी जाती हैं :-

(1) मुर्गी जैसे अपने अण्डों के ऊपर बैठकर उन्हें सेती है, जिसके फलस्वरूप उन अण्डों में से चूज़े पैदा होते हैं, उसी प्रकार क्षेत्रीय सन्यासधारी लोग एक ही स्थान पर बैठकर अपने शिष्यों की शिक्षा, दीक्षा तथा गढ़त करते हैं।

(2) मछली जैसे अपने अण्डों को साथ लिए डोलती फिरती है और इस प्रकार पल कर उन अण्डों में से मछली के बच्चे पैदा होते हैं, उसी तरह प्राचीनतम युग से यह परम्परा चली आ रही है कि ऋषि लोग अपनी शिष्य मण्डली के साथ इस वन से उस वन में डोलते रहते थे और उनके शिष्य लोग उसी के दौरान शिक्षा, दीक्षा आदि प्राप्त करते थे ।

(3) कछुआ जैसा अपना अण्डा बालू पर देता है पर अण्डे को वहीं छोड़कर वह नदी के दूसरे पार से देखता रहता है, यानी उन अण्डों को सेता है। फलतः समय पर उन अण्डों में से कछुए के बच्चे पैदा होते हैं। उसी प्रकार से सन्तमत के आचार्यगण अपने शिष्यों को दीक्षा देकर उन्हें उनके घर भेज देते हैं, पर स्वयं अपने आश्रम में बैठे-बैठे उनकी गढ़त करते हैं।

शिक्षा देने की रीति

परमपूज्य गुरुदेव कहते थे कि हमारे यहाँ की शिक्षा तीन प्रकार से दी जाती है :-

पहली, व्यक्तिगत अभ्यास के दौरान, दूसरी, सत्संग के दौरान, और तीसरी, स्वप्न के दौरान।

ध्यान के दौरान जो शिक्षा गुरु के प्रवचन के द्वारा दी जाती है, शिष्य/साधक को उसकी आवाज़ तो सुनाई देती है पर तत्काल उसे कुछ याद नहीं होता, पर उसका ध्यान बराबर बना रहता है, तो गुरु द्वारा दी गयी शिक्षा उस तक निश्चित ही पहुँच जाती है और माक़ूल (उचित) अवसर पर वह खुलती है। इसी प्रकार स्वप्न में यदि दीखे कि पूज्य गुरुदेव कुछ कह रहे हैं अथवा बतला रहे हैं पर उसे याद नहीं आती कि उन्होंने क्या कहा। इस हालत में भी गुरु की दी हुई शिक्षा शिष्य तक पहुँच जाती है और उचित समय आने पर अपने आप खुलती है।

Oooooooooooo

संत प्रवर गुरुदेव ने बताया

सन्तमत में दीनता का महत्व

--श्री ओ० पी० जौहरी, जयपुर

परमपूज्य संत शिरोमणि डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी साहब दीनता की साक्षात् मूर्ति थे । सन्तमत में दीनता का प्रमुख स्थान है । गुरुजनों के कृपा-पात्र हम तभी हो सके हैं जब हम दीन बनकर उनके श्रीचरणों में जाते हैं। उनके पावन शब्दों में -

" सन्त सदा उसके (ईश्वर के) दरबार में हुज़ूरी के साथ हाज़िर रहते हैं, इसलिए वह सदा सन्तों में मूर्तिमान रहता है । सन्तों के चरणों में बैठने से दीनता और दीनबन्धु दोनों मिलते हैं। "

इस विषय पर पूज्य गुरुदेव से सुने उपदेशों के सार को प्रस्तुत करना ही मेरा प्रयास है । दीनता एक अद्भुत भाव है जो शब्दों में प्रकट करना असम्भव है । दीनता के मायने यह नहीं कि हम धन सम्पति से हीन हो जाएँ। सच्चे अर्थों में इसका मतलब यह है कि हम अपनी ख़ुदी या अहम भाव (ego sense) को मिटाकर अपने-आपको गुरु में लय कर दें। यदि हम अपने आपको दीन समझ लें तो अपना अनादर या बेइज़्ज़ती हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। इसे थोड़ी देर को इस प्रकार समझ सकते हैं कि जब माता-पिता बच्चे को डाँटते हैं तो क्या इसमें बच्चे की बेइज़्ज़ती या निरादर है? नहीं, कदापि नहीं, क्योंकि बच्चा माता-पिता का प्रिय है, उनके प्रति आश्रित है । आश्रित होना दीनता है । यदि हम दीन होना चाहते हैं तो अपने आपको सेवक समझें और प्राणी-मात्र की दिल से सेवा करें। कहने को तो यह सब बहुत आसान है कि साहब हम तो आपके सेवक हैं, लेकिन ऐसा होना बहुत कठिन है । यह सब साधन और अभ्यास से ही सम्भव है ।

और उन्होंने अपने बुज़ुर्ग गुरुजनों की मौज़ूदगी में हाज़िरी दी अत्यन्त अदब से, दीन भाव को जीवन का अंग बनाकर। अंततः इसी गुण से दीनबन्धु को भी प्राप्त कर दिखाया।

यह बिलकुल सही है कि सन्तों के श्री चरणों में बैठने से दीनता मिलती है लेकिन जबतक हम खुद दीन बनकर नहीं जायेंगे तब तक वह चीज़ नहीं मिल सकती जो मिलनी चाहिए। पहले निज-कृपा फिर गुरु-कृपा। पूर्ण दीनता आजाने पर सारे सद्गुण ख़ुद-ब-ख़ुद आने लगते हैं। विनम्रता दीनता का ही अंग है । समर्पण का भाव ही दीनता में छिपा हुआ है । जहाँ पूर्ण समर्पणता आई फिर विलय और तब आत्म-साक्षात्कार में देर कहाँ ?

दूसरी बात, दीनता आ जाने पर क्रोध स्वतः चला जाता है । क्रोध आध्यात्म के मार्ग में एक बहुत बड़ी रुकाबट करता है और यदि हमारे अन्तर में क्रोध है, तो फिर दीनता कैसी ? हम सेवक कहलाने लायक कहाँ रहे ?

जहाँ दीनता है वहाँ क्षमा करने का भाव भी साथ है । जिन महापुरुष के अन्तर में दीनता भरी है, वे कभी किसी के ऊपर क्रोध नहीं करेंगे। उनके अन्तर में क्षमा का भाव रहता है । सन्तों का ह्रदय बड़ा ही कोमल होता है । वे दूसरों के दुःख देखकर पिघल उठते हैं और द्रवित हो उठते हैं। सन्तों को जब कोई कष्ट पहुँचाता है तो वे विनम्रता पूर्वक उनके लिए यही प्रार्थना करते हैं - *" हे प्रभु ! ये भूले हुए हैं। ये नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं। दयामय प्रभो ! इन्हें क्षमा करो। इन्हें किसी भी सुख से वंचित मत करना। इन्होने तो मेरी मन्ज़िल को आसान कर दिया है ।"* यह है उनकी महिमा और दीनता की पराकाष्ठा।

जितने भी महान सन्त हुए हैं उन सबने दीनता रूपी आभूषण को धारण किया है । जो दीन होगा वह सहनशील अवश्य होगा। उसे मतलब नहीं कि लोग मेरे बारे में क्या कहते हैं। सही बात तो यह है कि जिसमें दीनता पूर्ण रूप से आ गयी है उसने अपना दीन (परलोक) बना लिया, दीनबन्धु को प्राप्त कर लिया।

सिखों के तीसरे गुरुदेव श्री अमरदेव जी दीनता की मूर्ति थे । वे अपने गुरु महाराज श्री अंगददेव जी के समधी थे और रिश्ते में भी बड़े थे, लेकिन दीनता का यह हाल था कि जाते वक्त पीठ गुरु की तरफ नहीं होने देते थे । इसे बेअदबी समझते थे । श्री अमरदास जी बूढ़े थे, लेकिन दीनता कि वजह से बड़े शौक से श्री अंगददेव जी की सेवा किया करते थे । प्रतिदिन सुबह नदी से पानी लाकर गुरु को स्नान कराते थे ।

एक दिन पानी ज़्यादा बरसा, राह बन्द होगयी, नदी, नाले, सड़क, सब पानी से भर गए। श्री अमरदेव जी बरसते पानी में ही नदी पर गए । जब गुरूद्वारे के पास पहुँचे, वे गिर पड़े, लेकिन घड़े के पानी को नहीं गिरने दिया। धमाके की आवाज़ हुई। पास ही जुलाहे का घर था । वह बोला - 'कोई शख्स गिरा है या कोई कुत्ता कूदा है ।" उसकी पत्नी बोली - "इस अन्धेरी रात में अमरु बिचारे के सिवाय कौन उठता होगा। वही गरीब दुखिया पानी लेने जाता है, वही गिरा होगा।" ये बातें गुरु अंगददेव जी ने सुन लीं।

अमरदास जी घड़ा लेकर पहुँचे। गुरु को स्नान कराया । सुबह हुई, दरबार लगा। गुरूजी ने हुक्म दिया 'जुलाहिन को लाओ।' वह डरती हुई आयी। गुरूजी ने पूछा- " माई ! आज सुबह तूने क्या कहा था ?। वह कहने लगी - " भगवन ! मैंने तो कुछ नहीं कहा। धमाके की आवाज़ हुई, जैसे कोई गिरा हो। मेरे पतिदेव के पूछने पर मैंने कहा कि- "ऐसे अँधेरे में अमरु बेचारे के सिवाय और कौन हो सकता है । वही गरीब पानी लेने गया होगा।"। यह कहकर वह चली गयी। गुरुदेव का हुक़्म हुआ -" अमरदासजी को हाज़िर करो।" वे दूसरी जगह बैठे भजन गा रहे थे, आये। गुरुसाहब उठे और अपने दरबारियों से कहने लगे - " यह अमरू बिचारा या गरीब दुःखिया अमरू नहीं है बल्कि राजाओं का राजा गुरु अमरदास है ।" यह कहकर अमरदास जी को छाती से लगा लिया और अपनी गद्दी पर बैठाकर निहाल कर दिया।

" लेने को सतनाम है, देने को अन्न दान !

तरने को है दीनता, डुबन को अभिमान !! "

इसी प्रकार के भाव **गुरु रामदास** जी के थे - *" जिसने अपने अहम और खुदी को मिटा दिया हो तो फिर गुरुदेव की कोई भी सेवा क्यों न हो, उसमें किसी प्रकार की हीन भावना आने का प्रश्न ही नहीं है ।"* रामदास जी के बूढ़े गुरुदेव ने परीक्षा के तौर पर एक रोज़ सारे शिष्यों को अलग-अलग चबूतरा बनाने की आज्ञा दी। सबने बनाया। गुरुदेव ने सबका तुड़वा दिया, फिर बनाने का आदेश दिया। कई बार चबूतरे बने और बिगड़े, लोग उकता गए और कहने लगे - 'गुरुदेव बूढ़े हो गए हैं। बुढ़ापे के कारण इनकी बुद्धि को कुछ हो गया है, जो बार-बार चबूतरा बनवाते हैं और बार-बार तुड़वा देते हैं।'। यह सोचकर उनकी आज्ञा नहीं मानी। परन्तु रामदास जी बराबर आदेशों का पालन करते रहे क्योंकि उनके अन्तर में दीनता कूट-कूट कर भरी थी।

रामदास जी सेवक थे और सेवक को सिर्फ सेवा करने से मतलब - उसे इससे कोई वास्ता नहीं कि मालिक मुझसे क्या करवा रहे हैं या लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे। आख़िर गुरु जी ने पूछा - "क्यों रामदास ! और सब लोग तो भाग गए, तुम क्यों चबूतरा बनाते- बिगाड़ते हो ? क्या तुमको तकलीफ नहीं होती ?" रामदास जी नम्रतापूर्वक बोले - " भगवन ! मैं सेवक हूँ, मेरा काम तो सेवा करना है । चबूतरा बने या बिगड़े, मुझे इससे क्या मतलब ? मुझे तो आज्ञा पालन करने से काम है । अगर तमाम ज़िन्दगी इसी में निकल जाये तो भी मैं नहीं घबराऊँगा।" गुरुदेव प्रेम से गदगद हो गए, आपको सीने से लगा लिया और अन्त में उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाया ।

कबीर साहब ने भी दीनता का बड़ा गुणगान किया है :-

" दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखे न कोय !

भली बिचारी दीनता, नरहु देवता होय !!

कबीर नवै सो आपको, परकों नवै न कोय !

घालि तराजू तौलिये, नवै से भारी होय !! "

अपनी सहज वानी में दीन बने रहने का लाभ भी सुझाते हैं -

" कबीर नन्हे हो रहो, जैसी नन्ही दूब !

सभी घास जल जायेंगे, दूब खूब की खूब !!"

जब दीनता का समावेश होता है तभी अपने अवगुण दीख पड़ते हैं, दूसरों के जो नुक्स दीख पड़ते हैं वे अपने अन्तर में पहले से ही मौजूद थे, इसकी साधक को खबर तक न थी -

" बुरा जो ढूँढ़न मैं चली, बुरा न दीखा कोय !

जो घट ढूँढ़ा आपना, मुझसे बुरा न कोय !! "

जब अन्तर में बुराइयाँ दीखती हैं उनसे हम घृणा करते हैं और दीनतापूर्वक अपने गुरुदेव के श्रीचरणों में गिड़गिड़ाते हैं, रोते हैं, तो उन बुराइयों से छुटकारा मिल जाता है । यही वास्तविक स्वाध्याय है ।

दीन पुरुष ही सज्जनों की पवित्र दृष्टि में सबसे अधिक अधिकारी होते हैं। ऐसे ही शिष्यों के लिए गुरुजनों का यह हाल है -

" दास दुःखी तो मैं दुःखी, आदि अन्त तिहुँ काल !

पलक एक में प्रकट हो, छिन में करूँ निहाल !!"

हमें दीन भाव केवल मानव जाति विशेष के साथ ही नहीं, बल्कि परमपिता की तमाम सृष्टि के साथ बरतना है । फिर यह आवश्यक है कि - 'हम व्यसनी न बने, मांस, मदिरा, आदि तामसिक वस्तुओं का सेवन भूल कर भी न करें। इनसे ह्रदय कठोर होता है । अतः दीनता लाने के लिए यह ज़रूरी है कि हम हुज़ूरी में रहें यानी यह सोचते रहें कि श्री गुरुदेव हमारे अन्तर में विराजमान हैं, हमारे साथ हैं, हमारे चारों तरफ़ वे ही वे हैं। वे हमारे हर कार्य को देख रहे हैं।"(He is in us, with us and all about us) ऐसा सोचते रहने से हम बुरे कार्यों से बच जायेंगे।

पूज्य श्री लालाजी साहब (समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज, फतहगढ़ी) अपने काल के सुविख्यात परमसन्त थे । सूफियों की भाषा में वे पीर-क़ामिल थे । उन्होंने भी परमेश्वर के श्रीचरणों में विनम्रतापूर्वक एक जगह क्या खूब लिखा है :

" हे परमपिता परमेश्वर ! यह सेवक जैसा है वैसा आपकी शरण में मौज़ूद है । इसको खबर नहीं कि आपके गुण कैसे गाये जावें। कभी-कभी अपनी बाख़बरी पर नाज़ हो जाता है,

लेकिन जब काम का वक्त आता है, सब धरे का धरा रह जाता है । अब तक छान-बीन करने का यह नतीज़ा निकला और यह जान पाया कि 'कुछ नहीं जाना'।।"

ज़ाहिर है कि आध्यात्मिक मार्ग को सुगम बनाने के लिए दीनता की परम् आवश्यकता है । पूर्ण दीनता के आते ही विनम्रता, क्षमाशीलता, सहनशीलता, राग-द्वेष से मुक्ति, क्रोध और अहंकार का नाश, पूर्ण आत्मसमर्पण (total surrender) आदि अद्वितीय गुण साधक के अन्तर में स्वतः ही झलकने लगते हैं। इस पारलौकिक गुण को पाना निहायत ही मुश्किल है ।परन्तु, गुरु चरणों का, संतों के चरणों का आसरा (सहारा) लेने से दीनता सुगमता से आ सकती है ।

oooooooo

उपदेश जो हमारी दौलत बन गए

- श्री अमरीक सिंह, नई दिल्ली।

अपनी मामूली सी ज़िन्दगी में जगह-जगह पर क़िस्मत के खेलों के उतार-चढाव और ठहराव-पड़ाव देखने पड़े चाहे वो सामाजिक कार्य हों, परिवार -कुटुम्ब की सेवा हो या व्यापार-कारोबार की सरगर्मियाँ रही हों। इस सफ़र के दौरान तरह-तरह के रिश्ते बने बिगड़े। इन्सानी हज़ारों रूप देखने-बरतने को मिले। लेकिन अगर कोई ऐसी शख़्सियत मिली कि जिसकी बेग़र्ज़ाना मोहब्बत ने ऐसा दिल को लूट लिया - या कहूँ कि ऐसा मालामाल कर दिया कि उसकी दात दुनिया भर की दौलतों से बढ़कर लगीं और आज भी मिल रही हैं तो वे थे हमारे सबके मेहरबान-निगेहबान परम पूज्य गुरु महाराज । उन्हीं के कुछ बेशक़ीमती उपदेश जो सतीश जी के साथ उनका ज़िक्र करते याद आ गए हैं, लिखवा रहा हूँ ।

--- परम् पूज्य गुरुदेव से एक बार हमने ये प्रश्न किया कि - " हालतें कैसे गुज़रती हैं ?" तो आपने फ़रमाया _" हमें तो 50 साल से यही काम करते हुए हो गए हैं। हम तो यह समझ पाए कि खयाल हरदम बना रहता है । हमारे और तुम्हारे में पता है क्या फ़र्क़ है ? तुम्हें तो ख़याल कभी-कभी आता है - सत्संग में बैठ गए या हमारे पास आ गए तब आता है । मगर हमारा ख़याल तो एक सैकिंड के सत्तरवें हिस्से के लिए भी नहीं हटता।"

--- एक बार गुरु महाराज ने सरदार जी भाई साहब के घर प्रातः कालीन सत्संग में बहुत ज़ोर देकर कहा था कि -" अभ्यासियों को celibacy (ब्रह्मचर्य) का ज़्यादा से ज़्यादा पालन करना चाहिए। इससे बड़ी मदद मिलती है । और तरक़्क़ी जल्दी होती है । इसीलिए जो अपनी ज़बान पर क़ाबू पा लेता है वह नीचे की इन्द्रियों पर भी क़ाबू पा लेगा।"

--- एक दफा गुरु महाराज लाजपत नगर में हमारे घर में दो दिन के लिए ठहरे हुए थे । उस वक्त सत्संग के दौरान एक अभ्यासी ने पूछा कि - ***" आपके बाद हमारा क्या होगा ?" गुरु महाराज कुछ देर चुप रहे फिर बुलन्द आवाज़ में फ़रमाया कि -" तलवार म्यान से बाहर हो जाएगी। हम पर time and place (वक्त और स्थान) की तब पावन्दी नहीं रहेगी । हम आज़ाद होंगे। जब कोई याद करेगा फ़ौरन इमदाद पहुँचेगी। गुरु कभी मरता नहीं । गायवाना शक्ल में हर वक्त साथ होता है । "***

--- गुरु महाराज ने सिकन्दराबाद सत्संग के सालाना भण्डारे में एक बार यह भी फ़रमाया था कि -" *हर अभ्यासी को सुबह-शाम शिजरे का पाठ करना मुफ़ीद साबित होगा । इससे सिलसिले के तमाम बुज़ुर्गान की बरक़तें और बख़्शिशें हासिल होंगी। उन्होंने पूज्य दादा गुरु, लालाजी महाराज, का बताया हुआ "चौमुखा जाप" भी रोज़ाना कम से कम ग्यारह बार करने को कहा था ।*

oooooooooooo

अनेक समस्याओं का समाधान

हमारे प्रभु के हितोपदेश

-- श्रीमती शान्ता श्रीवास्तव, दिल्ली

यह सन्त लोग ही धर्म की धुरी को धारण करने वाले होते हैं। वह दिव्य प्रकाश उन्हीं के पास होता है, जिससे पथ से भटक गए मनुष्य को वह सत्य का मार्ग दिखाते हैं। ऐसे दीन दयालु सन्त कभी भाग्य से मिल जाते हैं और जीव का कल्याण कर देते हैं।

प्रतिपल स्मरणीय हमारे प्रभु ऐसे ही थे - जिनकी हम सौंवी वर्षगाँठ मना रहे हैं। जो उनके सामने पहुँच गया कभी ख़ाली हाथ नहीं लौटा। जो सिलसिला उन्होंने शुरू किया था भगवती धारा सत्संग की आज भी उसी वेग से आगे बढ़ रही है । जो उस तट पर गया उस पावन धारा में प्रवाहित हो गया। वह शान्ति जल धारा आज भी मानव का कल्याण कर रही है । उस जगह पहुँच कर असीम शान्ति का अनुभव होने लगता है, अन्तर में व्याप्त गहन अंधकार में एक अलौकिक दीप प्रज्ज्वलित हो जाता है । प्रतिपल उसी एक ज्योति से ज्योतिर्मय रहने के लिए प्राण व्याकुल हो कह उठता है - *दीप मेरे जल अकम्पित।*

यही वह प्रकाश है जिसे धर्म कहते हैं। यही पाथेय (रास्ता) है आत्मा को परमात्मा तक पहुंचाने का। यही वह कोष है जिसके सम्मुख विश्व के सभी कोष व्यर्थ हैं। इस अवर्णनीय अलौकिक कोष की प्राप्ति करने के लिए हमें एक ही कार्य करना है - नित्य नियमित सत्संग में जाकर बैठें, अपने कल्याण के लिए प्रार्थना करें, बाक़ी तो सब वह सम्भाल ही लेंगे ।

हमारे महाप्रभु परमसन्त डाक्टर श्रीकृष्ण लाल जी को आध्यात्मिक संस्कार बचपन से अपने माता-पिता से मिले थे । प्रातःस्मरणीय महात्मा श्री रामचन्द्र जी (फतेहगढ़) उच्चकोटि के गृहस्थ सन्त थे । आप उनके आत्मपुत्र थे । उनके सानिध्य में मानो सोने को सुगन्धि मिल गयी। दिव्य ज्योति चहुँ और फैलने लगी। गुरुदेव की महान कृपा से आध्यात्म विद्या के महाविद्यालय "रामाश्रम सत्संग" में वे सभी वहाँ पहुँचकर अपनी आत्मिक पिपासा को शान्त कर रहे हैं। उनका कहना था कि आप दैनिक जीवन में जो भी कार्य करने जायें पाँच मिनट

केवल अपने इष्टदेव का ध्यान करके जायें। आपको बल मिलेगा, उत्साह मिलेगा और काम करने की एक सुन्दर दिशा मिलेगी। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को यही उपदेश दिया था कि तुम कुछ देर के लिए सभी धर्मों का त्याग करके हमारे निकट हमारी छाया में आजाओ। तुम्हारे अन्तर के पापों की जलन मिट जाएगी और शान्ति का अनुभव करके तुम अपने धर्मों और कर्त्वयों को उत्तमता से निभा सकोगे। यही हमारे गुरुदेव भी कहा करते थे कि -"एक बार तुम हमारे तो हो जाओ।"

बात 29 दिसम्बर 1960 की है । आप बनारस में थे । प्रातः के सत्संग में आपने आत्मा पर प्रवचन दिया था। उसके बाद सबको लेकर कबीर चौरा गये, वहाँ भी काफी देर तक आन्तरिक अभ्यास हुआ। तत्पश्चात आपने बुद्ध भगवान के बारे में फ़रमाते हुए कहा कि उनका पालन-पोषण इस प्रकार से किया गया था कि उन्हें जीवन में किसी भी प्रकार के दुःख मुसीबत का अहसास न हो, पर हो ही गया। इसी तरह से बातचीत चल रही थी तभी आपने फ़रमाया -

प्रवचन - " जो आदमी परमात्मा की ओर लौ लगाए हुए है उनसे मिलकर दूसरा आदमी भी उतना ही ताक़तवर (आध्यात्मिक शक्ति) हो जाता है । वह ऐसे चमकने लगता है जैसे कंचन, जो एक वक्त में मन के स्थान पर होते हैं, वह उनके स+म्पर्क में आकर आत्मा के स्थान पर आ जाते हैं।"

प्रवचन - " अगर हमारा ताल्लुक़ भण्डार (आत्मा) से हो जाये तो हम बहुत शक्तिशाली हो जायेंगे। जो शक्ति से ताल्लुक़ पैदा कर लेता है, वही 'गुरु' है । जिन लोगों का विश्वास ईश्वर पर है वह 'सत्संगी' है ओर वही इस हल्के(दायरे) में बैठने के अधिकारी हैं। "

पूज्य भाई साहब (श्री करतार सिंह साहब) भी यही कहते हैं। जब आप सत्संग में बैठें उस समय आप अपने विचारों को चारों ओर से हटाकर ईश्वर के ध्यान में लगा दें। ख़याल करें कि गुरुदेव के शरीर से रश्मियाँ निकल रही हैं। इस तरह जब विचार शुद्ध हो जायेंगे तब परमार्थी साधना में स्थिरता आयेगी।

प्रवचन - " साधन मन का है । आत्मा एक है ओर सब जगह एक ही काम कर रही है । सूरज एक है और सब पर उसका प्रकाश भी एक सा ही पड़ रहा है । परमात्मा का माइन्ड एक है और जब सब माइन्ड मिल जाते हैं तो सब पर उसका असर पड़ता है ।"।

प्रवचन - " आगे चल कर सब माइन्ड एक हो जाते हैं। जिस तरह दो विरोधी लक्ष्य के साथ कोई भी व्यक्ति आपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँच सकता, उसी तरह सत्संग (हल्का) में अलग-अलग विचार अगर हैं तो उसका एक दूसरे पर प्रभाव ज़रूर पड़ेगा। सत्संग (हल्का) ऐसी जगह करते हैं जो सबसे एकान्त हो और वहाँ शोरगुल न हो। उसके बाद उन लोगों को बैठने की इज़ाज़त देते हैं जो परमात्मा को मानते हैं। इसको 'हुज़ूरी' कहते हैं। हुज़ूरी का अर्थ यह है कि हम सब जगह परमात्मा को देख रहे हैं। गुरु सबको सत्संग (हल्के) कराता है, मॉनिटर्स मदद करते हैं। बाज़ जगह तो मॉनिटर को पहरे पर खड़ा कर देते हैं। उनका काम है कि सब आदमियों के खांसी,खखार, खुजली पर अपने ख़याल के ज़रिये रोक लगा दें। सब लोग अपना ख्याल गुरु में लगाते हैं और गुरु अपना ख़्याल परमात्मा में लगाते हैं। अभ्यासी सत्संग में ध्यान करते हैं, मन की हालत को देखते हैं। कोई यह सोचता है कि प्रकाश आ रहा है । इससे दुगना फ़ायदा होता है । यह सत्संग है । अगर किसी को ख़यालात सताने लगें और ध्यान संसार की बातों में उलझने लगे तो चुपचाप वहाँ से उठकर चला जाना चाहिए। यह इस चीज़ का नाज़ुक सिलसिला है । यही सत्संग है ।

गुरु ऊपर से फ़ैज़ लाकर आपके ऊपर व आपके दिल में डालते हैं। अभ्यास में यह फ़ैज़ गुरु के मार्फत लिया जाता है । साधक अपनी शक्ति गुरु में अनुभव करता है इसलिए साधक में अभिमान नहीं होता है । साधक चाहे परमात्मा बन जाये, गुरु को नहीं छोड़ता। वह कभी 'मैं' नहीं कहता। जो किसी भी काम में 'मैं' को महत्व देता है वह मन का गुलाम है । मन का साधना बहुत मुश्किल है । योग क्रिया करनी होती है । सात पर्दे चीरकर आत्मा के नज़दीक आते हैं, लेकिन भक्तों को सिर्फ़ दो पर्दे चीरने होते हैं, एक मन का दूसरा आत्मा का। गुरु में जिस्म व आत्मा है । प्रकाश नज़र आएगा तो जिस्मानी गुरु का ध्यान जाता रहेगा। साधक को पर्दे भी नहीं चीरने पड़ते, अगर उसको अपने गुरु में पूरा विश्वास है । गुरु अपनी शक्ति से उसको दर्शन करा देगा। बाक़ी उम्र में पुख्तगी और सैर होती है । गुरु फिदायी हो और शिष्य

शैदाई हो। मुर्दे और मुरीद में सिवा जान के कोई फ़र्क़ नहीं होता। जो मुरीद अपने को गुरु के हाथों में पूर्ण रूप से समर्पण कर देता है उसका काम बहुत जल्द बन जाता है ।

कुछ ख़ास लोगों की और मुख़ातिब होकर आपने फ़रमाया -

हमारे सिलसिले की बरकत

" अब मेरा आखिरी वक्त है और तुमको सम्भालना है इसलिए सख्ती करनी है । इतने लोगों में से अगर दो या तीन भी बन जाएँ तो बहुत काम बन जायेगा। जहाँ ज़्यादा आदमी होते हैं वहाँ व्यक्तिगत ध्यान नहीं दिया जा सकता। गुरु को महनत करनी पड़ती है । सोते वक्त वह मध्यरात्रि में अपने शिष्यों को तवज्जोह देता है । इसमें फासले का सबाल नहीं है । जो शिष्य जहाँ होता है और यदि उसकी धार गुरु से जुड़ी है, तो लाभ मिलता है । सामने बिठाकर तवज्जोह देने से लाभ होता है परन्तु सोते समय जो तवोज्जह दी जाती है उससे बहुत लाभ होता है । शमा जल रही है और यह निमंत्रण है कि आओ फ़िदा हो जाओ। लेकिन दुनियाँदार दुनियाँ में फँसे हैं, जो फिदायी हैं, खिंच कर चले आते हैं। गुरु प्रेम में मस्त हो जाता है तो शिष्य लोग भी गुरु से फ़ैज़ छीन लेते हैं। इससे मन का घाट बदलता है, यह हमारे यहाँ का तरीक़ा है ।"

प्रवचन - बाज़ लोग सामने बैठकर असर क़बूल नहीं करते, बाज़ करते हैं। जब तवज्जोह आती है, मन अन्दर की और खिंच जाता है और उस वक्त कोई काम नहीं किया जा सकता, उस तवोज्जह को ग्रहण करना चाहिए। इससे फ़ैज़याबी होती है । जमात ज़्यादा होने पर यह नहीं हो सकता। अपने विश्वास से आपको फ़ायदा हो तो हो जाये मगर गुरु से फ़ैज़ नहीं आता। इसका कारण यह है कि लोगों की दुनियावी ज़रुरियात (सांसारिक ज़रूरतें) बहुत बढ़ गयीं हैं। और जब उनकी पूर्ति उनकी ताक़त से नहीं होती तो वह परमात्मा की तरफ़ रागिब (आकृष्ट) होते हैं, इस ख्याल से कि उसके नाम लेने से दुनियावी गरज़ (इच्छा) पूरी हो जाये। वे परमात्मा से प्रेम नहीं करते बल्कि दुनियावी चीज़ों से प्रेम करते हैं, और परमात्मा के प्रेम को इन चीज़ों के हासिल करने का ज़रिया (साधन) बनाना चाहते हैं। हमारे यहाँ का तरीक़ा प्रेम का है । मुराद या फ़िदायी को अभ्यास नहीं करना पड़ता।, बाकि लोगों को करना पड़ता है । इसका मतलब यह है कि मुरीद (फ़िदायी) बेग़र्ज़ गुरु से प्रेम करता हो और उसके (गुरु के) जीवन काल में ही

उसमें फ़ना हो जाये। यदि मुरीद ऐसा नहीं कर सका तो बाद में उसे महनत अधिक करनी पड़ती है । फ़िदायी को अभ्यास इसलिए नहीं करना पड़ता कि वह गुरु के हुक्म पर चलता है । फ़िदायी पैदाईशी होते हैं। फिदाईयत या फनाईयत कमी ज़्यादा भी होती है । ग़लत समाज में बैठने या वर्जित काम करने से यह कम या ख़त्म हो जाती है । हमने यह अनुभव किया है कि गुरुदेव ने अगर ज़रा सा ध्यान हटा लिया तो फिर उसका ख़याल भी नहीं आया। गुरु शुरू में आपका मन रखता है और आपके मन जैसी बात करता है, लेकिन उसे तो आपको परमार्थ के मार्ग पर चलाना है, इसलिए वह आपके मन को तोड़ता है । चाचाजी साहब (मुन्शी रघुवर दयाल) ने तहसीलदार को सख़्त लफ्ज़ कह दिया कि -"अगर मैं इस कुर्सी पर नहीं बैठ सकता तो आप भी इस कुर्सी पर नहीं बैठ सकते "। जब-जब तहसीदार साहब ने कुर्सी पर आकर बैठना चाहा कोई न कोई घटना हो गयी और वह बैठ नहीं सके। मगर जब गुरुदेव (लालाजी साहब) को मालूम हुआ तो वह बहुत नाराज़ हुए। उन्हें सख़्त सजा दी - खड़े रहो। और फिर अलीगढ़ भेज दिया। चाचाजी साहब फतेहगढ़ से अलीगढ़ पैदल गए, जब लौटकर आये तो पूछा -"लौट आये"। चाचा जी ने कहा - "जी" । इतनी सज़ा काफी न थी और एक दिन चाचाजी को जूता खींच कर मारा और बोले - "क्या फिर इस तरह की ज़बान बोलेगा ?" चाचाजी ने माफ़ी मांगी और आइन्दा ऐसा नहीं किया।

" मुझे लालाजी और चाचाजी ने इज़ाज़त दी, लेकिन तसदीक़ के लिए मौलवी अब्दुलग़नी साहब के पास भेजा। मौलवी साहब टालते रहे फिर बोले कि -" मैं इज़ाज़त तब दूँगा, जब देख लूँगा।" और इसके चार साल बाद इज़ाज़त दूँगा" इसी तरह चिश्तिया ख़ानदान के एक फ़क़ीर थे । निज़ामुद्दीन ने एक मुरीद की इज़ाज़त तसदीक़ करने के लिए मुइनुद्दीन चिश्ती के पास अजमेर भेजा। मुरीद साहब ने तसदीक़ के लिए जल्दी की, अपने इज़ाज़त देने से इन्कार कर दिया।

" गया शैतान मारा एक सज़दे के न करने में !

अगर लाखों बरस सज़दे में सर मारा तो क्या मारा!! "

अभ्यास क्या है और क्यों कराया जाता है ? अभ्यास इसलिए कराया जाता है कि गुरु से जो कुछ मिले उसे पुख्ता कर लो। बदएतक़ादी इस चीज़ को दबाती है । कस्व और अभ्यास

द्वारा गुरु से मिली चीज़ बढ़ती है । अभ्यास का मतलब है कि तुम अपने को तम से रज और रज से सत पर लाओ। गुरु की मौहब्बत से आत्मा को शक्ति मिलती है । अभ्यास से कोशिश करके आत्मा को उस जगह पहुँचा दो जहाँ आत्मा नृत्य करती है । मन को नीचे के स्थानों से उस जगह लाना अभ्यास है । हमख्यालों (अपने विचारवालों) के साथ बैठें। सत्संग में अगर ध्यान न लगे तो ख़याल करें कि गुरु सामने बैठे हैं, और उनसे फ़ैज़ यानी प्रकाश की धार निकल रही है और आपका मन-शरीर प्रकाशित हो रहा है । इससे एक और अच्छी तरकीब ध्यान लगाने की यह है कि सोते समय सर गुरु के क़दमों में रखकर सो जाओ। इस थोड़े से concentration (विचार से) रात भर फ़ायदा होगा। आपने सर गुरु के चरणों पर रखा और गुरु ने आँख खोली तो वह चीज़ जिसकी आपको तलाश है, बहुत जल्दी हासिल हो जाती है । दुनियाँ मन को बार-बार नीचे खींचती है । अगर दुनियाँ के कामों के साथ-साथ अभ्यास को बराबर जारी रखोगे, सोते वक्त और सुबह उठकर पहले गुरु का ख़याल करोगे तो बहुत जल्दी कामयाबी होगी"।

" सुबह उठकर आँखों पर हाथ रखकर गुरु का ख़याल करने का तरीक़ा बहुत पुराना है । "

oooooooooooooo

तेरा नाम खालिके दो जहाँ, तू ख़ुदाये अर्शे मुक़ाम है

तेरा नाम खालिके दो जहाँ, तू ख़ुदाये अर्शे मुक़ाम है !

तेरी बन्दगी में है सर झुके, तुझे लाख-लाख सलाम हैं !!

तू ही हरम, तू ही बुतकदा, नहीं फ़र्क़ दोनों में कुछ जरा !

यहाँ परदे में है निहां खुदा, वहाँ ज़ल्वाग़र वो ही राम है !!

पियूं शौक से क्यूँ न मैं इसे, कि भरा है वादये इश्क़ से !

जो दिखाये जल्वए दिलरुवा, ये वो जाम है, ये वो जाम है !!

तेरी याद कैसे भुलाऊँ मैं, तुझे छोड़ के कहाँ जाऊँ मैं !

तेरी याद दिल में ऐ ख़ुदा, तो जुबाँ पै तेरा ही नाम है !!

मुझे देख लुफ़्तो करम से तू, ये ही एक है मेरी आरज़ू !

ये ही सुनके आया हूँ दर तेरे, तेरा फ़ैज़ ख़ल्क़ पै आम है !!

नहीं हमदम अच्छी ये ग़फ़लतें, कि अज़ल है सर पै खड़ी हुई !

करो तुम भी अब तो ख़ुदा -ख़ुदा, कि दुआ का वक्त है शाम है !!

पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों से प्रेरित

लोकाचार हेतु कुछ अमृत विचार

-- संचयन :श्रीमती शीला वर्मा, दिल्ली

" मोहे अपनी शरण में ले लो राम "

* एक परमात्मा को ही सर्वोपरि इष्ट देव मानना चाहिए। उसको जीवन का आधार समझना चाहिए। उसके पवित्र नाम का गुप्त जाप निरन्तर करते रहने का अभ्यास सतत हो जाये, ऐसा प्रयास करते रहना चाहिए। ऐसा गुरु सामीप्य व दर्शन एवं कृपा द्वारा ही सुलभ है ।

* वर्तमान में जियें, अतीत भूलते जाएँ और भविष्य के विचार-द्वंदों से मुक्त रहें। निष्काम भाव से कर्म करने की ओर अग्रसर हो जाओगे, निष्कर्म की समझ आ जाएगी और आसक्ति से दूर हो जाओगे । यही गीता का सार है ।

* दोष दर्शन से सदा दूर रहने का प्रयास अति आवश्यक है । किसी को बुरा मत समझें और न कहें। किसी की निन्दा किसी से भी मत करो।

* शंका मूल पाप है । सन्देह एकाग्रता से हटाता है और बहिर्मुखी बनाता है जो अवगुणों को जगह दे देता है । सतर्क रहो।

* स्त्रियों का आदर मान करना चाहिए। उन्हें प्रणाम करना चाहिए, सिर का मुकुट समझना चाहिए । सीताराम, राधेश्याम, श्यामा श्याम, गौरीशंकर आदि मंत्र जाप भी करना चाहिए। प्रभु हर पुरुष में स्त्री ओर हर स्त्री में पुरुष रूप में मौजूद हैं - यही धारणा हर व्यक्ति में सुन्दर रूप विकसित करती रहती है ।

* प्रेम चाहे किसी दुनियाँदार से हो या ईश्वर से, उसमें कोई गरज़ नहीं होनी चाहिए। जहाँ गरज़ होती है उसे प्रेम नहीं कहते। वह सौदेबाज़ी है । गुरु से प्रेम करो और कुछ न चाहो। अपने मन से पूछो कि क्या चाहते हो और जबाब मिले कि कुछ नहीं चाहते, हमारा प्रीतम खुश रहे और बस, यही चाहते हैं। हमारा रास्ता प्रेम का रास्ता है । प्रेम में जहाँ गरज़ शामिल हो जाती है, रास्ता बन्द हो जाता है ।

* बिना ईश्वर कृपा के गुरु नहीं मिलता और बिना गुरु-कृपा के ईश्वर नहीं मिलता। एक सतपुरुष है और दूसरा सतगुरु है । दोनों में 'सत' है । एक निराकार है और दूसरा साकार। साकार के माध्यम से निराकार को जाना जाता है । एक असल है और दूसरा उसके पाने का माध्यम है । बिना गुरु के ईश्वर को कोई प्राप्त करले, यह नामुमकिन है । गुरु का ध्यान करो और निराकार का चिन्तन करो।

* आत्मा की या ईश्वर की तलाश कैसी ? वह तो हमारे अन्दर मौज़ूद है । आत्मा को पाना नहीं है - ईश्वर को पाना नहीं है ।- अभ्यास असली क्या है? जिस वस्तु ने उन्हें ढक रखा है, उसे हटाना अभ्यास है । मन के पर्दों को हटा दो, आत्मा प्रकट हो जाएगी। सूरज चमक रहा है लेकिन बादलों की वजह से हम उसे देख नहीं सकते। बादल हट जायेंगे तो सूरज दिखाई देने लगेगा।

* सन्त के पास बैठकर आनन्द का अनुभव होता है ।अगर सौभाग्य से ऐसा कोई वक्त का पूरा सन्त मिल जाये, वही गुरु है । वह तुम्हें भवसागर से पार करने आया है । उससे प्रेम करो। अगर तुम्हारी आत्मा दरअसल परमात्मा को पाने की इच्छुक है तो वह उससे चुपट जाएगी।

* सन्त के पास बैठे रहो और मन में कोई ख्याल मत आने दो। फ़ायदा हो जायेगा। बेवकूफ लोग यह समझते हैं कि हम सन्त के पास गए लेकिन उन्होंने हम से बात भी नहीं की। बात की या नहीं, इससे तुम्हें क्या मतलब है ? हर वक्त सन्त के अन्दर से आत्मा के प्रकाश की और आनन्द की शीतल धारें निकल रही हैं जिनसे फ़ायदा हो रहा है । सूरज चमक रहा है । अगर तुमने अपनी आँखें बन्द कर रखी हैं तो सूरज का इसमें क्या दोष है ? क्या वह किसी से बात करता है? नहीं। लेकिन उसके प्रकाश और गर्मी से सबको फ़ायदा होता है ।

* धार्मिक पुस्तकों के पढ़ने से, सन्तों के सत्संग से और उनके उपदेशों पर चलने से आत्मा को ज्ञान प्राप्त होता है । सच बोलने, अच्छे काम करने से, अच्छे विचार रखने से, आत्मा को ग़िज़ा (भोजन) मिलती है । दान और दया करने से, किसी का दिल न दुखाने से, आत्मा को बल मिलता है । चेतन आत्मा की शक्ति ही ईश्वर की प्राप्ति है ।

* परमार्थ के काम में जल्दबाज़ी नहीं होती। Full determination (दृढ संकल्प) होना चाहिए। कुछ हर्ज़ नहीं अगर तरक़्क़ी नहीं होती। जब चल पड़ो, चलते जाओ, रास्ते से मत हटो, कामयाबी शर्तिया होगी। सभी शुरू में नकल करते हैं। असल तो बाद में आती है । सच्ची भक्ति कोई-कोई करता है । लड़कियाँ बचपन में झूठा व्याह रचाती हैं, फिर एक दिन अपना व्याह भी कर लेती हैं। गुरु के दरवाज़े से न हटो। कहा है - ***" द्वार धनी के पड़ रहै, धका धनी का खाया।"*** मुसीबतें आती हैं, गुरु इम्तिहान भी लेते हैं, मगर चाहे कुछ भी मिले, सुख या दुःख, वह (गुरु) तुम्हारी जान हैं। सबसे ज़्यादा उसी को अज़ीज़ (सर्व प्रिय) रखो।

* एक ग़लतफ़हमी (भ्रम) आमतौर पर यह फैली हुई है कि पहले गुरु के चोला छोड़ने पर दूसरे गुरु का ध्यान करना चाहिए और पिछले गुरु से कोई वास्ता नहीं रखना चाहिए। जब गुरु उस पवित्र हस्ती का नाम है जो जीते जी ईश्वर में लय हो चुका है तो शरीर छोड़ने पर यह कैसे समझ लिया जाए कि अब वह मौज़ूद नहीं है । चोला छोड़ने पर गुरु की आत्मा आज़ादी हासिल करके ईश्वर के रूप में हर जगह मौज़ूद रहती है । इसलिए उसको मरा हुआ समझना ग़लती है । उसके चोला छोड़ने पर उसी का ध्यान करना चाहिए। हाँ, अगर अभी तक तमोगुणी और रजोगुणी मन पर बैठक है, या सतोगुणी मन पर बैठक है तो सही पर वह स्थायी नहीं है, तो अपने उस बड़े भाई के संरक्षण और आदेशों से सहायता लेते रहना चाहिए जिसको गुरु इस कार्य के लिए नियत कर गया है । और यदि कोई ऐसा भाई न हो तो किसी दूसरे गुरु के सत्संग से फ़ायदा उठा सकते हैं।

oooooooooooooo

साहसी, कर्तव्यनिष्ठ और करुणानिधान

मेरे पिता परमेश्वर

- डॉ० हरिकृष्ण भटनागर, सिकन्दराबाद

मेरे वालिद अर्थात हमारे गुरुदेव परमसन्त डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी अपने ज़माने के एक महान संत हुए है । उनमें वे सभी गुण व खूबियाँ मौज़ूद थीं जो एक संत में होनी चाहिए। वे प्रेम, त्याग, सेवा व दीनता की साक्षात् मूर्ति थे । मेरा उनका मेरे जन्म से लेकर उनके निर्वाण तक का रात-दिन के लगभग 47 वर्ष का घनिष्ट सम्बन्ध रहा है । मैंने उनको तथा उनके व्यक्तित्व के हर हिस्से को बड़ी बारीकी से देखा है, उनकी आत्मा को अपनी सम्पूर्ण नग्नावस्था में महसूस किया है । वह बाहर से जितने सख्त, मज़बूत और साहसी नज़र आते थे, भीतर से उतने ही नर्म, दयालु व रहमदिल थे । प्यार उनकी वाणी से बरसता था । उनकी पुण्यतिथि के अवसर पर उनकी ऐसी शानदार हस्ती के कुछ तज़ुर्बात पेश कर रहा हूँ।

(1) एक बार का ज़िक्र है कि उन्होंने मुझे हुक्म दिया कि तुम इस पेशे (डाक्टरी) से दुनियाँ ही नहीं, दीन भी कमा सकते हो, बस ईमानदारी, मेहनत व नेकनीयती से काम करते चले जाओ। हाँ, सचमुच जो व्यक्ति गुरुदेव की तालीम पर सख्ती से अमल करेगा, उसे चाहे दो वक़्त की रोटी के अलावा और कुछ न भी मिले, परन्तु सत्संग में रहकर उनके बताये रास्ते पर चलकर ईश्वर की कुर्बत (सामीप्य) हासिल कर सकेगा और निशिचय ही परमात्मा के करीब रहेगा। एक दिन मैं clinic (दवाखाने) से किसी कार्यवश घर आया हुआ था तो गुरुदेव ने मुझे बुलाकर कहा कि मैंने आपके नुख्से पढ़ लिए हैं। ये बहुत महँगे हैं। हमारी गरीब जनता इतना पैसा खर्च नहीं कर सकती। आप क्या समझते हैं कि आपकी दवाएँ फ़ायदा करती हैं? नहीं दरअसल फ़ायदा करने वाली शक्ति कोई और है । आप परचे सस्ते लिखा करें जो जनता आसानी से afford (खर्च) कर सके। और जो कुछ लिखें ईश्वर के ध्यान में लिखें। इस भावना के साथ कि मरीज़ जल्दी से ठीक हो। अगर आपने ये रवैया इख़्तियार कर लिया तो थोड़े ही पैसों में काम हो जायेगा और मरीज़ भी सन्तुष्ट और जल्दी स्वस्थ होगा। इसके बाद मैंने यही रवैया इख़्तियार कर लिया। मैंने देखा कि मेरी प्रैक्टिस पर कोई आँच नहीं आयी बल्कि फ़ायदा हुआ।

(2) गुरुदेव परमसन्त डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी महाराज कहा करते थे कि जो व्यक्ति दुनियाँ नहीं कमा सकता वह दीन क्या ख़ाक कमायेगा । वह इरादे (willpower) के बहुत ही मज़बूत थे, साहसी व हिम्मत वाले भी बहुत थे । जायज़ बात पर वह किसी की भी नहीं सुनते थे । मैंने ज़िन्दगी में किसी भी वक्त किसी मुसीबत में उन्हें हिम्मत हारते नहीं देखा था। वह अन्य किसी भी व्यक्ति की पीड़ा देखकर तड़प उठते थे और हर प्रकार का खतरा मोल लेकर तन-मन-धन से उसकी सेवा करने को तत्पर रहते थे । ऐसी ही एक घटना याद आती है :-

हमारे ख़ानदान की कुछ गाँवों में ज़मींदारी थी जिसका लगन वसूल करने के लिए गुरुदेव ने एक आदमी मुक़र्रिर कर रखा था। एक दिन गुरुदेव clinic (दवाखाने) पर बैठे थे । देखते क्या हैं कि वही व्यक्ति खून से लथपथ उनके सामने खड़ा है । आपने सबसे पहले उसके घावों की मरहम पट्टी की, फिर पूछने पर पता लगा कि लगान वसूल करने गया था, वहीँ गाँव वालों ने घेर कर बेरहमी से मारा है । बस गुरुदेव तिलमिला गए, फ़ौरन तांगा मँगवाया, बन्दूक हाथ में उठायी और उस व्यक्ति को साथ लेकर गाँव जा पहुँचे और गाँव वालों को ललकारा। कोई व्यक्ति सामने नहीं आया। बाद को गाँव के लोगों ने माँफी माँगी, तब मामला रफ़ा-दफ़ा हुआ। तो यह उनके साहस और हिम्मत की मिसाल है ।

(3) एक और किस्सा याद आता है कि वो मुसीबत में पड़े व्यक्ति को देखकर किस कदर व्याकुल हो उठते थे कि अपनी स्वयं की ज़िन्दगी को भी ख़तरे में डाल देते थे । आज़ादी के पूर्व की घटना है । मुझे अच्छी तरह याद है । मेरी उम्र उस समय 10-11 साल की थी। उन दिनों कांग्रेस पार्टी का ज़ोर था। आये दिन अंग्रेज़ों की क्रांतिकारियों से झड़पें सुनने में आती थीं। हमारे कस्बे से थोड़ी दूर पर एक क़स्बा गुलावठी है, वहाँ पर पुलिस और कांग्रेसियों की मुठभेड़ हुई थी जिसमें कांग्रेसी घायल हो गए थे । न मालूम कैसे उन ज़ख़्मी कांग्रेसियों को वह सिकन्दराबाद ले आये और अपने अस्पताल में रखकर इलाज शुरू कर दिया। पुलिस को भी शायद भनक पड़ गयी। गुरुदेव को अंदर किसी ने बताया कि डॉ०साहब, आपके अस्पताल को पुलिस ने घेर लिया है । उनके चेहरे पर चिन्ता की शिकन तक नहीं आयी । बड़े धीरज के साथ उन्होंने कांग्रेसियों को पीछे के रास्ते से बाहर निकाल दिया और दृढ़ता से थानेदार को आमंत्रित किया। पुलिस वहाँ कांग्रेसियों को न पाकर लज्जित होकर चली गयी। ऐसी दृढ़ता, साहस तथा प्रेम व करुणा जैसे परस्पर विरोधी गुणों की मिलौनी थे गुरुदेव।

(4)) इसी प्रकार की करुणा तथा साहस से भरी एक घटना याद आती है जिससे उनके अद्भुत एवं दिव्य व्यक्तित्व में झाँकने का अवसर मिलता है । मेरी बहिन को पढ़ाने जो पंडित जी आते थे उनके गाँव में एक डकैती के दौरान महिलाओं से बड़ी बदसलूकी की गयी जिसमें एक महिला को काफी शारीरिक कष्ट पहुँचा था, जिसके लिए उस महिला को सिकन्दराबाद के गवर्नमेन्ट अस्पताल में भर्ती करा दिया गया था। इत्तफ़ाक़ से वहाँ डाक्टर ड्यूटी पर नहीं था जिससे महिला की हालत ख़राब होती जा रही थी। उन दिनों सरकारी डाक्टर का बहुत दबदबा होता था। शाम को पंडित जी ने आकर यह सारा किस्सा गुरुदेव को बताया तो गुरुदेव इतने भावविह्वल हुए कि फ़ौरन ताँगा मँगवाकर पंडित जी को साथ लेकर सरकारी अस्पताल से मरीज़ को अपने साथ ले आये और घर पर रखकर इलाज शुरू कर दिया।

अगले रोज़ सरकारी डाक्टर के आने पर किस्सा पता लगा। उसने इसको अपना अपमान समझा और पुलिस को लेकर हमारे घर चले आये। गुरुदेव पर अभियोग था कि वो बिना आज्ञा मरीज़ को लेकर चले आये हैं। गुरुदेव उस समय खाना खा रहे थे, मैंने जब उन्हें इस बात की इत्तला दी तो भी वे बड़े इत्मीनान से खाना खाते रहे, कोई घबराहट या आक्रोश उनके चेहरे पर नहीं था। खाना खाने के बाद उन्होंने मुझसे बन्दूक मँगवाई और बन्दूक थामकर थानेदार से बातचीत की। काफ़ी देर तक काफ़ी ऊँचे स्वर में बातचीत की आवाज़ें सुनाई देती रहीं। फिर गुरुदेव ने थानेदार तथा डाक्टर को मरीज़ की पीड़ा तथा डाक्टर की duty (कर्तव्य) का भान कराया। डाक्टर ने महसूस किया कि मानवता के नाते गुरुदेव ने जो किया वह ठीक किया है । थानेदार भी लज्जित होकर चला गया ।

तो यह हैं हमारे गुरुदेव के बुलन्द हौसले के परिचय और पीड़ितों के लिए हमदर्दी के जज़्बे की मिसालें। कौन है आज के ज़माने में ऐसी निःस्वार्थ हमदर्दी रखने वाला कि अपनी जान तथा आजीविका पर ख़तरा मोल लेकर सेवा करे? वाकई महापुरुषों का तो जीवन ही अपनाने योग्य होता है । सचमुच शब्दों के मायाजाल में कुछ नहीं है, न गीता पढ़ने के लाभ है, न क़ुरान पढ़ने का। हमारे लिए तो गुरुदेव के जीवन को हूबहू अमल में लाने की ज़रूरत है । उनका बताया रास्ता ही गीता है,क़ुरान है ।

गुरुदेव सबका भला करें ।

. **मेरे प्रातः स्मरणीय गुरुदेव का जल्वा**

और उनकी कुछ झलकियाँ

- श्रीमान हेमराज चतुर्वेदी, दिल्ली

तेरे हुस्न जैसी नकहतन हुई, न है, न होगी !

मुझे ग़ैर की ज़रूरत, न हुई, न है, न होगी !!

जिस अंजुमन में नहीं तू, जिस बज़्म में नहीं तू ।

शमा रौशन है पा मगर मेरे लिए बेनूर है ॥

वैसे तो अपने सिलसिले के बुज़ुर्ग करामात या चमत्कार दिखाना अच्छा नहीं मानते पर मलामती प्रकार का सिलसिला होने के कारण देखा गया है कि गुरुजन शिष्य के कल्याण के लये तथा श्रद्धा-विश्वास को दृढ़ करने के लिए कभी-कभी ऐसे जलवे दिखा देते हैं या उनके कार्य से अकस्मात ही ऐसी घटना घट जाती है, जो बड़ी विचित्र लगती है । उसे देखकर जन-साधारण क्या, अच्छे-अच्छे सत्संगी भी प्रभावित हो जाते हैं। साधना में भी उनको लाभ होता है ।

हमारे गुरुदेव के जीवन की भी यहाँ-वहाँ, प्रायः सभी के साथ हुई ऐसी अनेक घटनायें हैं जो सत्संगी भाइयों ने स्वयं देखी हैं, वे ही घटनायें उनके जीवन का धन, सर्वस्व, अमूल्य यादगार हैं जो समय-समय पर बल देती हैं। उन्हीं मधुर स्मृतियों में से कुछ नीचे लिखी जा रही हैं :-

जिन दिनों पूज्य गुरुदेव ग़ाज़ियाबाद के सत्संग भवन में निवास करते थे । मैं श्रद्धेय श्री मुख्त्यार साहब (श्री सेवती प्रसाद जी) के साथ अक्सर वहाँ जाया करता था। वहाँ से मैं व्यापार कार्य के लिए श्यामली, बड़ौत को चला जाया करता था। गुरुदेव हँसी-हँसी में कहा करते थे - "तुम कोई मुझसे मिलने थोड़े ही आते हो।" इस बार में कासगंज में था। मेरी बहुत प्रबल इच्छा बनी, गुरुदेव के दर्शनों की हुई। श्री मुख्त्यार साहब किसी कारण-वश वहाँ न जा सके।

मुझे अकेले ही जाना पड़ा। मुझे अकेले देखकर गुरु महाराज बड़े प्रसन्न हुए। कहने लगे, " मैं कई दिन से तुम्हें याद कर रहा था। अच्छा हुआ तुम आ गए।" मैंने कहा कि, " मैं तीन-चार दिन यहीं रुकूँगा।" मुझे अन्यत्र नहीं जाना है ।।" बोले, "बहुत ख़ुशी की बात है ।"

स्नान के उपरान्त गुरुदेव के साथ भोजन किया, फिर दो घंटे विश्राम किया। शाम को जब गुरुदेव के साथ बैठा

कहने लगे, "डॉ०श्याम लाल जी से भी मिलते हो?" मैंने निवेदन किया कि जब मैं यहाँ आ रहा था तो उन्हें नहीं देख पाया। तभी उन्होंने पीछे से आवाज़ दी - " चौबे जी, वगैर मिले ही निकल जाते हो ?।" मैंने पीछे मुड़कर देखा और उनके पैर छुए। उन्होंने मुझे सीने से लगा लिया। कहने लगे - "भाई साहब को पकड़े रहना, ये समय के बहुत बड़े फ़क़ीर हैं। वो सब बड़े भाग्यवान हैं जिन पर इनकी विशेष कृपा है ।' यह बात सुनकर गुरुदेव की आँखों में आँसू झलक आये, कहने लगे - "चौबे जी डॉ०श्याम लाल बहुत अच्छे आदमी हैं, समय की बात है ।" कहकर चुप हो गए।

मैं वहाँ एक दिन ही रहा हूँगा कि दूसरे दिन कोई सज्जन कासगंज से वहाँ आये और कहने लगे कि - " चौबे जी, मेरे साथ कासगंज चलिए, कार से आये हैं, आराम से पहुँच जायेंगे। मुझे भी आपके साथ आनन्द आएगा।" मैं उनकी बातों से इतना प्रभावित हुआ कि तीन-चार दिनों का विचार रखते हुए भी कासगंज जाने को तैयार हो गया। मैने गुरुदेव से जाकर निवेदन किया कि मुझे कासगंज जाना है । फ़रमाया - " ऐसी जल्दी क्या है ? आपका तो कई दिन का प्रोग्राम था। " मैंने कोई झूँठा बहाना गढ़कर जाने की पुष्टि की। गुरुदेव समझ गए, हँसने लगे। कहा - " जाना है तो जाओ भाई ! जाने वाले को कौन रोक सकता है?" मैंने जेब से कुछ भेंट निकाली और श्री चरणों में रखी, कहने लगे इसकी का ज़रूरत है । मैंने लेने के लिए फिर आग्रह किया, कहने लगे जब जाओगे तब ले लूँगा। मैं कुछ समझ नहीं सका, मैंने निवेदन किया कि मैं तो अभी जा रहा हूँ। मुझे स्मरण नहीं, कोई बहिन वहाँ रह रहीं थीं, उनको देने के लिए कह दिया और कहा कि जब तुम जाओगे तो इनसे ले लेंगे। मैंने चरण स्पर्श किये और विदा लेकर फटाफट दोनों कार में बैठ गए। किन्तु ।।।।। " मेरे मन कछु और है, कर्त्ता के कछु और "

अभी ग़ाज़ियाबाद के बाहर पहुँचे ही थे कि तीन-चार मील बाद इतनी ज़ोर से फटाका हुआ, पता चला कि गाड़ी के दोनों टायर पंचर हो गए। वहाँ खड़े-खड़े एक घंटा, दो घंटे, चार घंटे

बीत गए। अब समय अधिक हो गया। न कोई सवारी वाला रोकता न पंचर जुड़वाने की कोई व्यवस्था हुई। यकायक स्मरण हुआ कि ये जो हुआ सो होना ही था। गुरुदेव ने मना किया था, उसी का परिणाम है ।

मैंने लाला से कहा कि अब मैं नहीं रुकूँगा, मुझे वापिस ग़ाज़ियाबाद जाना है । उसी समय एक कार वाला आया, उसने मेरे हाथ उठाते ही मुझे तुरन्त बैठा लिया। मैं लगभग 9 बजे नीची गर्दन किये वापिस पहुँचा। गुरुदेव देखकर मुस्कराने लगे। -" तुम आ गए।" मैं फूट-फूटकर रोने लगा - चरण पकड़ लिए और क्षमा के लिए प्रार्थना करने लगा। उन्होंने सर पर हाथ फेरते हुए कहा - " भाई, यह मन बड़ा धोखेबाज़ है । मिनिट-मिनट में कलाबाज़ी कर जाता है । जाओ, सामान रख कर निबट लो, खाना तैयार है । "

मैं रात्रि में उन्हीं के पास लेटा। बहुत सी मज़ेदार बातें होती रहीं। मैंने विचार कर लिया था कि अब स्वयं कासगंज जाने की बात नहीं करूँगा। रात्रि में सत्संग के बाद गुरुदेव कहने लगे - "चौबे जी, कासगंज जाइये, वहाँ आपका इन्तज़ार हो रहा होगा।" मैंने निवेदन किया, जैसी आज्ञा। मुझे सुबह आठ बजे की ट्रेन से हाथरस होते हुए कासगंज जाना था। प्रभात में शीघ्र उठकर शौचादि से निवृत होकर सत्संग के लिए बैठ गया। उस दिन गुरुदेव साढ़े आठ बजे तक सत्संग लेते रहे। गाड़ी आठ बजे आती थी। मैं पहले की घटना स्मरण कर चुपचाप बैठा रहा। थोड़ी देर बाद गुरुदेव ने फ़रमाया - " भाई, कासगंज जाना है, समय हो गया।।" फटाफट नाश्ता आ गया, कोई भाई रिक्शा लेने चले गए, इतने में नौ बज गए थे, गाड़ी कैसे मिलेगी, बार-बार विचार आता, लेकिन चुप था।

जब चलने लगा तो पैर छुए, कहने लगे - " अब लाओ, मेरी भेंट।" मैंने बहन से कहा, वे तुरन्त ले आयीं। मैंने श्री-चरणों में अर्पण की। मुस्करा कर कहने लगे - " अब भेंट स्वीकार करूँगा। जल्दी जाइये।" मैं शीघ्र रिक्शा में बैठ गया। जल्दी करता जा रहा था। स्टेशन के समीप पहुँच कर देखा तो ट्रेन आ रही थी, मैंने रिक्शेवाले को बैठे-बैठे ही पैसे दिए। रुकते ही दौड़ लगाई। टिकिट का कॉउंटर खाली पड़ा था। जैसे ही पहुँचा बाबू कहने लगा कि " हाथरस जंक्शन का टिकिट चाहिए ?" जैसे पहले ही से तैयार बैठा था। फटाफट टिकिट लेकर दौड़ा । गाड़ी रेंगने लगी थी। मैं सामने के खुले गेट से अन्दर घुस गया। गाड़ी तेज़ चलने लगी। ऐसा लगा कि

गुरुदेव सामने खड़े मुस्करा रहे हैं। मैं पास की सीट पर चुपचाप बैठ गया। बड़ा ही आनन्द आया और इसी मस्ती के आलम में डूबा रहा। पता नहीं कब हाथरस आ गया।

ऐसा था हमारे गुरुदेव का ज़ल्वा और यह थी उस ज़ल्वे की एक झलक !!

" प्रबल प्रेम के कारण हमने, प्रभु को नियम बदलते देखा "

सद्गुरु दयाल परम पूज्य प्रातः स्मरणीय गुरुदेव महाराज के जीवन में भी ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है जबकि वे प्रेम के वशीभूत होकर अपने प्रियजनों के कल्याण हेतु सभी नियम तोड़ देते थे । श्रद्धेय मुख्त्यार साहब (श्री सेवती प्रसाद जी, कासगंज) गुरुदेव के बड़े चहेते थे । गुरु भाई होते हुए भी उनकी समस्त आध्यात्मिक शिक्षा उनके द्वारा ही पूर्ण हुई थी - पूज्य मुख्त्यार साहब भी उन्हें बहुत प्यार देते थे, गुरुवत सम्मान देते, यहाँ तक कि उन्होंने अपने कई शिष्यों को गुरु महाराज के हाथों बैत करा दिया जिन्हें उन्हें अपने गुरु महाराज परम पूज्य लाला जी महाराज को समर्पित करना था - प्रेम का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है? इन्हीं दोनों गुरु भाइयों से सम्बन्धित यह घटना है ।

जिन दिनों श्रद्धेय मुख्त्यार साहब कासगंज तहसील में मुख्त्यारी का कार्य करते थे, एक बार वहाँ का कारोबार ठप सा हो गया था। अधिकाँश वक़ील तथा मुख्त्यार बेकार से हो गए थे । पूज्य मुख्त्यार साहब के पास एक गांव के दो भाई आया करते थे । वे हमशक्ल थे, कभी-कभी उन्हें पहचानना भी दुर्लभ हो जाता। उन दिनों उनका आपस में एक ज़मीन को लेकर मुक़दमा चल रहा था। इस अवसर का पूर्ण लाभ उठाकर, जब आपके तख़्त पर कोर्ट में काम-काज बन्द होने के कारण ख़ाली बैठे वक़ीलों की हंसी -मज़ाक की महफ़िल जमी थी, वह आया और अपने भाई के कुछ झूँठे दस्तावेज़ों (कागज़ात) की शिनाख़्त आप से करा ले गया। उन्होंने उस पर विश्वास करके बिना पूरी जाँच किये हस्ताक्षर कर दिए।

होनहार बलवान होती है, इसी आधार पर वह मुक़दमा जीत गया। जब उसके दूसरे भाई को यह ज्ञात हुआ तो उसने रुष्ट होकर चार सौ बीस (धोखाधड़ी) का केस पूज्य मुख्त्यार साहब पर कर दिया। तहसील तथा तहसीलदार पर इनका प्रभाव होने पर भी, पक्का सबूत होने के कारण कुछ न हो सका - कैद (सज़ा) हो गयी सारी कचहरी में त्राहि-त्राहि मच गयी क्योंकि पूज्य

मुख्त्यार साहब की ईमानदारी की वहाँ बड़ी धाक थी, सभी इन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे । कुछ नहीं किया जा सकता था। अन्त में, सोच-विचार कर एटा में सैशन जज के यहाँ अपील कर दी गयी। सभी वक़ीलों का यही मत था कि केस में दम नहीं है, पक्का सबूत है, फिर भी राम-राम लेकर प्रयत्न करते हैं।

कई मास मुक़दमा चला, काफी भाग-दौड़ की गयी, अन्त में वह दिन आ गया जिस दिन निर्णय सुनाया जाने वाला था। परम् पूज्य गुरुदेव बड़े ही चिन्तित रहते थे । उन्होंने मुख्त्यार साहब से कहा कि, " भाई, मुक़दमा तो गम्भीर है ही, इसमें दो मत नहीं, लेकिन जब निर्णय सुनाया जाये उसकी सूचना मुझको अवश्य दे देना। गुरु महाराज सब भली करेंगें।" उनका इतना ही कहना पर्याप्त था, तदनुसार उन्हें सूचना दे दी गयी। वे सिकन्दराबाद से किसी के साथ सेक्रेटरी महोदय (जो उस समय एटा मुनिस्पैल्टी में सेक्रेटरी थे) के निवास स्थान पर रात्रि में ही पहुँच गए थे ।

दूसरे दिन मुकदमें की तारीख़ थी, कासगंज पूज्य मुख्त्यार साहब, वैद्य भगवती प्रसाद जी, रमेश बाबू और मैं, चारों ही सदस्य सैशन जज के कोर्ट में पहुँच गए। परम पूज्य गुरुदेव वहाँ पहले से विराजमान थे । उन्हें देखकर सारा वातावरण ही बदल गया। एक नवीन चेतना सी सबमें दौड़ गयी। अब ऐसा लगने लगा कि जो होगा अच्छा ही होगा।

एक विशाल कक्ष, ऊपर चबूतरे जैसे स्थान पर श्रीमान जज महोदय के बैठने का स्थान, आस-पास उनके सहयोगी कार्यकर्त्ता, चबूतरे के नीचे एक बड़ी सी टेबिल पड़ी थी जिसके आस-पास लगभग पन्द्रह-बीस कुर्सियाँ पड़ीं थीं, वकील तथा उनके ग्राहक (मुवक्किल) उन्हीं पर बैठे थे । परम् पूज्य गुरुदेव भी वहीं एक कुर्सी पर अपनी छड़ी की मूँठ पर दोनों हाथ रखकर एक कुर्सी पर विराजमान हो गए, आँखें खुली हुई होते हुए भी ध्यानमग्न हो गए। मुख्त्यार साहब, भगवती प्रसाद जी, पास ही दीवाल के सहारे पड़ी बैंच पर आसीन हो गए। मैं भी एक खाली कुर्सी पर जो गुरुदेव के समीप ही पड़ी थी, बैठ गया।

जज साहब (चिश्ती ख़ानदान से संबन्धित थे, उनकी ज़िले भर में न्यायप्रियता की धाक थी) जब पधारे तो सभी लोग उठकर खड़े हो गए। मुख्त्यार साहब के वकील साहब ने आकर कहा कि आपका मुकदमा ही प्रथम नम्बर पर है, तैयार रहें। आवाज़ लगी -'सेवती प्रसाद बनाम

स्टेट' । भाई जी उठकर जल्दी से ऊपर जज साहब के पास कटघरा सा था, उसमें खड़े हो गए। पेशकार ने फ़ाइलें निकालकर जज महोदय के सम्मुख रखीं, वे निर्णय घर से ही लिख कर लाये थे । निर्णय सुनाने से पूर्व उन्होंने पूज्य मुख्त्यार साहब के चेहरे पर दृष्टि डाली फिर फ़ाइल पर। ऐसा तीन-चार बार किया। उनके इस आचरण से सभी लोग आश्चर्यचकित थे, अन्त में जो निर्णय लाये थे, फाड़ डाला - एक नवीन कागज़ लेकर लिखने लगे। फिर भी कई बार लिखा, फिर फाड़ा। अन्त में अपना बायां हाथ मस्तक पर रखकर, सीधे हाथ में जिसमें क़लम पकड़ रखा था, उसका निब तोड़कर ज़बानी ही निर्णय सुनाया - ' आपको बाइज़्ज़त बरी किया जाता है ' - यह कहकर अपने कक्ष में चले गए।

कोर्ट में सन्नाटा छा गया, सभी वकील आश्चर्यचकित थे, उनके इस आचरण से। उससे भी अधिक आश्चर्य इस बात का था कि जज साहब ने यह फैसला 'बाइज़्ज़त बरी' कैसे कर दिया जबकि इतना बड़ा दस्तावेज़ी सबूत उनके खिलाफ़ था। उन बिचारों को क्या ज्ञात था, यह सब कराने का सूत्रधार कोई और ही है, जो लगातार जज महोदय को देखे जा रहा था। निर्णय सुनने के बाद गुरुदेव फ़ौरन ही कक्ष के बाहर बरामदे से होते हुए कोर्ट की चार दीवारी के समीप घूमने लगे, सबके एकत्रित होने पर गुरुदेव शीघ्र ही सेक्रेटरी महोदय के निवास,जहाँ वे ठहरे हुए थे, प्रस्थान कर गए।

ऐसे थे मेरे मौला हज़ूर और उनका जल्वा ।

Oooooooooooo

तुम करो दया मेरे साईं

तुम करो दया मेरे साईं !!-!!

पानी परवा पीसो संत आगे, गुण गोबिन्द जस गायी !! तुम !!!!!

ऐसी मति दीजै मेरे ठाकुर, सदा-सदा तुध ध्यायीं !

स्वांस-स्वांस मन नाम सुमरिये, एह बिसराम निधि पाई ! तुम !!!!

तुम्हरी कृपा ते मोह मान छूटे, बिनस जाये भर माई !

आनन्द रूप रव्यो सब मध्ये, जत कत पेखउ जाई !! तुम !!!!

तुम दयाल कृपाल कृपानिधि पतित पावन गोसाईं !

कोट सुख आनन्द राज पाये, मुख से निमख बुलाई !! तुम !!!!

जाप ताप भगति सा पूरी, जो प्रभु के मन भाई !

नाम जपत तृष्णा सब बूझि है, 'नानक ' त्रपत अढ़ाई !! तुम !!!!

उन दयानिधान की दया

क्या-क्या जल्वा नहीं दिखा सकती

- डा० शक्ति कुमार सक्सेन, ग़ाज़ियाबाद

मैडीकल कॉलेज में प्रवेश

मेरे पिता जी (पू.श्री कृष्णा सहाय जी) गुरु महाराज की सेवा में जाया करते थे । इसी नाते सन 1966 में मुझे भी उनकी शरण में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन दिनों में डाक्टरी पढ़ने का इच्छुक था। कई मैडीकल कॉलिजों में प्रवेश पाने के लिए प्रार्थना पत्र दिए, वहाँ से साक्षात्कार के लिए पत्र भी आये परन्तु किसी न किसी बहाने से मुझे प्रवेश नहीं मिला। मेरे पिताजी भी परेशान थे और जब उन्होंने यह परिस्थिति देखी तो बोले कि अब अगर इस दुनियाँ में कोई मदद कर सकते हैं तो वे हैं केवल हमारे गुरु महाराज। मुझसे कहने लगे कि कल तुम मेरे साथ सिकन्दराबाद चलो। उनकी कृपा से शायद कुछ काम बन जाये।

अगले दिन सिकन्दराबाद पहुँचने पर पहले तो गुरुदेव ने कुछ देर पूजा पर बिठाया, जैसा कि उनका सबके साथ नियम था, फिर पिताजी से घर के सब लोगों की कुशल पूछी, किन्तु असल बात यानी मेरे मैडीकल कॉलेज के प्रवेश के बारे में न तो गुरुदेव ने ही पूछा और न मेरे पिताजी ने ही कुछ निवेदन किया। शाम को पिताजी ने दिल्ली वापिस जाने की आज्ञा माँगी और चलते समय जब चरण छूने लगे तो गुरुदेव पिताजी से बोले ***- " बाबू साहब, गुरु के पास जो भी शिष्य सच्ची श्रद्धा से जो भी इच्छा लेकर आता है वह ज़रूर पूरी होती है ।"*** उस समय मैं उनकी इस बात का मतलब नहीं समझा।

गुरु महाराज का द्वार छोड़कर बाहर निकलते ही मेरे पिताजी ने कहा - " अब तुम्हारा दाख़िला हो गया, गुरु महाराज ने आशीर्वाद दे दिया।" अगले दिन मौलाना आज़ाद मैडीकल कॉलिज, दिल्ली, से (जिस कॉलिज में प्रवेश की बात मैं कभी सोच भी नहीं सकता था) मेरे लिए प्रवेश पत्र आज्ञा और मुझे डाक्टरी में प्रवेश मिल गया। मैडीकल कॉलेज की पढ़ाई के अन्तिम चरण में बंगलादेश की लड़ाई शुरू हो गयी और अपने कॉलिज में से मुझे वहाँ सेवा कार्य के लिए भेज दिया गया। इस लड़ाई के बाद मुझे सेना में मैडीकल कोर में कमीशन मिल गया।

जीवन दान

एक घटना सन 1978 की है । मैं तब सेना में मेजर के पद पर था। हमारी यूनिट मध्य प्रदेश में रीवाँ के निकट अभ्यास कर रही थी। एक रात को हमारी यूनिट एक स्थान से दूसरे स्थान को जा रही थी। हमें रात ही रात में एक स्थान से दूसरे स्थान पर, जो काफ़ी दूर था, पहुँचना था। हमारी सारी यूनिट एक कनवॉय (क़ाफ़िला) के रूप में सेना की मोटरों में सवार होकर जा रही थी। मेरी गाड़ी और गाड़ियों से अलग थी जिसमें ड्राइवर की साथ वाली सीट पर मैं बैठा हुआ था। रात काफ़ी बीत चुकी थी और मैं सीट पर बैठा ही बैठा सो गया।

अकस्मात ही मुझे गुरुदेव के स्वर में आवाज़ सुनाई दी " हे राम " और मैं एकदम चौंक कर उठा कि इस समय और इस एकान्त जगह में गुरु महाराज की आवाज़ कैसे ? देखा तो गाड़ी का चालक भी गहरी नींद में स्टीयरिंग (वह पहिया जिसे पकड़ कर ड्राइवर गाड़ी चलाता है) पर सिर रख कर सो गया था। गाड़ी सड़क से नीचे उतर चुकी थी, सामने के नाले में गिरने वाली थी। मैने एकदम चालक को हिलाकर जगाया और गाड़ी रुकवाई। उस समय मन ही मन में गुरुदेव की याद करके रोने लगा कि सोते में भी जबकि मैं उनकी याद से गाफ़िल था उन्होंने ऐसी अपार कृपा की, मेरी और गाड़ी में सवार सैनिकों की जान बचायी और एक बड़ा भारी संकट टाल दिया।

सचमुच गुरु सदा अपने शिष्य की रक्षा करता है और हर समय परछाई की तरह चारों और छाया रहता है ।

Oooooooooo

पूज्य गुरुदेव की डाक्टरी शिक्षा के लिए एक चमत्कारी घटना

पूज्य गुरुदेव (परम पूज्य डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) परमपूज्य लालाजी के सम्पर्क में फतेहगढ़ में थे ही, उनके पूछने पर आपने बताया कि मैं तो डाक्टर बनना चाहता रहा पर अब दाख़िला नहीं हो सकता क्योंकि मेरी आयु नियत आयु सीमा से दो वर्ष अधिक हो गयी है । परम पूज्य महात्मा जी ने कहा- " आगरा के मैडिकल कॉलेज में पढ़ने की अर्ज़ी (याचिका) तुरन्त भेज दो - आयु सच-सच है लिखना, ईश्वर में विश्वास रखो।"

दाख़िले का याचना -पत्र भेज दिया। साथी लड़कों ने हँसी उड़ाई। श्रीकृष्ण जी शरीर से लम्बे, हृष्ट-पुष्ट, फुर्तीले, आकर्षक व्यक्तित्व के थे -जनरल कॉलेज में अग्रिम रहते थे । आगरे में सिलेक्शन कमेटी के चेयरमैन अँग्रेज़ सिविलसर्जन थे । सभी तीन मेम्बरों ने प्रत्याशी श्रीकृष्ण से प्रश्नों के उत्तर प्रभावी पाए। सिलेक्ट कर लिया। 'बायोडाटा ' की लिस्ट देखी तो सिविल सर्जन चेयरमैन ने एस।एल।सी। का असली प्रमाण पत्र माँगा, यह देखकर दंग रह गया कि आयु सीमा-परिधि से दो वर्ष अधिक है । बोला - " You, Shrikrishna! - in my assessment your date of birth so shown is wrongl I find you two years younger I" (श्रीकृष्ण, मेरे निष्कर्ष में तुम्हारा जन्म वर्ष ग़लत लिखा है, मैं तुम्हें इस सर्टिफिकेट में लिखे हुए के प्रतिकूल दो वर्ष छोटा पाता हूँ।) और उसी प्राकृतिक प्रभावित आवेश में उन सिविल सर्जन साहब ने जन्म वर्ष काट कर दो वर्ष कम लिख दिया। कटिंग भी सत्यापित कर दी। तदानुसार बायोडाटा लिस्ट भी अपने हस्ताक्षरों से ही ठीक कर दी। फलतः मैडीकल कॉलेज में प्रवेश हो गया। डाक्टरी पास की, डाक्टर बने।

oooooooooooo

गुरु की वाणी - भविष्यवाणी

- श्री नन्द प्रसाद श्रीवास्तव, मुज़फ़्फ़रपुर

गुरु की अमृत वाणी में भरी भविष्वाणी कभी भी असत्य नहीं हो सकती। असम्भव, सम्भव हो जाता है ।एक घटना परम पूज्य गुरुदेव, निर्वाण-प्राप्त पूज्य महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के समय की है । गुरुदेव की भविष्यवाणी गलत नहीं हुई।

सेवक उस समय मऊ जंक्शन में गार्ड था, सहायक स्टेशन मास्टर ग्रेड का सिलेक्शन होने वाला था।इसी नियत से पूज्य गुरुदेव, जो उस वक्त ग़ाज़ियाबाद ही रहते थे, को मिलने गया। उनके पास तीन रोज़ तक हमेशा साथ रहा लेकिन हिम्मत नहीं हुई कि कुछ कहूँ। अन्तिम दिन उन्होंने कहा कि " नन्द जी, चलो दिल्ली। वहाँ कट्टो दीदी (उनकी एक पुत्रीवत विधवा जो अस्पताल में भर्ती थीं।) से मिलकर चले जाना ।"

जब सिकन्दराबाद से बस चली तो मुझसे कहने लगे कि, " नन्द जी, तुम ए। एस। एम। बन जाना चाहते हो क्या ? देखो मन बड़ा शैतान है, इधर-उधर दौड़ता रहता है । हाँ, प्रयास करना चाहिए। मिल जाता है तो वाह-वाह नहीं मिलता है तो वाह-वाह।" मुझे आश्चर्य हुआ कि बिना कहे ये कैसे जान गए, सो मैं सावधान हो गया। मैंने कहा- 'आपकी जैसी कृपा।' फिर इधर-उधर की बात शिक्षा के रूप में शुरू हुई। दिल्ली पहुँच कर बहन जी का अस्पताल में दर्शन किया और आज्ञा पाकर गाड़ी पकड़कर मऊ के लिए प्रस्थान किया।

आश्चर्य ये था कि मेरा सिलेक्शन हुआ और मेरा पहला नम्बर था। किसी वजह से मेरा केस गोरखपुर से दिल्ली रेलवे बोर्ड भेज दिया गया था। पता लगा दो ग्रेड मिलने का सवाल था। समय काफी गुज़र गया। मैंने अपील की लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई । बैठ गया । परम पूज्य गुरुदेव उस वक्त गोरखपुर में थे । सत्संग का भवन बन रहा था। यह घटना सिलेक्शन से तीन साल के बाद की है । वे ओसारे में बैठे हुए थे और मैं कुछ दूर सड़क पर टहल रहा था। वे नन्द जी कहकर पुकारने लगे। मैं दौड़ कर पास गया और हुक्म हुआ कि, " बैठ जाओ"। फिर कहने लगे कि, " नन्द जी, तुम ए।एस।एम। में चले जाते तो अच्छा होता ।"

मैंने कहा कि अब मेरे सिलेक्शन को तीन साल हो गए और दो ही साल में पैनल रद्द हो जाता है ।" सुनकर वे खामोश हो गए ।

गोरखपुर पू. गुरुदेव के साथ मैं 15 दिन छुट्टी लेकर रहा । कुछ काम में हाथ बटा देता था । छुट्टी खत्म होने पर मैं लौटकर समस्तीपुर चला आया । पूज्य गुरुदेव 15 दिन बाद बनारस चले गए। कृपा देखिये, इसी वक्त वहाँ के सत्संगी भाइयों ने, जो रेलवे में काम करते थे, पू.गुरुदेव से आकर कहा कि नन्द जी की पोस्टिंग ए।एस।एम। में हो गयी है । चिठ्ठी आ गयी है । उन लोगों ने यह भी कहा कि ए।एस।एम। की नौकरी अच्छी नहीं है । एक पैर जेल में रहता है । सुनकर पू.गुरुदेव जी ने कहा कि नन्द जी ये काम कर लेगा। यह उनकी कृपा थी - आदेश पत्र का मज़मून यह था- ' Nand PI Guard promoted as AISIMI special and posted in his parent district reverting junior most AISIMI " " इस पत्र से यही ज़ाहिर होता है कि जगह न रहने पर भी जूनियर मोस्ट ए।एस।एम। को रिवर्ट कर पोस्ट कर दें। चूँकि मेरी अपनी ख़ुशी से बनारस से होम डिस्ट्रिक्ट समस्तीपुर बदली की गयी थी अतः वह चिठ्ठी समस्तीपुर भेज दी गयी।

खबर पाकर पूज्य गुरुदेव से मिलने सिकन्दराबाद गया। हुक्म हुआ, " You must join without faill" (अर्थात नौकरी पर फौरन जाओ") फिर पूछने लगे कि क्या नफा नुकसान है । इस वक्त 100 रु. माहवारी का नुकसान था। रेलवे पास फर्स्ट क्लास से सेकेण्ड क्लास हो जायेगा। उनका हुक्म हुआ - " शुरू में हानि का ख्याल मत करो, फर्स्ट क्लास भी हो जायेगा और स्टेशन मास्टर तो हो ही जाओगे ।"

समस्तीपुर लौट आया और ऑफर मिलने पर दिनांक 7-1-1966 को ए. एस. एम. पद पर ज्वाइन कर लिया । जब कुछ समय बाद सीनियरटी निकली तो मेरी पोजीशन 106 थी । देखकर सोचने लगा कि हायर ग्रेड में तो जगह कम होती हैं । अब तो फँस गया, इस जन्म में तो नम्बर ही नहीं आएगा । फिर साथ ही साथ सोचने लगा कि पूज्य गुरुदेव की अमृत वाणी असत्य नहीं हो सकती । काम तो करना था। अब उनकी कृपा देखें ।

उन्हीं दिनों गोरखपुर से एक आदेश निकला कि हमारे ग्रेड के जंक्शन के ए. एस. एम. रोड साइड के स्टेशन मास्टर होना चाहें तो आवेदन दें। लालच में बहुतेरे मुझसे सीनियर जाने के

लिए लिखकर दे दिए। अब नेरा नम्बर 38 पर आ गया। मुझे हायर ग्रेड के लिए परीक्षा में बैठने का मौक़ा मिल गया। इस परीक्षा में मेरा नम्बर 10 था और ऐसा हुआ कि पोज़िशन भी 10 ही रह गयीं। कृपा देखें, फिर रेलवे बोर्ड से खबर आ गयी कि सोनपुर एक नया डिवीज़न, समस्तीपुर में से काट कर बनेगा । मुज़्ज़फरपुर स्टेशन सोनपुर मण्डल में चला गया। उस स्टेशन पर मुझसे आठ वरिष्ठ लोग वहीं काम कर रहे थे । अतः वे लोग सोनपुर मण्डल में चले गए । अब मेरी पोज़िशन दूसरी हो गयी। उनकी कृपा से मैं स्टेशन मास्टर भी हो गया तथा फिर स्टेशन अधीक्षक की पदोन्नति भी हो गयी ।

ऐसी एक क्या कितनी ही घटनाएँ हुईं जिनमें यही बात सिद्ध होती रही कि गुरु की हर बात में कोई न कोई मस्लेहत रहती है, बड़ी सच्चाई होती है ।

oooooo

सुधा बिन्दु

- *जो आदमी अपने आप पर विजय प्राप्त कर लेता है वह सबसे बड़ा सूरमा है ।*

- *जितना मन शुद्ध होगा उतनी ही बुद्धि शुद्ध होगी और वैसे-वैसे सच्चा ज्ञान प्राप्त होता जायेगा ।*

- *तर्क-वितर्क करने वाले मनष्य को झूँठा अभिमान अपनी जानकारी का हो जाता है ।*

- *ज्ञानी सबमें अपने प्रीतम के दर्शन करता है । जीवन का असली ध्येय यही है ।*

- *उपासना, भक्ति और प्रेम - यह माया पर विजय पाने के साधन हैं।*

- *सतगुरु की सहायता के बिना किसी की ताक़त नहीं जो मन को जीत सके।*

- *एक न एक दिन सतगुरु की दया से तुम मालिक के दरबार में प्रवेश पा जाओगे। जहाँ प्रेम ही प्रेम है ।*

- *वैराग्य सत्संग से पैदा होता है और आत्मा को शक्ति मिलती है । सत्संग से मन का मैल धुलता है ।*

मेरे बादशाहों के बादशाह की अनुकम्पा से जीवन को दिशाबोध

- श्री उमाकान्त प्रसाद, पटना

भाग्योदय की पुनीत वेला

जीवन की खिड़की से जब एक ओर जवानी झाँक ही रही थी तो दूसरी और 'स्व ' और अपने सच्चे परम् हितेषी स्वामी की खोज की आतुरता और छटपटाहट बढ़ती ही जा रही थी। शायद पूर्वजन्मों के कर्मफल अथवा पैतृक संस्कारों से संचालित होकर मैं अनेक दार्शनिक एवं ज्ञानी महापुरुषों का साहित्य टटोलता रहा किन्तु कहीं प्यास नहीं बुझी। अन्ततः पांडिचेरी के योगिराज स्वनाम धन्य श्री अरविन्द घोष के आश्रम की दैवी विभूति श्री माँ से प्रभावित होकर उनकी शरणागति प्राप्त हुई। उसी समय The Mother (श्री माँ) की आत्मिक प्रेरणा से मेरी जन्म-जन्म की साध पूरा कराने के लिए अपने सम्बन्धी श्रद्धेय नन्द जी भाई साहब के माध्यम से प्रातः स्मरणीय गुरु महाराज और सत्संग का परिचय प्राप्त हुआ।

और फिर मेरे जीवन की अत्यन्त सौभाग्यशाली घडी आयी जबकि समग्र सत्ता के प्रवाह से हक़ीक़त और असलियत से वाक़िफ़ कराने हेतु प्रेमाकर्षण के पुंज, एक ईश्वर के सारे गुणों से विभूषित, विलक्षण आभा-तेज, माधुर्य-गाम्भीर्य से परिपूर्ण, शान्त, सरल चित्त वाले, अनुपम प्रेम व्यवहार वाले बादशाहों के बादशाह परमपूज्य गुरुदेव डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के दरबार में इस दासों के दास को दाख़िल और हाज़िर कराकर 29 सितम्बर, 1960, बृहस्पतिवार को 'निस्बत क़ायम' करा ही दी।

उनके अद्भुत, विलक्षण और अलौकिक गुणों, व्यवहार एवं मनमोहक छवि तथा अतिआकर्षक स्वरुप ने अपने सच्चे हितेषी और प्रेमी पिता के पास अपने आपको समर्पित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उनकी पैनी परख और अति सूक्ष्म दृष्टि ने अपनी हृदय विशालता, अति उदारता के साथ-साथ स्पष्टवादिता और असलियत एवं हक़ीक़त का परिचय देकर बताया कि तुम्हारा यहाँ शेयर (share) है और The Mother (Pondicherry के आदेशानुसार यहाँ (सिकन्दराबाद) आये हो। तुम्हें दीक्षा ही दूँगा। उनके अनुपम, अनूठे, असीम,और अलौकिक प्रेम के सामने सृष्टि की सारी चीज़ें फींकी लगने लगीं और दीक्षित होकर

अपना अहोभाग्य मनाने लगा। फिर क्या था, सच्चे पिता, सच्चे हितेषी, परम सन्त सद्गुरु, वक्त-वक्त पर असलियत और हक़ीक़त की झलक एवं आन्तरिक जगत की झाँकी दे देकर अपने असीम, अनूठे प्रेम से परिप्लवित करते रहे, आत्मिक प्रसादी देते रहे, प्रेम पथ का सच्चा पथिक बनने की प्रेरणा देते रहे और छाया की भाँति निगरानी करते हुए मार्ग-दर्शन करते रहे। तब मुझे तुलसीदास की वाणी ***" बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं सन्ता "*** की सत्यता का भान हुआ।

सन 1970 के मई माह तक उनके विलक्षण तेज, मनमोहक सूरत, प्रेमाकर्षण छवि का दीदार और दर्शन होता रहा। निर्वाण प्राप्त के बाद भी मुझे तथा उनके अन्य प्रेमी भाई-बहिनों को अपना परिचय दिया है जिनके आधार पर इसकी पुष्टि हो जाती है कि परम कृपालु, दीन बन्धु, कृपानिधि, करूणानिधि, कृपाधाम, दयासागर, प्रेमसागर, प्रातः बन्दनीय परम सन्त, दयाल देश वासी महात्मा डॉ०श्रीकृष्ण लाल भटनागर बादशाहों के बादशाह थे और हैं भी। स्पष्टतः कारण यही है कि केवल मोक्ष आत्माएं (liberated souls) ही शरीर छोड़ने के बाद भी संतान के उद्धार हेतु उतरती हैं।

इसमें किन्चित मात्र भी शंका नहीं कि जबतक कोई सन्त, औलिया, पीर अपना परिचय स्वयं नहीं देते तब तक उन्हें कोई समझ नहीं पाता। अपवादस्वरूप कोई समझ भी सकते हैं तो केवल पीर, औलिया, ब्रह्म ज्ञानी, सद्गुरु ही जो ईश्वर के सारे गुणों से गुणान्वित और विभूषित हैं। इसमें भी संदेह नहीं कि सच्चे जिज्ञासु भक्त और प्रेमी जो सरल ह्रदय से, दीनता के साथ, निष्कपट होकर बिना परीक्षक या निरीक्षक बने सद्गुरु के पास जाते हैं और ह्रदय की झोली फैलाते हैं तो सन्त-सद्गुरु उन्हें प्रेम से ओत-प्रोत कर देते हैं और अपनी आत्म प्रसादी से मालामाल कर देते हैं। ।

पूज्य गुरुदेव के सानिध्य में रहकर प्रेम-पान करने का सौभाग्य सन 1960 से 1970 मई के प्रारम्भ तक मिला। और प्रेम-पान के क्रम में उनके जिन अलौकिक, अद्भुत और विलक्षण गुणों का इस सेवक को परिचय मिला उनमें से कुछ संस्मृतियों का उल्लेख करना वाँछनीय एवं आवश्यक है जिनसे उनके 'बादशाहों के बादशाह' होने की झलक ही नहीं मिलती बल्कि पुष्टि होती है । सूक्ष्म पराज्ञानलोक में प्रविष्टि रखने वालों ने भी इस सत्यता को स्वीकार किया है ।

गुरु आदेश की अवज्ञा का पश्चाताप

वे प्रेम-पुंज, दीनता, मधुरता, धीरता, निर्भीकता व अनोखे स्नेह की प्रतिमूर्ति थे । उनकी वाणी का मिठास, स्नेहिल विलक्षण व्यवहार और आत्मरती होने की पहचान और समझ, उनके शान्तिमय निवास स्थान पर पहुँचते ही होने लगती थी। वे फ़रमाते थे कि संत की पहचान यह भी है कि यदि बाघ (tiger) भी पास आ जाये तो शान्त होकर बैठ जायेगा। संक्षेप में, उनमें अलौकिक गुणों की खान थी। वे सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान थे ।

सन 1965 के 17 नवम्बर की एक घटना है जो उनकी सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमान होने की झलक देती है तथा उनकी वास्तविकता को प्रगट करती है । नीचे वर्णित घटना से उनके आत्मज्ञानी और आध्यात्मिकता में परिपूर्णता का परिचय मुझे तो मिला ही, परन्तु अन्य जानने वाले साधकों एवं सत्संगी बन्धुओं को भी यदा-कदा मिलता रहा है ।

एम।ए। करने का बाद और लाख प्रयास करने के बाबजूद भी मुझे सरकारी नौकरी प्राप्त नहीं हो रही थी। कुछ जगहों पर नियुक्ति हेतु चुन भी लिया गया, फिर भी मंत्री के हस्तक्षेप से मैं नियुक्त होने से वंचित रह गया। मुझे सूचना मिली कि तारीख 17।11।1965 को गुरुदेव बक्सर पधार रहे हैं। मैं अपने प्रभु के दर्शन हेतु बक्सर स्टेशन पर ही हाज़िर हो गया। फिर वहाँ से पूज्य गुरुदेव एवं अन्य सत्संगी बन्धुओं के साथ मान्यवर गिरिजा भाई साहब के यहाँ पहुँचे।

चाय नाश्ते के बाद गुरुदेव ने मुझसे पूछा कि तुम्हारी नौकरी का क्या हुआ ? जिस समय गुरुदेव ने मुझसे प्रेमरस से सनी मृदु वाणी में यह बात पूछी, उस समय मेरे बहुत से अग्रज सत्संगी मौजूद थे।उनमें पूज्य नन्द जी भाई साहब, पूज्य बंशीधर भाई साहब के साथ अन्य लोग भी थे, किन्तु किसी ने मुझे यह नहीं बताया कि गुरुदेव के आदेश को आँख मुद कर मानना चाहिए। वहाँ पर तर्क की और अपनी इच्छा की कोई गुंजाइश नहीं।

पूज्य गुरुदेव के पूछने पर मैनें जबाब दिया कि, ' प्रायः मेरे सभी साथियों को नौकरी मिल गयी, केवल मुझको ही सतत प्रयास के बाद भी नौकरी नहीं मिली।' इस पर गुरुदेव ने मुस्कराते हुए फ़रमाया - " नौकरी क्या चीज़ है ! किस department (विभाग) में नौकरी चाहते हो ? नौकरी अभी मिलेगी ।" उन्होंने फिर कहा कि - "मैने ही तुमको नौकरी नहीं होने

दी है ।" इस पर मैंने कारण जानने की जिज्ञासा प्रगट की। पूज्य गुरुदेव बोले कि ' worldly bitter experience (सांसारिक कटु अनुभव) के लिए ऐसा किया है । अभी बेकारी की हालत में तुम्हारे सगे-सम्बन्धी तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करते हैं?" इस पर मैंने निवेदन किया कि " माँ का प्रेम तो निःस्वार्थ रहता है । हाँ, और अन्य सभी मुझसे दुःखी और उदासीन रहते हैं।" इस पर पूज्य गुरुदेव बोल पड़े, " इस दुनियाँ में किसी का प्रेम बेग़र्ज़ाना (निःस्वार्थ) नहीं होता है । समय आएगा तुम देख लोगे।" उनकी यह भविष्यवाणी कालान्तर में शत-प्रतिशत सही निकली।

गुरुदेव के पूछने पर कि किस नौकरी में जाना चाहते हो, मैंने विनीत और मर्यादित तथा संयमित प्रांजल भाषा में कहा कि - " मैं बिहार सरकार की नौकरी के लिए केवल 5.2.1964 तक ही eligible (योग्य) हूँ यदि non-gazetted post की सरकारी नौकरी मिल जाएगी तो 31 वर्ष तक बिहार सरकार में gazetted के लिए 3 बार exam। दे सकता हूँ और विश्वास के साथ कहा कि डी।एस।पी। या किसी अन्य राजपत्रित पद पर प्रतिष्ठित हो जाऊँगा।" यहाँ पर मेरा अहँकार झलका। इस पर गुरुदेव बोले कि non-gazetted की नौकरी में कम तनख्वाह मिलेगी। इसमें जाने से क्या फ़ायदा होगा। फिर उन्होंने कहा कि, " मेरी समझ से तुम्हें Lecturership में (प्राध्यापक बनने को) जाना चाहिए। आध्यात्मिकता के लिए यही अच्छा होगा। मेरी समझ से तुम semi-government service में जाओ। तनख्वाह अच्छी मिलेगी। इसे नहीं तो रेलवे में जाओ।" इस पर मैंने फिर अपनी बात पर ज़ोर दिया कि बिहार सरकार में इम्तहान के लिए तीन चान्स तो मिलेंगे और उसमें कही न कहीं कुछ हो जायेगा।" इस पर गुरुदेव ख़ामोश हो गए।

फ़क़ीरों का मिज़ाज़ बहुत नज़ाकत वाला होता है । वे तनिक सी ' ना-नूं ' कभी बर्दाश्त नहीं करते और अपने विचारों को दबा लेते है । मुझमें अहँकार भी विशेष था। अपने घर, ग्राम, जिला और प्रान्त से भी अधिक आसक्ति थी। उस समय फ़क़ीरी राज़ को कुछ न समझा था। फलस्वरूप non-gazetted की एक के बाद एक पाँच नौकरियाँ मिलीं। पर उनके आदेश की अवेहलना और उनके ज्ञान और सूझ को नज़रअन्दाज़ करने का अन्जाम यही हुआ कि मेरी इच्छा के अनुसार उन्होंने नौकरी तो दे दी, पर नौकरी में मैं वैसा नहीं बन सका जैसा कि वे मुझे बनाना चाहते थे । लेकिन इसके पश्चात् वर्षों तक घोर अशान्त रहा। अभी भी नौकरी में

पूरी शान्ति नहीं ही कही जा सकती। अगर उनकी इच्छा के अनुसार प्रोफेसर या अर्ध -सरकारी पद पर चला गया होता तो उनकी प्रसन्नता मिल गई होती और आध्यात्मिकता या दुनिया के लिए दर-दर का भिखारी न बनता। अगर अपने सच्चे पिता की बात मन लेता तो आज आध्यात्मिक क्षेत्र में भी असंतुष्ट नहीं रहता। वे वे सच्चे पिता थे, सच्चे हितेषी थे । अपनी नासमझी तथा अज्ञानता के लिए अब पश्चाताप करता हूँ। भूल और गुस्ताख़ी के लिए रोता हूँ और तड़पता हूँ।पर 'अब पछतावत होत का, जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत'। सच्चाई यह है कि केवल सद्गुरु ही बेहतर जानते हैं कि किसमें क्या भलाई है । संतों की वाणी है :-

"गुरु जो करे सो हितकर जाना ,

गुरु जो कहे सो चितधर माना।!!"

गुरुदेव की सर्वज्ञता का परिचय

बादशाहों के बादशाह की कुछ अपनी ख़ास विशेषतायें होती हैं जिनकी झलक और परख उनकी ही कृपा से किसी सच्चे प्रेमी भक्त को हो सकती है 1965 के भारत-पाक युद्ध में मेरे एक ममेरे भाई। श्री कमलेश प्रसाद वर्मा, Missing in Action (मोर्चे से ग़ायब) घोषित हो चुके थे । देश के प्रायः सभी जाने-माने ज्योतिषियों और पंडितों से उनके पिता (डॉ० राम दयाल प्रसाद) ने सम्पर्क किया । मोटी रक़म खर्च भी हुई। सभी ने लड़के को जीवित बताया। सभी ने एक ही तरह की बात बताई कि डॉ०प्रसाद को पुत्र शोक नहीं है । परिवार का चिन्ताग्रस्त कारुणिक और ह्रदय विदारक दृश्य देखकर मैं इस उलझन और दुविधा से उनको निकालने और वास्तविकता से अवगत कराने के लिए उस लापता भाई का फ़ोटो लेकर अपने प्रेमसागर गुरुदेव के पास सिकन्दराबाद गया ।

उस समय करुणानिधि प्रभु आँगन में खाट पर लेटे थे । कुछ समय तक वे प्रफुल्लित और असीम प्रेम की मुद्रा में रहे और मुझे भी अपने अनूठे, अनवरत प्रेम से ओत-प्रोत करते रहे। उन्हें अति प्रसन्न चित्त देखकर जैसे ही मैं उस ममेरे भाई का फ़ोटो निकालने की सोच ही रहा था कि गुरुदेव ने करवट बदलकर दूसरी और कर ली। मैं घबरा गया कि शायद मेरे प्रभु मेरे

विचार और व्यवहार से नाराज़ हो गए हैं। इसी बीच लगभग पाँच मिनिट के अन्दर ही फिर करवट बदलकर मेरी और मुँह करके समअवस्था में प्रेमपूर्वक, माधुर्य से मिश्रित वचनों से मेरे घर और पत्नी तथा बच्चे का हाल पूछने लगे।

अनुकूल, आनन्दमय और प्रेममय वातावरण पाकर मैंने ज्यों ही अपने पाकिट से उस भाई का फ़ोटो निकालना चाहा कि पूज्य गुरुदेव ने रोक दिया और कहा कि " यही न पूछोगे कि जिसका फ़ोटो तुम पाकिट में रखे हो वह मर गया या ज़िदा है ।" मेरे 'जी' कहने पर गुरुदेव बोले - "मेरी समझ से वह अब नहीं है ।" इसके बाद मैंने पूछा कि उसकी मृत्यु कैसे हुई ? इस पर गुरुदेव नाराज़ से हुए और एक बड़े राज़ के बारे में मेरी आँखें खोलीं जब कहा कि, *"फ़क़ीर प्रकृति के हर राज़ को जानता है, पर राज़ खोलता नहीं है । खोलने से श्रष्टि और प्रकृति के सारे नियम बिगड़ जायेंगे।"* साथ ही साथ उन्होंने यह चेतावनी भी दी कि आईन्दा कभी मज़बूर मत करना। वे सर्वज्ञ और सर्वव्यापी थे । वे बादशाहों के बादशाह थे ।

oooooooooooo

हे मेरे गुरुदेव करुणासिन्धु करुणा कीजिये

हे मेरे गुरुदेव करुणासिन्धु, करुणा कीजिये !

हूँ अधम, आधीन, अशरण, अब शरण में लीजिये !!

खा रहा गोते हूँ मैं भव सिंधु के मझधार में !

आसरा है दूसरा कोई न अब संसार में !!

मुझ में है जप-तप, न साधन और नहीं कुछ ज्ञान है !

निर्लज्जता है एक बाकी और बस अभिमान है !!

पाप बोझे से लदी नइया, भंवर में जा रही !

नाथ दोड़ो अब बचाओ, जल्द डूबी जा रही !!

आप भी गर सुधि न लेंगें, फिर कहाँ जाऊँगा मैं !

जन्म-दुःख से नाथ कैसे, पार कर पाऊँगा मै !!

सब जगह 'मन्जुल' भटक कर ली शरण प्रभु आपकी !

पार करना, या न करना दोनों मरज़ी आपकी !!

दीनबंधु दयालु गुरुवर ,

महिमा अपरम्पार तुम्हारी !

- श्री हरी मोहन सिन्हा, खंडवा (म०प्र०)

एक दिन सिकन्दराबाद में भोजनोपरान्त परमकृपालु गुरुदेव ने मुझे अपनी चारपाई पर अपने पास बैठा लिया। कड़ाके की सर्दी का दिन था। संकोचवश मना करते-करते भी अपनी रज़ाई का सिरा मुझे भी उढ़ा दिया और फ़रमाया कि " ख़्याल करो कि मुझमें से प्रकाश निकलकर तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर रहा है ।" और मैं अपने तन बदन का, अपने अस्तित्व का होश खो बैठा। उस समय की स्थिति, मेरे भाग्यवश, केवल उस समय की होकर रह गयी।

हम तो गंदे-कुचले और कोढ़ आदि से पीड़ित लोगों से कतराते हैं कि कहीं छू भी न जाएँ। उनके नज़दीक मैं कितना गन्दा, कितना भयंकर रोगी था किन्तु फिर भी उन्होंने मुझे अपने नज़दीक बैठा लिया।

गोपाल भैया ने एक लेख में लिखा था कि मुझ जैसे पापी, दुराचारी,दुर्व्यसनी अधम जब उनके समक्ष जाते हैं तो हमारे गलीज़ विचारों का वातावरण पर व उस वातावरण का असर ईश्वरीय विधान में बंधे उस नर-नागर, मनुष्य चोले में ईश्वर, उस स्वामी दयाल पर पड़ता है । और परिणाम, हम सबने देखा है उनकी घोर, अकथनीय एवं कल्पना तथा अनुभूति से परे की शारीरिक पीड़ा। परन्तु वे तो निःस्वार्थ रूप से केवल हम पतितों के उद्धार के लिए अवतरित हुए थे । हम तो उनको समझ भी न पाए, पहचान भी न सके, उनके प्रेम और त्याग का प्रत्यादान तो क्या कर सकते थे, उस प्रेम सरोवर में अपने समूचे अस्तित्व को डुबो भी न सके।

यदि हम उनका अनुसरण करें तो उनके अधिक नज़दीक, अधिक ईश्वरीय हो सकते हैं। किन्तु है कहाँ हममे इतनी सामर्थ्य, क्षमता और हिम्मत कि हम दूसरों के दुःख बाँट सकें, उनके पापों की गठरी हलकी कर सकें। हम तो स्वयं लदे हैं अपने ही बोझ से।

सैद्धान्तिक प्रतिपादन सरल है, व्यावहारिक अनुसरण कठिन। किन्तु और ध्यान आया पूज्य सरदार जी भाई साहब ने भी मुझ पर महान अनुकम्पा की कि अत्यंत कष्ट सहकर नरसिंहपुर

में मेरे उस गंदे, तुच्छ एवं अपर्याप्त घर पर पधारे। लौटते समय अपने साथ इटारसी तक ले गए। रास्ते में हर मांगने वाले को कुछ न कुछ दिया। खाना खाते समय जो भी आया उसे दिया। व्यावसायिक (professional) भिखारियों को देने के औचित्य पर मैं शंका करने की धृष्टता कर बैठा। उन्होंने तुरन्त फ़रमाया, " भैया, हमें तो 'उनकी' सेवा करनी है, सब में 'उनको' देखना है ।"

तो यदि हम हरेक में 'उनके' स्वरुप के दर्शन करें तो हम सदा उनके ही ध्यान में रहेंगे और यही सब कुछ है, सबसे सरल साधना है । हर व्यक्ति में 'उन्हें' देखना है, और अपना हर काम 'उनके' प्रति समर्पित भाव से, 'उनका' आदेश समझ कर, 'उनकी' याद में करें। पूज्य फूफा जी (पूज्य सेवती प्रसाद जी) साहब ने भी लिखा है, " हर काम करने से पहले अपने इष्ट में फ़ना हो जाओ। इतने मस्त हो जाओ कि तुम्हें अपना होश न रहे, काम से पहले अपने को उस काम में परणित कर लो। चाहे वह कोई भी काम (खाना, पीना, चलना, सोना, व्यवहार करना कचहरी का) सबमें तुम न रहो, करने वाला तुम्हारा इष्ट हो "

परम् पूज्य बेनर्जी साहब की 'Discourses" वाली पुस्तक में The Ideal of Human Life in Gita वाले अध्याय में में भी कुछ ऐसा ही पढ़ा था । उन्होंने यह आदर्श " Cultivation of a Sportsmen Spirit बताया था। हमको यह खिलाड़ी भावना उत्पन्न करनी चाहिए कि हर समय याद रखें कि जो कुछ भी हम कर रहे हैं वह उसके दिए शरीर व शक्ति के माध्यम से, उसके इस जगत में, उसके ही निमित्त स्वयं उसके द्वारा हो रहा है ।

यह बहुत आसान भी है और कठिन भी। जब निरन्तर अभ्यास में यह आदत बन जाएगी तो अत्यंत सहज लगने लगेगी । परन्तु हम करते क्या हैं ? संध्या से उठे और लग गए अपनी दुनियादारी में । दिन-भर के लिए भूल गए उनको। आयी, तो संध्या के समय याद कर ली। बैटरी का इतना चार्ज करना अपर्याप्त है । अर्जित शक्ति का सारे दिन प्रवाह चलना चाहिए।

परन्तु क्या कहूँ, अपनी इस हालत पर बड़ा तरस आता है, असंतोष भी। इसे निराशावादिता, भाग्यवादिता या पलायनवादिता भी कहा जा सकता है । पर मेरा तो विश्वास यही है कि अपने सोचने और करने भर से यह होता नहीं है । किन्तु जीवन तो धर्मयुद्ध है - गाण्डीव को हाथ से छोड़ना है नहीं - कोशिश तो करना ही है ।

फिर याद आ रहा है एक और कड़ाके की सर्दी का दिन। सिकन्दराबाद सत्संग भवन में अंगीठी के एक ओर पूज्य गुरुदेव विराजमान थे और दूसरी ओर मैं, वापस लौटने की अनुमति प्राप्त करने को उद्यत। बात चलते-चलते मेरे सुबह देर तक सोने की न छूटने वाली आदत पर आ गयी। मैंने अपनी असहायता व्यक्त की तो कहने लगे, " भाई,यह तो कायरों की बातें हैं कि जैसे अर्जुन कहने लगा कि महाराज मुझसे तो होगा नहीं कि मैं तीर चलाऊँ अपने रिश्तेदारों पर। भई, हमारे तो जो समझ में आता है कह देते हैं - बता देते हैं। मानोगे तो ठीक है, फ़ायदा उठाओगे।" फिर अन्दर ले गए। परमपूज्य दादा जी की समाधि के निकट बैठाकर कहने लगे " आदमी क्या नहीं कर सकता ? सब कुछ कर सकता है । जब तुमने..... आदि, आदि किया तो यह क्यों नहीं कर सकते ?"

और यह मैं आज तक नहीं कर पाया कि उनके आदेशों का पालन करूँ। **पूज्य सरदारजी भाई साहब लिखते हैं कि** *हमें " आदर्श प्रस्तुत करना है, गुरुदेव के सच्चे अनुयायी कहलाना है अपने आचरण से।"* वे अपने इष्ट के मुराद थे, पर मैं तो मुरीद भी न बन सका। मुझे तो बस एकमात्र आसरा है - गुरु कृपा का। बिना उसके कुछ हो नहीं सकता । यदि एक दो दिन कोई काम उनकी इच्छानुसार कर भी पाए तो सोचते लगे - " अब तो मैं ऐसा करने लगा।", "'अब मैंने अमुक बात छोड़ दी।" आदि-आदि। इस अहँकार के आते ही कृपा ग़ायब। अहँकार कृपा का विरोधी है । वे कहते हैं कि जब ऐसा अहँकार आये तब ख़्याली तौर पर अपने शीश को उनके चरणों में रख दो। कृपा के लिए प्रार्थना करो। फ़रियाद में आत्तृता हो, उसमें हमारा शरीर, मन एवं आत्मा एवं स्वयं का समूचा अस्तित्व शामिल हो।

आख़िर उस स्वर्ग से, सातवें आसमान से, उस दयाल देश से, उन्हें और उनकी कृपा को बुलाने के लिए इतना अवश्य चाहिए कि उन्हें गज और द्रौपदी की तरह आर्त और दीन होकर, सब आसरे छोड़कर ह्रदय से पुकारें। मेरी तो यही भावना है कि -

"पुण्य न पीछे, कर्म न आगे,
खाली हाथ फटी झोली है
किन्तु अगर निजी अवलम्बन दो तो,
जन्म सफल ये कर पाऊँगा"

वे परम दयालु हैं, अवश्य सुनेगें इस आर्त पुकार को ।

गुरुदेव के दर्शन और पहली भेंट

- श्री अशोक प्रधान, नई दिल्ली ।

1958-59 की एक ठंडी शाम को स्व. बा. सत्यप्रकाश जी के घर पर एक बैठक का बुलावा मिला । पहुँचने पर देखा कि उनके ड्राइंग रूम में काफ़ी लोग मौज़ूद थे । देर हो गयी थी, इसलिए चुपचाप जाकर पीछे बैठ गया। बत्तियाँ बुझी हुईं थीं। बैठने के कुछ समय बाद ही एक अजीब सी अनुभूति हुई। मन और शरीर हल्का सा हो गया और सब कुछ बिसर सा गया।

कुछ समय बाद गुरुदेव का प्रवचन आरम्भ हुआ और गुरु वन्दना। बैठक के समापन के बाद प्रसाद लेकर सभी उपस्थितजन एक-एक करके जाने लगे। मैं एक तरफ बैठा रहा, कुछ खोया हुआ सा। तभी बाबू सत्यप्रकाश जी ने मुझे स्नेह से बुलाया और गुरुदेव के सामने बिठा कर परिचय कराया। आँखें मिलते ही फिर करेंट सा लगा और मुझे अपने आप को सम्भालना मुश्किल हो गया। ऐसा था मेरा पहला दर्शन उन महान पुरुष से। इसके बाद इलाहबाद, गोरखपुर, सिकन्दराबाद और दिल्ली में बराबर उनके दर्शन होते रहे।

प्यार से मुझे वह 'नन्हे ' कहकर बुलाते थे । भण्डारे में सिकन्दराबाद पहुँचते ही उनकी पहली नज़र मुझ पर पड़ते ही मैं आनन्द विभोर हो उठता था और उनकी ओर खिंचा चला जाता। कभी भी जब मुझे परेशानी होती, सन्देह होता, तो मैं उनसे खुलकर अपनी पूरी बात बता देता था और सदैव ही समस्त समस्याओं का निदान और मार्गदर्शन उनसे प्राप्त हो जाता था।

वैसे तो इतना कुछ उनसे जुड़ा है कि बयान करना मुश्किल है, फिर भी एक बात कहना चाहूँगा। मेरी आवाज़ कोई अच्छी नहीं थी फिर भी जब मैंने पहली बार एक ग़ज़ल पेश की तो गुरुदेव को वह बहुत पसन्द आयी ओर अक्सर वह मुझे आदेश देते कि मैं वह पढ़ूँ। इस ग़ज़ल के कुछ अंश इस प्रकार हैं -

ग़रके सद अनवार है, लेकिन नज़र बेनूर है,

ज़िक्रे साहिल क्या यहाँ, मौज़ों से दरिया दूर है !

मन्ज़िल से आगे भी मेरे मिल जाते हैं नक़्शे क़दम ,

पाँव शौक फिर भी समझता है कि मन्ज़िल दूर है !

मुझ में मिल जाओ सनम, मुझको मिटा दो इस क़दर,

दिल में रहते हो, मगर यह फ़ासला तफ़रीक़ दूर है !

शायद उनको इन अशारों में (शब्दों में) वह भावना दिखाई दी जो कि हम सब में निहित है, छिपी हुई है । 'उनसे', परमात्मा से, मिलने की तड़प और दूरी समाप्त कर एक हो जाने की आशा भरी है'।

अफ़सोस यह है कि उन्होंने मुझे इतना दिया कि मैं सम्भाल नहीं पाया। हूँ, न कम ज़र्फ़ ? उनके जीते जी मैं उनसे बहुत कुछ और हासिल कर सकता था पर अपनी ही कमियों की वजह से नहीं कर सका। फिर भी उन्होंने जो भी मुझे दिया वह मेरे लिए अमूल्य है । उसी के सहारे चल रहा हूँ, बिखरा नहीं हूँ। यह क्या काफ़ी नहीं है?

उनकी इस जन्मशताब्दी के अवसर पर उनको याद करके यह संस्मरण उन्हीं के चरणों में भेंट कर रहा हूँ। एक तुच्छ की तुच्छ भेंट। आशा है स्वीकार करेंगे।

बा।सत्यप्रकाश जी अब इस संसार में नहीं हैं। उनका मैं कई प्रकार से ऋणी हूँ। विशेषतया इस बात से कि उन्होंने मुझे गुरुदेव से मिलाया था। मैं इस ऋण को चूका नहीं सकता, न चुकाने की इच्छा ही है । कभी-कभी ऋणी होना ही अच्छा है । उधार की कसक बनी रहती है । गुरुदेव उनकी पुण्य सदआत्मा को शांति प्रदान करें।

पुनः गुरुदेव का स्मरण कर मैं उनके चरणों में नतमस्तक हूँ।

oooooooooooooo

प्रथम भेंट की व्यक्तिगत उपलब्धि

- श्री बी० पी० शर्मा, गुड़गांव

आदमी का कोई इष्ट, कोई एक आदर्श होना चाहिए, उस आदर्श पुरुष के विचार जानने चाहिए और वर्तमानकाल समाज के अनुसार जो विचार व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को ऊँचा उठा सकें, उन विचारों को अपनाकर जीवन यापन करना चाहिए। परम पूज्य महात्मा डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी से सिकन्दराबाद उनके निवास स्थान पर भेंट करा दी।

पहली ही भेंट में जब वे अकेले एक चारपाई पर लेटे हुए थे, मैं उनके पास गया और जीवन यापन का लक्ष्य क्या होना चाहिए, यह उन्होंने मुझसे ही पूछा। मैंने साधारण ज्ञान के अनुसार उन्हें बताया कि ईश्वर-प्राप्ति। उन्होने लेटे-लेटे ही जबाब 'हाँ' में दिया। अब मैंने पूछा कि क्या आपने ईश्वर को प्राप्त कर लिया है ? और क्या आपने ईश्वर को देखा है ? तो वे लेटने की अवस्था से चारपाई पर बैठ गए। उनकी कपड़े की हलकी सी टोपी जो उठते समय नीचे गिर गयी थी, उन्होंने पहन ली, तो उन्होने फ़रमाया कि " माफ़ करना, बेअदबी हो गयी"। अब हम हुज़ूरी में हैं, आप फिर अपनी बात दोहरायें ।" मैं 'बेअदबी। 'हुज़ूरी' को नहीं समझ पाया और फिर अपना सवाल दोहराया कि क्या आपने ईश्वर को देखा है? उन्होंने सहजता से उत्तर दिया कि, "हाँ, देखा है "। मैंने फिर उनसे कहा कि, "मेरा यकीन है कि आप झूँठ नहीं बोलते होंगे, और यदि यह सच है कि आपने परमात्मा, ईश्वर, भगवान, खुदा की हस्ती को देखा है, तो क्या हमें भी दिखा सकते हैं "? तो उन्होंने मुझसे पूछा कि तुम क्या काम करते हो ? मैंने कहा कि मैं रेलवे में खजान्ची की पोस्ट पर कार्यरत हूँ। उन्होंने पूछा कि आपने अपने अफसर जिसने तुम्हें नौकरी दी है, और जो तुम्हें नौकरी से निकाल सकता है, उसे भी देखा होगा, तुम्हें उससे डर भी लगता होगा, वो तुम्हारी गलती पर तुम्हें नौकरी से निकाल सकता है । परन्तु किसी अन्य व्यक्ति को जो उसके अधीन नौकरी नहीं करता, न उसे तुम्हारी तरह निकाल सकता है, न उसे डर लगता है । तो ऐसा ख़ुदा हमने देखा है । जैसे तुम्हें उसके आदेशों का

पालन करना पड़ता है, वैसा हमें भी उसके आदेशों का पालन करना पड़ता है । ऐसा ख़ुदा देखना हो तो सोच लो।"

मैं समझ गया कि इनका इशारा गुरु की तरफ़ है । मैंने सीधा ही कह दिया कि आपका गुरु की तरफ़ इशारा है । वो मुस्कराये और 'हाँ ' कहा। " ऐसा ख़ुदा देखना हो तो सत्संग करो। रामायण तथा गीता में भी गुरु को ही परब्रह्म परमेश्वर कहा गया है । " बिना गुरु ज्ञान नहीं, ज्ञान बिना पहिचान नहीं होती "। मैं चुप हो गया और उनके चरणों को निहारता रहा। उन्होंने फिर फ़रमाया कि , " यह पहिला और आखिरी सबक़ है । गुरु धारण करने का मतलब है कि ईश्वर की प्राप्ति - और सिलसिले जहाँ खत्म होते हैं, वहाँ से यह सिलसिला शुरू होता है । जो गुरु को ईश्वर, परमात्मा, ख़ुदा, भगवान नहीं मानते उनकी तरक़्क़ी रुकी रहती है । गुरु बेगरज़, अथाह मोहब्बत करता है, यदि शिष्य भी श्रद्धा, विश्वास के साथ उसके वचनों का पालन करता है तो बहुत जल्दी आत्म अनुभूति करके शिष्य का उद्धार हो जाता है । "

मेरे साथ मेरा छोटा भाई भी था। उसने पूछा कि रिश्बत लेने वाला और मज़दूरी करके ईमानदारी से पैसा कमाने वाला, दोनों बाज़ार में सौदा लेने जाते हैं, दोनों को एक भाव, तौल से सौदा मिलता है, फिर ये महात्मा लोग रिश्बत को क्यों बुरा बताते हैं ? वो अपनी चारपाई से उठे, पास ही की एक उजड़ी हवेली के पास ले गए। दरवाज़ा खुला था, अन्दर से खंडर और कबूतरों की बीट से हवेली ख़स्ता हाल थी।

उन्होंने फ़रमाया, " यह हवेली एक पेशकार की है । बैलगाड़ियों से गुड़, शक़्कर, गन्ने की रिश्वत लेते थे । यह हवेली उसी रिश्वत के पैसे से बनी थी। एक बार इसमें ख़ूब रौनक हुई। आदमी, औरतों, बच्चों से, धन धान्य से भरी थी। फिर ऐसा हुआ कि जो किराये से लेता वह भी दुखी होकर छोड़ जाता।अन्त में जब सब चल बसे तो पेशकार साहिब ही अकेले रह गए। लम्बी बीमारी के कारण उनके पास कोई नहीं जाता था। चल बसे और यह हाल तुम्हारे सामने है । फिर फ़रमाया कि नेक और हराम की कमाई में देखने में कोई फ़र्क़ नहीं है । परन्तु अन्न का मन के साथ सम्बन्ध है । जिस नीयत से अन्न कमाया होगा, मन भी उसी नीयत को धारण करेगा। कर्म का बीज विचार, विचारे बिना कर्म नहीं होता, और विचार का बीज नीयत है । नीयत जैसी है वैसा विचार। तो ग़लत नीयत से कमाया धन, खाने वाले की नीयत ख़राब

करता है । फिर नीयत के अधीन विचार और कर्म भी ख़राब होते हैं, जिसका नतीजा दुःख है । " हम दोनों चुप हो गए।

दिन के 4 बजे होंगे वे घर पर लौट आये। शर्मा बहिन जी ने चाय की पूछी,और हम तीनों ने चाय पी। फिर आधे घंटे के बाद उन्होंने बेर मँगवाये। एक डलिया में बेर आ गए। अपने हाथों से हरे-हरे बेर छाँट कर हम दोनों को देते, जो बहुत मीठे थे । और स्वयं लाल-लाल बेर खाते जाते थे । मेरे छोटे भाई ने टोक दिया कि आप लाल बेर मीठे खा रहे हैं। हमें कम मीठे बेर दे रहे हैं। उन्होंने फ़रमाया आप अपने हाथ से छाँट लो। हमने लाल-लाल बेर छाँट कर खाये तो वो खट्टे थे । फिर हरे बेर भी खाये, वो भी खट्टे थे । हमने उन्हें बताया तो वो मुस्करा दिए। उन्होंने फ़रमाया कि बाप बेटे को जो देता है, तो बेटा ऐसे ही समझता है । अब वो बात खत्म हुई, बेर अब तुम्हारे मतलब के नहीं हैं।

उन्होंने हमारे साथ खाना खाया। जो भाई भोजन परोस रहा था उसने उन्हें एक रोटी और लेने की बार-बार ज़िद की, कि यह नरम है, फूली है । उन्होंने ज़रा ज़ोर से, लेकिन प्यार भरे लहज़े में, कहा कि, *" आदेश का पालन करना सीखो, मनमत न बनो।" फिर भोजन करने के बाद कहा कि, " यही मुश्क़िल है । गुरु धारण करने के बाद भी लोग गुरु को अपने मन के मुताबिक़ चलाना चाहते हैं। गुरु जो आदेश देता है उसको अपने मन -बुद्धि पर परखते हैं। परखने पर भी सुविधा हुई तो गुरु का आदेश माना, वरना मनमत रहे। जब गुरु देखता है कि शिष्य मनमत है तो हमारे यहाँ सख्ती नहीं करते। परन्तु शिष्य की तरक़्क़ी रुक जाती है,"*

" लोग लगभग 30 वर्ष के पुराने सत्संगी होकर भी मनमत बने हुए हैं। शिकायत करते हैं, हमारी हालत नहीं सुधरी। अब सच्ची बातें कहें तो नाराज़गी होती है । दुनियाँदारी में यही रिवाज़ है कि परोसने वाला मिन्नत खुशामद करके ज़्यादा खिलाने को अच्छा समझता है । खाने वाला जब तक झूँठा छोड़ने पर मज़बूर न हो जाये, परोसे जाओ। पर सत्संग में यह काम उल्टा है । इतना ही खाओ और खिलाओ कि भूँख मिट जाये। ज़्यादा होने से आलस्य आता है । भजन में सुस्ती आती है, और कब्ज़ होने का डर रहता है । यदि तुम किसी सत्संगी भाई के यहाँ जाओ तो वहाँ एक ही समय का भोजन करो जहाँ खातिरदारी में बहुत से पकवान परोसे जाते हैं। भोजन सादा, स्वादिष्ट और कम मात्रा में होना चाहिए। "

सुबह पूजा के बाद फिर हम दोनों को बुलाया और फ़रमाया कि, " किसी भी तरह की अब धार्मिक किताब न पढ़ें, और ***"ज़िक्रे ख़फ़ी"*** का जाप करें। ज़िक्रे ख़फ़ी का मतलब खूब समझाया। मन ही मन ईश्वर का नाम सुमरन हो पर होंठ, ज़बान, कंठ और शरीर से कोई हरकत न हो। पास बैठे दूसरे आदमी को पता भी न चले कि आप ईश्वर का नाम ले रहे हो। मन नाम ले और मन पर निगाह रखी जाये कि वो नाम छोड़कर इधर-उधर न भागे। इसको इतना छुपाकर करना चाहिए कि किसी को पता न चले। एकान्त में, शान्त जगह पर, अपने घर में रात्रि को या सुबह के समय करना है । इससे मन पर पड़े संस्कार की रेखायें मिट जाती हैं। मन चंचलता छोड़ कर शान्त भाव का होने लगता है । दिन में भी मन पर निगाह रखनी चाहिए। अवकाश के समय, इन्तज़ार के समय ज़िक्रे ख़फ़ी का जाप करते रहना है । यदि साधक मन से ईश्वर का नाम लेता रहे और जो भी काम करे वो ईश्वर के लिए, ईश्वर का काम समझ कर करे तो रास्ता बहुत जल्दी तय होता है । यदि मन खाली बैठते ही वाहियात इधर-उधर न भाग कर ईश्वर के नाम-जप में लग जाता है, तो समझो काम बन रहा है ।"

यह हालत गुरु से प्रेम पैदा कर देगी। प्रेम पैदा होने पर गुरु अपना लेते हैं। साधक की हालत बदलने लगती है और फिर वह पक्का सत्संगी बन जाता है । रस आने पर साधक अपने आप गुरु के आदेशों पर चलने लगता है । दीनता आने लगती है । स्वभाव में अपने-पराये का भेद मिटने लगता है, सेवा की वृत्ति जाग्रत होती है, प्रेम, दीनता तथा सेवा उसका सहज स्वभाव हो जाता है । गुरु ऐसे शिष्य को देखकर आनन्दित होता है । यही हमारा मिशन है । यहाँ साधक की दुनियाँ भी बनती है, और दीन तो बनता ही है । अपनी साधना को छुपाना, अपने आप को छुपाना-यह हमारे यहाँ का परहेज़ है । "

हम कई सत्संग प्रेमी उनके पास बैठे हुए थे । शरीर से अस्वस्थ होते हुए भी, बहुत प्रसन्नचित्त दीख रहे थे । हमें ऐसा अच्छा लग रहा था कि यह क्षण कभी समाप्त न हो। एक भाई को सिगरेट पीने की आदत थी। उन्हें सम्बोधित करके पूछने लगे कि, " आप बोर हो रहे होंगे। अभी चाय आ रही है, फिर बाहर जाकर बीड़ी-सिगरेट का शौक पूरा कर लेना।। सत्संग में आते रहे तो ये आदतें अपने आप छूट जाती हैं"। इतने में चाय-नाश्ता आ गया, ख़ूब हँसी-मज़ाक भी करते रहे। और जब हम वापिस चले तो हमारी आँखों में प्रेम के आँसू आ गए। सभी

को बहुत अच्छा लग रहा था। गुरु महाराज ने 'अपने को छुपा कर रखो' इस बात पर उसी दिन काफी बल दिया था।

सुधा बिन्दु

- परमार्थ का मतलब ये है कि हमारी ज़िन्दगी ख़ुशी की ज़िन्दगी हो, इसमें प्रेम ही प्रेम हो और आनन्द ही आनन्द

मिले। इसका इलाज संतों के पास है ।

- गुरु कौन है ? ईश्वर ! गुरु किसी शरीर को नहीं कहते। इस शरीर में जो परमात्मा निवास करता है वही गुरु है ।

जिस्म तो बाहरी स्वरुप है । संतमत में अपने आपको गुरु के समक्ष समर्पित (surrender) किया जाता है ।

यह था उनके प्रसाद का करिश्मा

- श्री हरवंश लाल भायला

रामाश्रम सत्संग के सन्त शिरोमणि परम पूज्य दादा गुरुदेव महात्मा श्री कृष्ण लाल जी के गुरुमुख बाबू जुगल किशोर जी ने 23 साल तक रामाश्रम सत्संग के प्रत्येक भण्डारे में चाहे वे कासगंज में हों या सिकन्दराबाद या ग्वालियर में, आपने पाकशाला की सामग्री आपने कन्धों और सिर पर रखकर या कभी-कभी अति भारी गेंहूँ या चावल की बोरियाँ या लकड़ी इत्यादि के लिए खाली गाड़ी कम से कम किराए पर लेकर हाथों से खैंचकर हँसते-खेलते करते। आपकी सिल्वर जुबली मनाने का तो हमें सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। ख़ुदा जाने रसद विभाग से इनका क्या पुराना रिश्ता या संस्कार था जब सर्विस मिली तो राजस्थान के रसद विभाग में। गुरु से आशीर्वाद मिला तो भी रसद विभाग का।

सन 1951, 1952, 1953 की बात है कि आप जयपुर में बालाजी अर्थात हनुमान जी के अनन्य भक्त बन गए। न तन-बदन का होश न घर-घाट का। रात-दिन, सुबह-शाम बाला जी वाला हनुमान चालीसा और हनुमान जी के मन्दिर के अलावा और कुछ भी दिखाई न देता था। पर दफ्तर में समय पर जाना और उस काम को पूरी लगन और ईमानदारी से करना कभी नहीं भूलते थे । और किसी के काम में रोड़ा भी नहीं अटकाते थे । अधिकारी से कह देते थे कि " अगर आप आदेश दें तो आपकी आज्ञानुसार मैं नोट पुट- अप कर देता हूँ, आप जानें या आपका आसामी।"

घरवाली श्रीमती श्यामा देवी अलग परेशान थीं। पतिव्रता थीं। उच्च संस्कार लिए हुए थीं। इसीलिए तो बाबूजी के पल्ले पड़ी थीं। दिन-रात भगवान से प्रार्थना करतीं कि इनको भी अक्ल दें ताकि गृहस्थी का भार सम्भाल सकें । कहते हैं कि सच्चे दिल से निकली सच्ची प्रार्थना कभी खाली नहीं जाती। प्रभु ने सुन ली और आपकी रसाई परम् पूज्य दादा गुरुदेव श्रीकृष्ण लाल जी तक हो गयी। फिर क्या था, पौ बारह। सच्ची लगन और ईमानदारी का पुजारी दिन दुगनी और रात चौगुनी उन्नति करने लगा।

घरवाली से एक दिन की छुट्टी लेकर सिकन्दराबाद गया तो एक माह या पन्द्रह दिन का भरोसा नहीं। कभी सवारी बनारस, मुंगेर, बक्सर और गोरखपुर इत्यादि ये गुरु महाराज के चरणों मन और ऑखें बिछाये आगे बढ़ रही है तो कभी ग्वालियर और अमृतसर की तरफ ।

घर लौटते तो माया की माँ का पारा चढ़ा हुआ मिलता। खामोश चेहरा, झुकी हुई आँखें बगावत का सा पैग़ाम देती हुईं दृष्टिगोचर होतीं - " आ गए ? घर या बच्चों का भी कुछ ख़्याल है ? यहाँ रहते तो तो बालाजी के मन्दिर में दर्शन तो हो जाते थे । अब न जाने उस मोये ने क्या घुट्टी पिला दी है - जादू कर दिया है, न घर के रहे घाट के।"

आये दिन यही गोरखधन्धा होता रहता था। गुरु के बिना रहा भी नहीं जाता था। उनके साथ दस-पद्रह दिन-माह का कोई हिसाब नहीं रहता था। गुरुदेव जानते थे, पर ख़ामोश थे ।

एक दिन माह दिसम्बर की घटाटोप अँधेरी और कड़कड़ाती सर्दी में सुबह चार बजे जब गाड़ी जयपुर पहुँची तो क्या किया जाए, घर पर वही नोंक-झोंक। और पाँव बिना सोचे विचारे आगे बढ़ने लगे। घर पर जाकर डरते-डरते, सहमे हुए किबाड़ खटखटाया तो अजीब हालत पाई। एक ही आवाज़ के साथ दरवाज़ा खुल गया जन्नत का। धर्मपत्नी ने आगे बढ़ कर पाँव छुए। आइये पलंग पर बैठिये, रज़ाई ओढ़ लीजिये, बड़ी तेज़ सर्दी है । मैं अभी गरम पानी करके ला रही हूँ,हाथ मुँह धोने के लिए।

मैं मन ही मन विचार शून्य हुए जा रहा था कि यह क्या अलादीन का जादू का चिराग काम कर गया। कुछ देर आवभगत के बाद दिल को कड़ा करके मैंने पूछा, यह क्या मामला है, सुदामा के घर उलटी गंगा कैसे ?

श्रीमती जी बोलीं - यह जो तुम्हारा गुरु है ना - यह भी कोई उरे की चीज़ नहीं है । मैंने कहा, कैसे ? आप बोली कि एक दिन तड़के चार बजे पप्पू मदनमोहन आपके लाडले को तेज़ बुख़ार और पेट में बहुत तेज़ दर्द होने लगा। बिजली गायब थी, हाथ को हाथ दिखाई नहीं दे रहा था - वैद्य-हक़ीम और डाक्टर या अस्पताल तक ले जाने और उनकी दवाई लेना कोई बच्चों का खेल नहीं था। मरती क्या न करती, लगी आपको कोसने बुरा-भला कहने।

इतने में एक छोटी-छोटी दाढ़ी वाला, भारी-भारी सा आदमी सिर पर टोपी ओढ़े अन्दर आया और अँधेरे ही में मेरा हाथ पकड़ कर अन्दर कोठरी में सामने लटकते हुए थैले के पास लेजाकर उसके अन्दर रखा हुआ भण्डारे का प्रसाद देकर मुझे छोरे के पास ले जाकर उसके मुँह में दिलवाने लगा । प्रसाद का अन्दर जाना था कि दर्द और बुख़ार तो नौ दो ग्यारह हो गया और उस आदमी का पता नहीं चला कि कहाँ गया और कहाँ से आया था। अब आप जहाँ भी रहना चाहे मुझे कोई आपत्ति नहीं, पर मुझे भी आपने साथ रखो।

कुछ दिनों बाद जब गुरु महाराज के चरणों में गया तो गुरुदेव ने हँसते हुए कहा, आज तो जुगल किशोर जी के चेहरे पर भी रौनक दिखाई दे रही है । क्या मामला है ? मैंने सारा हाल कह सुनाया। बोले जैसा देश तैसा भेष ।

oooooooooooooo

जामे राहत से सभी सरशार हों

जामे राहत से सभी सरशार हों,

सब के सब नावाक़िफ़े आज़ार हों !

सबको हासिल हो फ़राग़े ज़िन्दगी,

सबका रौशन हो चिरागे ज़िन्दगी !

सबकी खैरोआफ़ियत की है दुआ,

अहले आलम में हो इक इक का भला !

मुब्तलाये रंज़ो ग़म कोई न हो,

तेरा महरूमे करम कोई न हो !!

करुणानिधान गुरु महाराज की सेवा में

स्वानुभूति की शिक्षाप्रद घटनायें

- श्री गिरिजानन्द लाल, बक्सर ।

प्रातः वन्दनीय परम पूज्य गुरुदेव डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी अपने शिष्यों को दीन और दुनियाँ दोनों की तालीम देते रहते थे । दुनियाँ में किस मौक़े पर कैसा व्यवहार होना चाहिए, इसे भी समय-समय पर बता दिया करते थे । सेवक के साथ जो भी घटनायें गुज़रीं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं -

पूज्य गुरुदेव अपने साथ घटी हुईं घटनायें तथा परम पूज्य लाला जी साहब की बातें अक्सर सुनाया करते थे । गुरुदेव कहा करते थे कि घरवालों को या भोजन की व्यवस्था करने वालों को सबके भोजन करने के बाद ही भोजन करना चाहिए। गुरुदेव ने इसके सम्बन्ध में आपबीती भी कई बार सुनाई हैं लेकिन सेवक एक मौक़े पर चूक गया था जिसे किस खूबी के साथ अपने याद दिला दिया, उसे ही सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सन 1962 में एकबार परमपूज्य गुरुदेव सेवक के यहाँ मुरार पधारे थे । सेवक ने अपने परिचितों तथा सम्बन्धियों को भी सत्संग के लिए बुलाया था। सेवक के एक अभिन्न मित्र तथा सम्बन्धी भी आये थे । रात का समय था। सभी आगन्तुक भाई भोजन कर रहे थे । सेवक परोस रहा था। सेवक के एक मित्र के आगे चावल कुछ अधिक पड़ गया था जिसे वे शायद नहीं खा सकते थे । मुझे देखकर वे आग्रह करने लगे कि मैं भी उनके साथ बैठ जाऊँ ताकि चावल बर्बाद न हो। उनके आग्रह ने मेरी बुद्धि पर पर्दा डाल दिया और गुरुदेव की बातें उस क्षण बिसर गयीं। मैं उनके साथ खाने को बैठ गया। चावल बर्बाद न हों इस नियत से मैं उनके साथ खाने को बैठा था लेकिन फिर भी चावल देने वालों ने लापरवाही से अधिक चावल डाल दिया और जितना बर्बाद होना था बर्बाद हुआ ही।

गुरुदेव जब शौंच होकर आये, सेवक उनको हाथ धुलाने लगा। आपने पूछा - "सभी लोग खा चुके।" मैंने उत्तर में हाँ तो कह दी लेकिन उनका पूछना था, मेरे शरीर में बिजली सी दौड़

गयी और गुरुदेव की बातें दिमाग में चक्कर काटने लगीं कि 'घर वालों को सबको खिलाने के बाद खाना चाहिए।' मैं पछताने लगा कि " हाय, मैंने कितनी गलती की कि पहले ही भोजन कर लिया और उससे कुछ बचत भी नहीं हुई, जितना बर्बाद होना था हुआ ही।" तब से यह बात बराबर याद रहती है ।

सन 1959 की बात है । परमपूज्य गुरुदेव काशी आये हुए थे । सेवक जब उनके प्रथम दर्शन को वहाँ पहुँचा तो सत्संग में आन्तरिक अभ्यास चल रहा था। सभी भाई ध्यानमग्न बैठे थे । सेवक चुपचाप एक कोने में बैठ गया और आँखें बंद करके ध्यान में सम्मिलित हो गया। कुछ देर बाद गुरुदेव ने ऑखें खोली, सभी उनकी ओर देखने लगे। आपने प्रवचन में कहा कि, ***" सन्त के पास, बड़ों के पास तथा रिश्तेदारों के यहाँ ख़ाली हाथ कभी नहीं जाना चाहिए। सन्तों के पास और कुछ नहीं तो दो-चार फूल ही लेते जायें।"***

आप कहा करते थे कि " सम्बन्धियों के यहाँ ख़ाली हाथ जाने से आदर कम मिलता है । फूलों के अन्दर भावनाओं को शोषण करने की क्षमता अधिक होती है, फूलों से ही सन्त समझ जाते हैं कि कितना प्रेम लेकर आप उनके पास आये है ।" सत्संग के बाद मुझे जब अकेले में मिलने का समय मिला तो आपकी बात याद आ गयी तो सेवक माला तथा एक फूलों का गुलदस्ता लेकर सेवा में हाज़िर हुआ।

एक विशेष छाप की अगरबत्ती जो सेवक ने पहले-पहले देखी थी, बड़ी अच्छी लगी। सुगन्ध भी मनमोहक थी। सिकन्दराबाद जाते समय मैंने अपने मन में विचार किया कि इसका एक पैकेट चलते समय गुरूदरबार के लिए ले लूँ तथा एक पैकेट मैंने ले लिया। सिकन्दराबाद पहुँच कर मन में यह बात आने लगी कि इतनी छोटी सी वस्तु क्या गुरुदेव की सेवा में दूँ और देने में संकोच होने लगा।

कुछ देर सोचने के बाद मैंने उसे सेवा में पेश करने का निर्णय लिया और उसे लेकर गुरुदेव के पास एकान्त में पहुँचा और उनके चरणों के पास रखकर चरण-स्पर्श कर बैठ गया। बातों ही बातों में आप कहने लगे, " गुरु यह नहीं देखता कि सामान की क़ीमत क्या है, वह तो यह देखता है कि कितने प्रेम से लाया है । गुरु की निगाह प्रेम पर रहती है न कि लागत पर।

गुरु प्रेम का भूखा होता है ।" उनकी ये बातें सुनकर सेवक को बड़ा सन्तोष हुआ। गुरुदेव की कृपा सदा बनी रहे।

एक बार गुरुदेव सेवक के यहाँ पधारे थे । मेरे पिताजी के एक मित्र जो अवकाश-प्राप्त दारोग़ा थे, वे गुरुदेव की सेवा में आये थे । उधर जाते समय उन्होंने मुझसे कहा कि " गुरुदेव के लिए गाय का दूध मेरे यहाँ से मंगा लीजियेगा।" पहले दिन तो उनकी गाय का दूध आया जो गुरुदेव को पिला दिया। लेकिन उनकी ऐसी कृपा हुई कि दारोग़ा जी की गाय चरने गयी तो शाम को लौट कर आयी ही नहीं। नौ बजे रात तक बार-बार पता लगाया तो यही ज्ञात हुआ कि गाय लौटी ही नहीं। अतः उनके यहाँ से दूध गुरुदेव के लिए आया ही नहीं।

घर में दूसरा दूध, जो चाय आदि के लिए खरीदा गया था, वही गुरुदेव को रात में पीने के लिए दिया, जिसे होंठों से लगाकर यह कहते हुए आपने छोड़ दिया कि 'ख़ाली पानी है ।' मुझे बड़ी ग्लानि हुई कि मैंने क्यों पूज्य गुरुदेव के लिए ऐसे व्यक्ति की गाय का दूध स्वीकार किया जिसकी कमाई हक़-हलाल की नहीं थी - अशुद्ध थी। उनकी गाय दूसरे दिन लौट आयी, सिर्फ उसी दिन वह नहीं लौट सकी थी। यह गुरुदेव का अनोख़ा तरीक़ा था जब उन्होंने गाय के न लौटने का कारण यह बताया कि हराम का पैसा कमाने वाले का कुछ भी स्वीकार नहीं करना चाहिए।

निज बल छोड़कर प्रभु का आसरा लेना हर काम को सुचारु रूप से पूरा करने का अति उत्तम तरीक़ा है । गुरु महाराज व्यावहारिक ढंग से ही सारी बातें सिखा दिया करते थे । यही उनकी तालीम का विशेष तरीक़ा था।

oooooooooooooo

सुधा-बिन्दु

- दुनियाँ में शहद की मक्खी की तरह रहो। वह फूलों का रस लेती है - मगर न उसको बिगाड़ती है, न बदसूरत

करती है ।

- जिस तरह छप्पर पर पानी की बूंदें पड़ती हैं उसी तरह चंचल मन में काम, क्रोध वग़ैरा आते रहते हैं।

ऐसे महान थे हमारे गुरु महाराज

- श्री के० बी० सक्सेना, लखनऊ।

आने वाले समय की परख

एक बार का ज़िक्र है कि आपने खाना खाने के बाद कहा कि मेरा मन कह रहा है कि मकान का बटबारा कर दें और सत्संग के नाम भवन कर दिया जाये। आपने आदेश दिया कि थोड़ा विश्राम करके तीन बजे रजिस्ट्रार ऑफिस चलेंगे और साथ ही दो -तीन लोगों से मिलना भी था। आपने फ़रमाया कि परमार्थी विचारों का अनुपालन शीघ्र करना चाहिए वर्ना माया भटका देती है । आप तीन बजे तैयार हो गए। जैसे ही घर के बाहर निकले कि एक बिल्ली ने रास्ता काट दिया। मेरे मन में विचार आया कि अब काम बनेंगे या नहीं। उस दिन कोई काम नहीं बना। आप वापस आकर बोले,

बेटे ! आज कोई काम नहीं बना, कल फिर देखेंगे । दूसरे दिन उसी समय इस पुनीत कार्य के लिए निकले तो बिल्ली ने उसी ढंग से रास्ता काटा। अब मैंने सोचा कि आज भी काम नहीं बनेगा। परन्तु उस दिन हाथों-हाथ काम हुए। गुरु महाराज जी ने मौन में यही शिक्षा दी कि बिल्ली के रास्ता काटने से कुछ नहीं होता है ।

जिस समय मकान के बटवारे की रजिस्ट्री करवा रहे थे तो रजिस्ट्रार साहब ने पूज्य गुरु महाराज जी से कहा कि, "क्या आप लड़कों के साथ ज़्यादती नहीं कर रहे हैं, क्योंकि बहुत बड़ा भाग सत्संग के नाम कर रहे हैं।" आपने फ़रमाया - मुन्शी जी, मैं जो कर रहा हूँ, ठीक कर रहा हूँ क्योंकि जाने या अनजाने में सत्संग का पैसा मेरे या मेरे परिवार पर ख़र्च हो गया होगा, उसकी कमी पूरी कर रहा हूँ, कोई अहसान नहीं कर रहा हूँ। लड़के तो प्रॉपर्टी बेचकर बाहर चले जायेंगे।" और यह उनकी परख सिद्ध भी हो गयी कि दो पुत्रों ने अपना हिस्सा बेच दिया और दूसरे शहर में चले गए।

स्वभाव में विनोद प्रियता

पूज्य गुरु महाराज जी बहुत ही विनोद प्रिय भी थे । इसकी एक झलक इस प्रकार है कि हम - मैं और पत्नी - एक माह के लिए सिकन्दराबाद आये हुए थे । दीपावली के दिन मैंने आपसे निवेदन किया कि मेरी पत्नी को भी दीक्षा दे दी जाये। आपने फ़रमाया कि अभी तुम्हें ही दीक्षा नहीं दी है । मैंने निवेदन किया कि मुझे दीक्षा आपने लखनऊ में दे दी थी। आपने फ़रमाया कि मुझे तो याद नहीं है । फिर आप मेरी पत्नी को बुलाकर आपने कमरे में ले गए और पूछा कि तुम वास्तव में दीक्षा लेना चाहती हो या आपने पति के कहने पर दीक्षा के लिए कह रही हो। मेरी पत्नी ने निवेदन किया कि वह अपनी इच्छा से कह रही हैं।

आपने बाहर आकर फ़रमाया, " बेटे, परशाद ले आओ ।" मैं तुरन्त परशाद ले आया। आपने मेरी पत्नी से कहा कि, "कपड़े बदल कर सत्संग कक्ष में बैठो ।" हम दोनों सत्संग कक्ष में बैठ गए। थोड़ी देर बाद गुरु महाराज पधारे और अभ्यास करा कर मेरी पत्नी को दीक्षा देना आरम्भ किया। देख कर मेरे तो होश उड़ गए क्योंकि पूज्य गुरु महाराज जी का कथन सही था कि मेरी दीक्षा नहीं हुई है । मैंने तो अभ्यास के प्रथम पाठ को ही दीक्षा समझ लिया था। दीक्षा के उपरान्त मैंने निवेदन किया कि मुझसे भूल हो गयी है, क्षमा कर दिया जाये और मुझे भी दीक्षा दे दी जाये। आपने फ़रमाया, " समय निकल गया है । बाद में देखा जायेगा।" आप सत्संग भवन से बाहर आँगन में आये और बहुत ही विनोद भरे शब्दों में शर्मा बहिन से कहा कि " देखा, तुम्हारा भाई पिछड़ गया, मेरी बहू आगे निकल गयी और उसकी दीक्षा पहले हो गयी।" यह चिरस्मरणीय और मुबारक़ दिन दीपावली का था। आपने कृपा करके दूसरे दिन मुझे भी दीक्षा दे दी।

संस्कार कटवाया पर बचा भी लिया

एक बार का ज़िक्र है कि ईस्टर भण्डारा ग़ाज़ियाबाद में रखा गया था। सत्संग भवन में कमरा ख़ाली करने हेतु जो पुस्तकें नीचे रखी थीं उन्हें कमरे के टांड पर रखना था। मैं बड़ी मेज़ ला रहा था। आपने फ़रमाया, सीढ़ी पर चढ़कर रखो। मैं जल्दी से सीढ़ी लगाकर किताबें रखने लगा। जैसे ही सीढ़ी के अन्तिम डंडे पर पैर रखा, सीढ़ी सरक गयी, मैं गिर गया। बड़ी ज़ोर का धमाका हुआ। सभी भाई-बहिन दौड़ पड़े। मुझे उठाया। मुझे कोई चोट आदि नहीं लगी बल्कि ऐसा लगा जैसे कि मैं डनलप के गद्दे पर गिरा हूँ। पूज्य गुरु महाराज जी मुस्कराते हुए कमरे में आये और फ़रमाया - " सतीश बाबू, तुममें इतनी भी अकल नहीं थी कि फर्श चिकना है, सीढ़ी के नीचे कुछ लगा लेते या फिर किसी दूसरे की मदद ले लेते। ख़ैर, जो हुआ ठीक ही हुआ। तुम मेज़ ही ले आओ और उसपर चढ़ कर किताबें रख दो।" न जाने मेरा कौन सा संस्कार बड़ी आसानी से कटवा दिया। यह उनकी असीम कृपा एवं दया ही थी।

हमारे यहाँ की एक उक्ति है -

' हम नशीनी सा अते बा औलिया !

बहतर अज़ सद साल ताअत बेरिया !!

अर्थात सन्त की एक क्षण की सौहबत का जो असर होता है वह सालों की सच्चे दिल से की गयी तपस्या से बढ़कर है । मेरे जीवन में यह युक्ति चरितार्थ हुई -

सत्संग में आने पर मैंने जो प्रवचन सुने और जो हाल चक्रबेधी वंश के महापुरुषों का किताबों में पढ़ा, उससे मैंने यह जाना कि ऐरे-ग़ैरे मुझ जैसे आदमियों को पहले के दिनों में सत्संग में बैठने की इज़ाज़त नहीं होती थी। जब सत्संग होता था, जिसे सूफ़ियों में 'हल्क़ा' कहते हैं, तब सब दरवाज़े बन्द कर दिए जाते थे, केवल अधिकारी लोग ही अन्दर बैठ सकते थे । यदि भूले-भटके ग़लती से कोई आ भी जाये तो उसे अपने प्रेम के रंग में, अपने प्यारे प्रीतम के रंग में ऐसा रंगते थे कि निकल कर न जाने पाये। इस वंश की यह टेक बिलकुल सच्ची है ।

यह प्रेम का रास्ता है । यहाँ प्रेम की पूजा होती है और यहाँ प्रेम से बाँधकर अपनाया जाता है । पूज्य चच्चा जी महाराज कहा करते थे -

दो तरीक़े हैं वफ़ा के, आज़मा कर देख लो,

या तो बन जाओ किसी के, या बना कर देख लो !

मेरे गुरुदेव प्रेम के अवतार थे । उनके चारों ओर प्रेम का सागर लहराता था, उनकी महफ़िल में, उनकी सौहबत में, उनकी सीधी बेबाक बातों में, उनके सरल स्वभाव में, उनकी आँखों में, उनके व्यवहार में, प्रेम ही प्रेम झलकता था। जिसको देखो यही कहता था कि गुरुदेव जितना प्रेम मुझसे करते हैं शायद किसी और से नहीं करते।

अब उनका स्थूल शरीर नहीं रहा जिससे वे लौकिक व्यवहार करते थे और जिसे देखकर हम तृप्त होते थे । आज भी ये ऑखें उनकी उस माधुरी छवि को देखने के लिए तरसती हैं । आज भी कान उनकी भोली-भाली बातें, प्रेम पूर्ण आदेश और ग़लतियों पर ताड़ना सुनने के लिए तरसते हैं। मस्तक उनके कोमल चरण कमलों में झुकना चाहता है । परन्तु वे तो शरीर के पिंजड़े को तोड़कर सर्वव्यापी हो चुके हैं।

गुरुदेव अक्सर यह कहा करते थे कि " शरीर रहते हम आपकी उतनी सेवा नहीं कर सकते जितनी शरीर से आज़ाद होने पर "। यह बात, क्या मैं और मेरे अन्य भाई, प्रत्यक्ष अनुभव नहीं करते हैं ? गुरुदेव की अविरल कृपा, उनका अगाध प्रेम, चारों ओर छाया हुआ पाते हैं। एक सन्त की इससे बढ़कर महानता और क्या हो सकती है?

oooooooooooooooooo

गुरुदेव के कुछ स्फूर्तिदायक संस्मरण

- श्री सच्चिदानंद लाल, वाराणसी

सन्तों का दर्शन पुण्यदायी है । सन्त तीर्थ रूप हैं। तीर्थों का दर्शन तो कालान्तर में फलप्रद होता है, पर सन्तों का दर्शन तत्काल फलदायी होता है । जिस महापुरुष के सम्पर्क में रह कर साधु हो जायें, वही सच्चे सन्त हैं, अथवा जो जानवर से आदमी बना दे वही 'सन्त' है । प्रातः स्मरणीय परमसन्त महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी साहब ऐसे ही महान सन्त थे ।

लेखक बचपन से ही बुरी संगति का शिकार हो गया था, पर साथ ही सन्तों के दर्शनों का भी बड़ा चाव था। सन 1958 में गुरुदेव का आगमन बनारस में हुआ। मेरे मित्र, भाई विश्वनाथ जी, की प्रेरणा से उन महापुरुष के दर्शन हुए। दूसरे दिन प्रातः गुरु महाराज ने मुझे एकान्त में बुलाया। वहाँ कुछ बातें हुईं। मैंने अपनी दुर्बलताओं को खुलकर सुना दिया और कहा कि मेरे जैसा पतित आपके सत्संग का अधिकारी नहीं है । इस पर आपने ज़ोरों से अट्टहास करते हुए कहा - " मैं यहाँ आया किस काम से हूँ ?" उन्होंने मुझे बड़े प्रेम से सान्त्वना देते हुए कहा - "आप निराश न होवें, परमात्मा ने चाहा तो सब ठीक हो जावेगा और हो सके तो आप मुझसे एक बार ग़ाज़ियाबाद में मिलें।"

मुझे घूमने-फिरने का बड़ा शौक़ है । सोचा, चलो इसी बहाने दिल्ली भी देख लूंगा। लगभग एक माह बाद मैं ग़ाज़ियाबाद गया। वहाँ चार दिन रहा। मैंने देखा कि गुरु महाराज और लोगों से तो बड़े प्रेम से बातें करते थे और मुझसे कुछ नहीं बोलते थे । तब मैं मन ही मन बहुत पछताने लगा और सोचा कि व्यर्थ ही यहाँ आया। आप तो अन्तर्यामी थे । आपने मेरी भावना तत्काल ही ताड ली। आपने मुझे बुलाकर कहा कि, "मैं आपसे बात नहीं करता हूँ तो आप यह न समझ लें कि मैं आपकी तरफ़ मुख़ातिब नहीं हूँ। मेरा ख़्याल बराबर आपकी तरफ़ बना हुआ

है । आपको जो बताया है, करते रहिये।" इतना सुनकर मैं बहुत लज्जित हुआ और साथ ही आप में विश्वास दृढ़ हो गया।

दूसरे दिन कालका मेल से मुझे वाराणसी वापस जाना था। प्रातः सात बजे तक आम सत्संग समाप्त हुआ। सभी भाई चले गए। लगभग आठ बजे आपने सत्संग वाले कमरे के सभी खिड़की दरवाज़े बंद करके मुझसे कहा - ' आइये, एक बार और बैठ लें।" इस बार की बैठक का जो अनुभव हुआ वह अवर्णनीय है । आपने अपने अविरल प्रेम के अथाह समुन्द्र में डुबो दिया। अब तो सिवाय बिलख-बिलख कर रोने के, न कुछ कहना था न कुछ सुनना था। अपने बहुत कुछ समझाया पर मैं तो प्रेम के अथाह समुन्द्र में गोते लगा रहा था। अन्त में आपने भाव-विभोर होकर मेरी बाँह पकड़ कर उठाया और कहा कि - " आप की गाड़ी का समय हो गया, अब आप जायें।"

मेरा मन जाने को नहीं करता था, अतः कलेजे पर पत्थर रखकर चरण स्पर्श किया और चल पड़ा। मेरी हालत पागलों की सी हो गयी। गाड़ी में बैठे-बैठे कभी अपने भाग्य को सराहते हुए बड़ा गर्व होता था और कभी आँखों में आँसू भर आते थे और मैं रुमाल से मुँह छिपा लेता था ताकि कोई देखकर यह न समझ ले कि मैं पागल हूँ। घर आने पर मेरी हालत बिलकुल पागल की सी थी। मैं बहुत कम बोलता था। जहाँ भी बैठता गुरु महाराज की महत्ता को ही याद करता था और कभी हँसता था, कभी रोता था। रात दिन गुरु महराज के प्रेम के नशे में सराबोर रहता था। घर वाले मेरी दशा देखकर घबड़ा गए थे ।

दिन बीतते गए। गुरु प्रेम का चस्का मुझे लग गया था। एक माह बाद मैंने पुनः ग़ाज़ियाबाद आने की अनुमति चाही पर आपने लिखा कि अभी आने की ज़रूरत नहीं है । मेरी तड़प और बढ़ गयी। निरन्तर आपकी याद में डूबा रहता था, रात-दिन आपके विरह में रोता रहता था। सिवाय गुरु महाराज की याद के और कुछ नहीं भाता था। खाना पीना अच्छा नहीं लगता था। रात में नींद हराम हो गयी थी। वैसे मैंने सुना था कि भक्त के लिए भगवान तड़पते हैं - सो यहाँ चरितार्थ पाया। ऐसा हुआ कि जितना मैं यहाँ तड़पता था, उतना ही गुरु महाराज को भी मेरी याद आती थी। चूँकि मैं बिलकुल नया सत्संगी था, गुरु महाराज ने अपनी डायरी में मेरा पता नहीं नोट किया था। गुरुदेव के किसी से मेरा पता मालूम करके मुझे ग़ाज़ियाबाद

बुलाया। मैं वहाँ जाकर तीन दिन रहा। दूसरी रात लगभग आठ बजे आपकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा हुई, आपने कहा -" आइये, हम पूजा पर बैठेंगे।"। इस बार बैठने के साथ ही मेरे सारे शरीर में रोमांच होने लगा और शनैः शनैः मैं कांपने लगा। यह कम्पन असह्य हो गया और साथ ही ऐसा लगता था कि शरीर साथ नहीं है । मैं बिलकुल असमर्थ था। कुछ बोल भी नहीं पाता था। लगभग आधे घंटे तक मेरी यही दशा रही। तब गुरु महाराज ने " हे प्रभु, हे राम " कहते हुए अपनी समाधि तोड़ी। तब मैंने कहा कि मुझे बहुत ठन्ड लग रही है और उठने से लाचार हूँ। तब हँसते हुए उठे और दो कम्ब्ल और एक रज़ाई मेरे ऊपर डाल दिए। आधे घंटे के बाद मैं पूर्णतः स्वस्थ हो गया। दूसरे दिन गुरु महाराज ने पूछा, मैंने सब कुछ निवेदन कर दिया। तब आपने कहा कि - ' यदि और ऊपर खेंचते तो तुम्हारा शरीर टूट जाता।" मैंने अपने भाग्य को सराहते हुए चरण स्पर्श किया और मन ही मन उनको बहुत-बहुत धन्यवाद दिया।

गुरु महाराज परम दयालु तथा अत्यधिक उदार थे । कोई जरा भी सच्चे भाव से आपके सामने जाता वही आपके प्रेम का अधिकारी बन जाता और आप उसे अपने प्रेम से मालामाल कर देते थे और कहा करते थे कि ' हर बाप चाहता है कि उसका बेटा उससे भी बड़ा हो।'

अब उनका स्थूल शरीर नहीं रहा । लगता है कि वैसा प्यार कौन दे सकेगा। स्थूल आँखें उन्हें ढूंढती हैं। केवल उनकी याद बाक़ी है, जो कलेजा कोंचती रहती हैं। उसी का सहारा है जो जीवित रह रहा हूँ।

oooooooooooooo

<u>सुधा बिन्दु</u>

- वैराग्य सत्संग से पैदा होता है और आत्मा को शक्ति मिलती है ।

सत्संग से मन का मैल धुलता है ।

- पुरुषार्थ करो। यही निज कृपा है ।

दिव्य आत्मा आई, हम पहचान न पाए

- श्री रमेश चन्द्र जौहरी, ग्वालियर ।

जब-जब होय धरम की हानि।

तब-तब मैं लेयहौं अवतारा !!

यह प्रवचन भगवान श्रीकृष्ण जी ने महाभारत में अपने श्रीमुख से स्वयं कहा था। इसकी पुष्टि भी होती है । हमारी भारत-भूमि पर अनेक अवतार होते रहे हैं। इसी पृष्ठभूमि में महान सन्त गुरु नानक जी, चैतन्य महाप्रभु, कबीर, खुसरो, दादू मुलकदास, तुकाराम, रामकृष्ण परमहंस, अरविंद घोष और हमारे गुरुजन महात्मा रामचन्द्र जी महाराज, फतेहगढ़ी एवं पूज्यपाद डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी सिकन्दराबादी आदि ने जन्म लेकर मातृभूमि को पवित्र किया।

एक बार पूज्य गुरुदेव डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी महाराज ग्वालियर सत्संग हेतु पधारे तथा पूज्य बहन उर्मिला जी के निवास पर रेलवे कॉलोनी में प्रवचन दे रहे थे । पूज्य गुरुदेव ने कहा , " दूसरों में जब तक दोष दिखाई दें, तब तक समझना चाहिए कि अभी जागृति पूर्ण नहीं हुई।" वह कहते थे कि "बोध और क्रोध कभी साथ नहीं चल सकते। क्रोध आया तो बोध गया और बोध आया तो क्रोध कैसा? " तुलसीदास जी कहते हैं कि -

' तुलसी दोनों न रहें, रवि रजनी एक ठौर '

फिर गुरुदेव 'सज्जन और दुर्जन ' का भेद समझा रहे थे । वे बता रहे थे कि दुर्जन का मिलन दुःखद होता है और सज्जनों की बिदाई दुःखद होती है । लेकिन सज्जनता से भी ऊपर उठे व्यक्तित्व का मिलन भी प्रीति से भर देता है और विदाई भी । अतः सदा सज्जन पुरुषों या सन्तों की सेवा में जाकर प्रयास यह करें कि उनका अनुसरण करें। अनुकरण में उपकरण जुटाने पड़ते हैं जबकि अनुसरण में उस तरह का जीवन जीना होता है । मन को गुरु चरणों में समर्पण करना होता है । मन बहुत छलिया होता है । उसमें मलीनता छायी रहती है । गुरुदेव कह रहे थे

कि मन दो कारणों से मलिन होता है । पहला विशेष (दूसरों के कारण) दूसरा पाप करने पर (स्वयं के कारण) भगवान, भक्ति और सत्संग के लिए ये 'दोहरा पथ ' त्यागना होगा क्योंकि कपड़ा और फटाके की दुकान का, या केरोसीन तेल बेचने वाला वहीं घी बेच सकेगा, यह सम्भव नहीं है । आगे वे साधु और सत्संग का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहते हैं - साधु-संत हेम (सोना) नहीं देते, नेम (नियम) देते हैं। वे केवल प्रेम देते हैं। वे कहते हैं कि सन्त पुरुष फूल की तरह हैं - वह दाये-बायें जहाँ भी रहते हैं सुगंध बिखेरते हैं। ऐसे सन्तों की संगत मिल जाने से जीवन में परिवर्तन का दौर शुरू हो जाता है । कहा है -

शाखों को तुम क्या छू आये,

काँटों से भी ख़ुश्बू आये !

कोई तो हमदर्द है मेरा,

आप न आये, आँसू आये !!

उन्होंने फ़रमाया - " जिनका चित्त समान और सरल है वही सन्त प्रेम का दान दे सकते हैं । गुरु चरणों में जाते समय सेवा की भावना होनी चाहिए। सेवा के लिए समता चाहिए, ममता चाहिए, क्षमता चाहिए और अन्त में विनम्रता चाहिए। वगैर विनम्रता के कुछ नहीं मिलेगा।"

ऐसे थे पूज्य गुरुदेव कि वे वेदों और पुराणों के गूढ़तम तत्व निकालकर व्यावहारिक ज्ञान की गंगा में ओत-प्रोत कर देते थे । गुरुदेव कहते थे कि तुम दूसरों को सुख देना शुरू कर दो, तो वह प्रतिध्वनि की तरह लौट कर तुम तक आ जायेगा। इसी तरह दूसरों को दुःख देने से भी यही स्थिति उत्पन्न होती है । दुःख लौटकर खुद के गले पड़ता है ।

दिव्य आत्मा आयी किन्तु कमी रही हमारी कि हम पहचान न सके। पूज्य गुरुदेव की कृपा सब पर समान भाव से थी। परिजन, पुरजन एवं प्रियजन सब स्वयं ही इस तथ्य के साक्षी हैं कि ममता के असीम सागर, गुरुदेव करुणा से लबालब थे । प्रेम के अवतार थे । कितना कुछ उन्होंने नहीं दिया। किसी को भौतिक उपलब्धि, भक्ति, ज्ञान, शक्ति, परमार्थ और रूहानी चढ़ाई, तो किसी को कष्टों से मुक्त कर दिया। उनकी 'रिज़र्व बैंक ' में कहीं कोई कमी नहीं थी, कमी केवल हमारी ही रही ।

रँगे महफ़िल जमा गया कोई

रँगे महफ़िल जमा गया कोई,

बात बिगड़ी बना गया कोई !

रस्मे उल्फ़त सिखा गया कोई,

बज़्मे हस्ती पै छा गया कोई !

बख़ुदा मस्त मस्त आँखों से,

जो न पी थी पिला गया कोई !

दिल की दुनियाँ उजाड़ सी क्यों है,

क्या यहाँ से चला गया कोई ?

ता क़यामत किसी तरह न बुझे,

आग ऐसी लगा गया कोई !

हश्र तक भी न मिट सके दिल से,

दाग़ ऐसे लगा गया कोई !

वीराने-दिल के ख़ास गोशों में,

शमए हसरत जला गया कोई !

तू ही ऐ मौत अब क़रम फ़रमा,

मुझसे दामन बचा गया कोई !

बाद मुद्द्त गले लगा के ऐ 'ज़ौक़'

हँसते, हँसते रुला गया कोई !

महती गुरु-कृपा का प्रसाद तो मिला,

पर .....गुरु दक्षिणा न दे पाया ।

- प्रो० रमेश प्रसाद सिन्हा, मुज़्ज़फ़रपुर।

सन्त सद्गुरु डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी महाराज ने बड़ी आसानी से इस अकिंचन की झोली में दया, कृपा और प्रेम के फूल डाल दिए जिनकी खुशबू आज भी मेरे जीवन में महकती है, फैल रही है । उस महादानी प्रभु ने अपना शिष्य बनाकर मुझे जीवन दान दिया, परन्तु मैंने उनको गुरु-दक्षिणा में कुछ नहीं दिया। उनके विचार में भजन, सुमिरन और अभ्यास ही गुरु की सच्ची दक्षिणा है, जिसे मैं उनके चरणों में समर्पित नहीं कर सका।

पहली बार सन 1962 में उस महान सन्त के दर्शन करने का शुभ अवसर समस्तीपुर में प्राप्त हुआ था और प्रथम दर्शन के शुभ अवसर पर ही उन्होंने मुझे ऊँची शिक्षा प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। मैंने अपना जीवन बी।एस।सी। पास करने के बाद एक स्कूल मास्टर के रूप में प्रारम्भ किया था परन्तु गुरु का आशीर्वाद कभी ख़ाली नहीं जाता और आज में व्याख्याता के पद पर कार्यरत हूँ और साथ ही साथ PhlD। की डिग्री प्राप्त कर मैंने उच्च शिक्षा गुरु के आशीर्वाद की बदौलत हासिल कर ली।

मनुष्य एक विचित्र स्वभाव वाला प्राणी है । जो चीज़े उसे आसानी से मिल जाती हैं, उनकी महत्ता के बारे में वह कभी नहीं सोचता चाहे वह वस्तु कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो। और जब वह वस्तु खो जाती है, टूट जाती है या आँखों से ओझल हो जाती है तब उसकी महत्ता समझ में आती है । उसकी स्मृति से ह्रदय में एक वेदना और दर्द के सिवाय कुछ नहीं मिलता। वस्तुतः मैं भी इसी श्रेणी का सदस्य हूँ और आज अपने ह्रदय में एक दर्द, एक टीस और एक वेदना महसूस कर रहा हूँ - यही मेरा पश्चाताप भी है ।

सन 1962 से प्रतिवर्ष लगातार पूज्य गुरु महाराज के दर्शन होते रहे और उनसे नज़दीकी होती गयी। यह नहीं बता सकता कि उनके प्रेम में कैसा जादू था, कैसा आकर्षण था कि एक

पूर्णतः दुनियादार होते हुए भी समस्तीपुर में वे जब भी पधारे मैं उनके दर्शन करने अवश्य जाता था। ज्येष्ठ माह की चिलचिलाती धूप में चलने वाला थका हुआ पथिक पेड़ की छाया में पहुँचने पर जो आनन्द, शान्ति और शीतलता का अनुभव करता है, वैसा ही मैं उन निकट जाने पर महसूस करता था।

सन 1968 में मैं काफ़ी बीमार हो गया। अपने जीवन से मैं काफ़ी निराश और परेशान रहने लगा। तब अचानक मुझे यह ज्ञान हुआ कि वे मेरी ओर कभी-कभी रहस्यपूर्ण निगाह से क्यों देखते थे । मैंने सारी बातें उनके चरणों में पत्र के माध्यम से निवेदन कीं। पत्र लिखने के कुछ दिनों बाद एक दिन कॉलेज में मुझे ऐसा महसूस हुआ कि पूज्य गुरुदेव मुझे अपने पास बुला रहे हैं और उसी क्षण कॉलेज में ही मैंने पैसे का प्रबन्ध किया और टैक्सी लेकर ही कॉलेज से मैं घर पहुँचा। अचानक टैक्सी देखकर घर वाले आश्चर्य में पड़ गए क्योंकि पहले से ऐसी कोई सूचना नहीं थी। मैं और मेरी पत्नी गायत्री, अपने पिता जी एवं पपू (छोटा भाई) के साथ सिकन्दराबाद के लिए प्रस्थान कर गए। हम लोग १६ जुलाई १९६८ को दिन में करीब तीन बजे सिकन्दराबाद पहुँचे थे ।

पहुँचने के साथ ही ऐसा लगा कि गुरु महाराज हम लोगों का इन्तज़ार कर रहे थे । दर्शन करने के तुरन्त बाद उन्होंने कहा कि " आपके पास पूरियाँ बची हुई होंगी और किचेन में सब्ज़ी काफ़ी बची हुई है, अतः मुँह-हाथ धोकर पहले आप लोग भोजन कर लें, फिर बातें होंगी।" बाद में शर्मा बहिन जी ने बतलाया कि गुरु महाराज ने उस दिन पहले से ही सब्ज़ी अधिक बनवाई हुई थी।

उस दिन शाम को हम लोगों ने गुरु महाराज के साथ सत्संग किया। सत्संग समाप्त होने के बाद बड़ी देर तक मेरे पिता जी (जिन्हें बड़े प्रेम से 'भोलानाथ' कहकर पुकारते थे) से गुरु महाराज बातें करते रहे। उनकी बातें सुनीं तो विश्वास हो गया कि प्रेम के देवता, पूज्य गुरुदेव ने मुझे जीवन-दान देने के लिए ही सिकन्दराबाद बुलाया है ।

परम कृपालु, परम तपस्वी और परम त्यागी की उस कुटिया में सिकन्दराबाद में क़रीब-क़रीब चार माह तक उनके साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैं बीमार था, इसलिए गुरु महाराज प्रति क्षण मेरी देख-भाल करते और इस बात का ख्याल रखते कि मेरे रहने-सहने,

खाने-पीने इत्यादि में कोई कसर न रहे। प्रतिदिन सुबह मुझे अपने साथ टहलाने ले जाया करते और कहते कि ***" सुबह का टहलना अनेक बीमारियों की अचूक दवा है ।*** सुबह टहलने से आप जल्द अच्छे हो जायेंगे।" रात में खाना खाने के बाद निश्चित रूप से अपनी थाली में से मेरे लिए रोटी-दूध छोड़ देते और बुलाकर कहते - 'बेटे, इसे खा लो' जिसे मैं प्रसाद के रूप में नियमित रूप से खाता रहा। यह मेरा कैसा सौभाग्य था ? उनके दिए प्रसाद में कौन सी विशेषता थी, मैं नहीं जानता परन्तु आहिस्ता -आहिस्ता मेरी खोई हुई जीवनी शक्ति वापस आने लगी।

रात्रि में सोने के समय मैं उनके पैर दबाया करता था। वैसे इसके वे आदी नहीं थे और न किसी सज्जन को इस बात की इज़ाज़त थी। लेकिन सेवा के रूप में मैं इस काम को करता था जो मुझे बाद में पता चला कि मेरे द्वारा पैर दबाने पर उन्होंने आपत्ति क्यों प्रगट नहीं की। एक दिन अचानक पैर दबाते समय उन्होंने विज्ञान के छात्र होने के कारण बताया कि, Pointed conductor से बिजली अधिक प्रवाहित होती है । इसलिए उन्होंने फ़रमाया कि मेरे शरीर को अपनी अँगुलियों के नुकीले भाग से स्पर्श करो ताकि मेरे शरीर की बिजली तुम्हारे शरीर में अधिक मात्रा में प्रवेश करे ताकि तुम जल्द से जल्द स्वस्थ हो सको।" मैंने वैसा ही किया जैसा गुरु महाराज चाहते थे तथा उनकी स्नेहमयी कृपा से मैं बहुत जल्द निरोग हो गया।

फिर भी वह अपनी शक्ति को ज़ाहिर करना नहीं चाहते थे और इस पर पर्दा देने के उद्देश्य से एक दिन सुबह बुलाकर मुझसे उन्होंने कहा - " बेटे,ऐसे तो आप बीमार नहीं हैं लेकिन आप स्वयं कहते हैं कि मैं बीमार हूँ, इसलिए आप मेरठ में डॉ०जे।एम्।चौधरी साहब के पास चले जाएँ, मैं उनके नाम से एक पत्र दे देता हूँ।" उन्होंने मुझे पत्र लिखकर दिया और फ़रमाया कि " चौधरी साहब डाक्टर भी हैं और एक उच्च कोटि के सन्त भी हैं। इसलिए बहुत अदब के साथ उनसे बातें करना। बेटे, सन्त महात्मा के पास ख़ाली हाथ नहीं जाना चाहिए, अतः आप प्रसाद अवश्य ले लेंगे और शाम तक लौटकर आ जायें।" गुरुदेव का संक्षिप्त पत्र डाक्टर चौधरी साहब के नाम यों था :-

डाक्टर साहब, सप्रेम नमस्ते ।

पत्र लाने वाले मेरे प्रिय सत्संगी के पुत्र हैं। इनका कहना है कि ये बीमार हैं। अतः इनको दवा कम और आपकी दुआ अधिक चाहिए।

आपका सेवक,
श्रीकृष्ण

पूज्य गुरुदेव के आदेशानुसार मैं उनके कृपा पत्र और प्रसाद के साथ मेरठ पहुँचा। कम्पाउंडर के माध्यम से गुरु महाराज के पत्र को डाक्टर साहब के पास पहुँचा दिया। पत्र पढ़ते ही रोगियों की अपार भीड़ में से डाक्टर साहब निकलकर मेरे पास आ गए और मुझे अपने ड्राइंग रूम में बैठाकर बोले - " मैं थोड़ी देर में आ रहा हूँ। आप बैठें।" करीब आधे घंटे के बाद डाक्टर साहब आ गए और मेरे सामने बैठकर गुरुदेव के पत्र को बार-बार पढ़ते और 'सेवक' शब्द का उच्चारण करके मौन हो जाते। डाक्टर साहब कई बार मुझसे कह गए कि, " भाई साहब, आपके गुरुदेव मेरे सेवक नहीं हैं, मैं उनका सेवक हूँ।" मैं ख़ामोश बैठा रहा और मैंने ऐसा महसूस किया कि पूज्यनीय चौधरी साहब के ह्रदय में पूज्य गुरुदेव के प्रति अपार श्रद्धा है ।

थोड़ी देर बाद उन्होंने रोग के बारे में पूछा और उन्होंने भी उन्हीं शब्दों को दोहराया जैसा कि हमारे गुरु महाराज ने कहा था कि " आपको कोई बीमारी नहीं है । वैसे मैं दवा दे देता हूँ, आप ठीक ही रहेंगे।" चलते समय डॉ०चौधरी साहब ने मुझसे कहा कि मैं अपने गुरुदेव के चरणों में उनका नमस्कार निवेदन कर दूँ और यह भी कहा कि " वे मेरे सेवक नहीं हैं, मैं उनका सेवक हूँ।" मेरठ से लौटकर जब मैंने सारी बातें गुरुदेव को सुनायीं तो गुरुदेव मुस्करा उठे और मैं उनकी मुस्कुराहट को देखकर मंत्रमुग्ध होता रहा और आज भी याद करके मेरी वैसी ही हालत हो जाती है ।

गुरु तो सर्व-व्यापक परमात्मा में बराबर लीन रहते हैं, अतः गुरु भी सर्वव्यापक हैं, सर्वज्ञ हैं, अन्तर्यामी हैं। हम गुरु की आँख बचा कर बुराई करते हैं, गलती करते हैं और यह सोचते हैं

कि वे हमें नहीं देख रहे हैं, यह हमारी अज्ञानता ही। वे तो हमें सर्वथा देखते रहते हैं। उनसे हम कोई चीज़ छिपा नहीं सकते। यह बात मेरे साथ हुई निम्न घटना से सिद्ध हो गयी :-

एक बार एक सत्संगी भाई के साथ बाज़ार में जाकर सिगरेट पी और फिर ग़ाज़ियाबाद आकर सिनेमा देखने का प्रोग्राम बनाया। जाने की आज्ञा लेने जब गया तो गुरुदेव ने कहा - " अच्छा हो आओ और ये रूपये लो। आप लोग सिगरेट पी लें।" हे प्रभु, इन्हें कैसे पता लग गया ?" यही नहीं - उसी दिन शाम की संध्या के बाद पिता जी और पत्नी से कहा कि - " रमेश अभी ग़ाज़ियाबाद में सिनेमा देख रहा है ।"

परमसन्त डॉ०श्रीकृष्ण लाल जी प्रेमरूप परमेश्वर ही तो थे । उनका ह्रदय तो प्रेम का लहराता हुआ सागर था। उनके ह्रदय में हम सत्संगी भाइयों के प्रति कितना प्रेम था, इसका अन्दाज़ा हम नहीं लगा सकते। अपनी तुच्छ बुद्धि से उनके प्रेम की गहराई को समझना मुश्किल है ।

वे सज्जन और दुष्ट सभी को एक समान प्रेम करते थे क्योंकि वे प्रेम रूप थे और प्रेम करना उनका सहज स्वभाव था। एक बार मेरे पिता जी रात्रि में सोने के समय खाट उठाकर बाहर लगाना चाह रहे थे । पूज्य गुरुदेव ने देख लिया और वे कहने लगे - " अरे भोलानाथ, तुमसे यह खाट नहीं उठेगी " और वे स्वयं खाट उठाकर बाहर ले गए।

सन 1968 के भण्डारे में हम पति-पत्नी को दीक्षा देकर आपने अपनी शरण में ले लिया। हम लोग उस महादानी के दरबार से भर-भर झोली आशीर्वाद लेकर अपने घर लौटे। मेरे पिता श्री भोलानाथ की झोली में उनके पुत्र रमेश का जीवन-दान मिला, मेरी पत्नी गायत्री के आँचल में अचल सुहाग का आशीर्वाद मिला और मेरी झोली में जीवनी-शक्ति मिली। परन्तु आज मुझे अफ़सोस है कि उस परमसन्त, परम स्नेही, परम दयालु और उस परम ज्ञानी परम गुरु के श्री चरणों में गुरु दक्षिणा (अर्थात भजन, सुमिरन और अभ्यास की भेंट) अर्पित नहीं कर सका। आज में ख़ाली हूँ। उनकी जन्म-शताब्दी के इस पवित्र अवसर पर उन्हें भेंट करने के लिए मेरे पास आंसुओं के सिवा कुछ भी नहीं है ।

वर्तमान अध्यक्ष आचार्य पूज्य डॉ०करतार सिंह जी के चरणों में, जिनमें उन्हीं के स्वरुप का आभास होता है - भजन, सुमिरन और अभ्यास अर्पित करके गुरु दक्षिणा से उऋण होने का अवसर अब भी उपलब्ध है । मेरा सतत प्रयास जारी है एवं पूज्य गुरु महाराज डॉ।श्रीकृष्ण लाल जी की जन्म शताब्दी के शुभ अवसर पर उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे मुझे शक्ति दें और मुझ पर कृपा करें ताकि मैं गुरु-दक्षिणा से उऋण हो सकूँ।

आज हम श्रद्धान्जली उस

देव को अर्पित करें !

जन्मशती की शुभ घडी पर

अर्चना उनकी करें !!

oooooooooooooooo

एक दुर्व्यसन से छुटकारा

- श्री के० एस० सक्सेना, नई दिल्ली।

उन दिनों में लाटरी का टिकट बराबर खरीदता रहता था, इस उम्मीद से कि किसी दिन लाटरी की बदौलत मैं लखपति बन जाऊँगा।

ऐसा ही एक टिकट मैंने पंजाब लाटरी का खरीदा था - जिसमें प्रथम पुरस्कार पाँच लाख रुपयों का था। उन दिनों श्री गुरुदेव जी अपने स्वास्थ्य परीक्षण के लिए तिमारपुर अपने छोटे भाई साहब (पूज्यनीय श्री गिरवर कृष्ण जी) के यहाँ आते रहते थे ।

एक दिन मालूम हुआ कि गुरुदेव तिमारपुर पधारे हैं। उसके दूसरे ही दिन पँजाब लाटरी खुलने वाली थी। शाम को घर पहुँचने पर मैंने बच्चों से कहा कि जल्दी तैयार हो जाओ, तिमारपुर गुरुदेव जी के दर्शनों के लिए चलना है । मैं सबको लेकर तिमारपुर के लिए चल दिया परन्तु रास्ते भर लाटरी का ख़्याल बना रहा कि प्रथम पुरस्कार मुझे ही मिलेगा और इसके साथ-साथ शेखचिल्ली के सपने देखता रहा। यही सोचते-सोचते चाचा जी के घर पहुँच गया और गुरुदेव जी की चरणरज लेकर एक तरफ़ बैठ गया। उन्होंने बड़े प्रेम से जलपान कराया और फिर फ़रमाया -" बाबू साहब, थोड़ी देर आन्तरिक सत्संग कर लें।" आन्तरिक सत्संग के बाद उन्होंने प्रवचन शुरू किया जो इस प्रकार था :-

" सत्संग में आकर कोई-कोई यह सोचता है कि लाटरी के सहारे वह लखपति बन जायेगा। मैं इस प्रकार किसी को लखपति नहीं बनने दूँगा क्योंकि वह यह नहीं समझते कि एक रूपये के टिकट से एक लाख या इससे अधिक की उम्मीद करते हैं। अगर यह लाटरी निकल आयी तो एक रूपये के बदले उन्हें 99,999 रूपये अधिक मिलेंगे अर्थात 99,999 आदमियों का क़र्ज़ उन पर हो गया। कितने जन्मों में यह क़र्ज़ उतरेगा। मैं तो घर उजाड़ता हूँ पर वायदा करता हूँ कि इज़्ज़त से दोनों समय खाने की कमी नहीं रहेगी। "

जब गुरुदेव जी यह सब फ़रमा रहे थे तब मेरी हालत अज़ीब थी क्योंकि ये बातें मेरे लिए ही कहीं जा रहीं थी। उस समय ऐसा लगता था कि न मालूम कितने घड़े पानी मेरे ऊपर गिर

गया हो। मैं मन ही मन बहुत शर्मिंदा था और उसी समय प्रण किया कि अब लाटरी का टिकट कभी भी नहीं खरीदूँगा।

चलते समय मैंने फिर उनकी चरणरज ली। तब फिर उन्होंने फ़रमाया कि - " बाबू साहब, आप इस तरह के पैसे का कभी ख़्याल न करें।परमात्मा आपको हमेशा खुश रखेगा।" घर आकर पहला काम यह किया कि लाटरी की टिकट को फाड़कर फेंक दिया और कसम खाई कि भविष्य में ऐसे टिकट कभी नहीं खरीदूँगा और उसके बाद मैंने ऐसे टिकट कभी नहीं खरीदे।

गुरुदेव की कृपा से उसके बाद मुझे किसी चीज़ की कभी कमी नहीं रही। ऐसे थे हमारे गुरुदेव - मुझे व सबको सही और सच्चा रास्ता दिखाने वाले।

oooooooooooo

इस अकिंचन को प्रथम भेंट में ही आश्वासन

- श्री रामजी लाल शर्मा, अलवर।

आज से कोई 24 वर्ष पूर्व सेवक की मानसिक हालत डावाँडोल हो गयी थी तो मन बहलाने की दृष्टि से श्री बी।पी। शर्मा, जयपुर के पास चला गया। वे उस रोज़ श्री हर नारायण सक्सेना के यहाँ सत्संग में जा रहे थे । शुक्रवार का दिन था, मैं भी उनके साथ चल दिया। श्री सक्सेना साहब ऐसे लगे जैसे पहले से कभी जान पहचान हो। सत्संग समाप्ति के पश्चात् श्री शर्मा जी एवं श्री ओ।पी। जौहरी साथ-साथ आ गए। श्री जौहरी साहब से वाद-विवाद के पश्चात् वे अपने मकान पर चले गए तथा मैं श्री शर्मा जी के यहाँ दो-चार रोज़ रहा, फिर मैं गाँव आ गया।

श्री जौहरी साहब ने पत्र द्वारा सूचित किया कि यदि चाहो तो अलवर में श्री जुगल किशोर जी से मिल लो। मैं पत्र लेकर उनकी सेवा में पहुँच गया। जलपान के पश्चात् सांयकाल सत्संग में साथ लेकर बैठे। सत्संग के नियमों से अनभिज्ञ धर्मशाला में जाकर सो गया। आदेशानुसार प्रातः 7 बजे उपस्थित हो गया। चलने लगा तो आदेश हुआ कि मैं अमुक दिन महाराज जी की सेवा में दिल्ली जा रहा हूँ, यदि चलना चाहो तो आ जाना।

यह बक्सर भण्डारे की बातें हैं, जहाँ परम पूज्य गुरु महाराज के प्रथम दर्शन मिले और बात हुई ।

पूज्य जुगल किशोर जी के साथ पहले परम पूज्य सरदार जी भाई साहब के यहाँ पहुँचे । जलपान के पश्चात् मालूम हुआ कि सत्संग अमुक जगह है । वह तो याद नहीं लेकिन सांयकाल का सत्संग वहीँ शायद श्री मिश्रा जी के घर था। काफ़ी तेज़ सर्दी थी। खाना खाने के बाद सो गए। उस भव्य मूर्ति ने एक शब्द भी मुझसे नहीं कहा । प्रातःकाल सत्संग के पश्चात् सेवक को मास्टर जी कह कर बुलाया। सामने बैठ जाने का आदेश हुआ। मैं नीचे गर्दन झुकाये बैठा रहा । आश्चर्य भी हो रहा था कि ये कैसे जानते हैं कि मैं अध्यापक हूँ।

पुनः बोले " पेशा तो बहुत अच्छा है । आप तो स्वयं गुरु हैं, क्या शिक्षा दे सकते हैं हम ?" न जाने कैसे मैं फूट-फूट कर रोने लगा। धीरज बँध जाने पर पुनः प्रश्नोत्तर इस प्रकार हुआ -

" जाति से शायद ब्राह्मण हो ?" - - जी हाँ

" खाते पीते तो नहीं होगे ?" - - जी नहीं

" अब तुम लहसुन-प्याज़ भी छोड़ दो " अच्छा जी

मैंने पुनः हिम्मत करके पूछ ही लिया कि " यदि मेरा हिस्सा आपके पास हो तो मैं पुनः उपस्थित होऊं, क्योंकि मैं हंसादेश जी से दीक्षित था। जबाब मिला - " अगर तुम्हारा हिस्सा नहीं होता तो तुम यहाँ आते ही नहीं और आदेश हुआ कि जब भी समय मिले जुगल बाबू के साथ बैठा करो।" आदेश का पालन अभी तक निभाता आ रहा हूँ।

oooooooooooo

उजाले उनकी यादों के हमेशा रौशनी देंगे

- श्री रमेश चन्द्र वर्मा, कासगंज

" उजाले अपनी यादों के हमारे दिल में रहने दो,

न जाने ज़िन्दगी के मोड़ पर कब शाम हो जाये !!"

जब नगर में कोई बारात आती है तो मुद्द्तों पहले की गयी अपनी सब से छोटी बहन की शादी याद आ जाती है । परम् पूज्य श्री गुरुदेव ने हमारा निमंत्रण स्वीकार करके आयोजन में शरीक होने की कृपा की और अन्ततः उस आयोजन को सफल बनाने की दया दिखाई थी। बात यों हुई कि दोनों पक्षों को संतुष्टि प्राप्त हुई, धूम-धाम से बारात आई-गयी। किन्तु बचे हुए सामान जैसे आटा, घी, इत्यादि को देखकर मेरे मन में बिरादरी भोज का विचार उत्पन्न हो गया। बारात को रेल में सवार कर जब मैं घर लौटा तो दिन का प्रकाश फैलने में समय था। गाड़ी प्रातः पाँच बजे जाती थी और जाड़े के दिनों में प्रातः छह बजे भी अँधेरा ही रहता है ।

आप चारपायी पर कम्बल लपेटे हुए बैठे थे । जब मैं चरण स्पर्श कर चुका तो आपने पूछा :

" सब को आराम से बिदा कर आये।?"

" जी, हाँ, मैंने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

" लड़का देखा ?" आपने फिर पूछा।

" जी नहीं, अँधेरा बहुत था, कुछ दिखाई नहीं दिया।"

" लड़का सुन्दर और सुशील है । अब जाओ नहा धोकर अपने कपडे बदलो और कुछ खाकर थोड़ा सो जाओ। और देखो बिरादरी की दावत कल कर देना, आज आराम कर लो।

सगाई की बातचीत, रस्में, लगुन इत्यादि सब कुछ छोटे भाई ने ही किया था जो उसी शहर में था जहाँ से बारात आयी थी। शादी का प्रबन्ध और दौड़धूप मुझे ही करनी पड़ी और मैं इतना व्यस्त रहा कि विदा के समय न तो लड़के को देख पाया और न उससे बात ही हो पायी।

किन्तु बिरादरी भोज की बात इन्हें कैसे मालूम हुई? मैंने तो किसी से इसका ज़िक्र भी नहीं किया था। नहाने के लिए कपड़े उतारते समय मैंने देखा कि सारे कपड़े और हाथ-पैर काले पीले हो रहे हैं। विदा के समय स्टेशन पर अन्धेरा क्या इसलिए था कि मेरी बदसूरती किसी को दिखाई न पड़े ? असल में बीती रात विदाई की झालें और ठीक नाप-तोल से मिठाई भरते-भरते भट्टी के पास ही नींद द्वारा दबोच लिया गया था और इसी कारण कपड़े और हाथ-पैर काले-पीले हो गए थे । नहा-धोकर कुछ जलपान किया और कमरे में जा सोया।

दूसरे दिन दावत के लगभग साढ़े चार सौ निमंत्रण पत्र बाँट दिए गए, हलवाई को सात सौ पत्तलों का भोजन तैयार करने की फैहरिस्त (सूची) थमा दी गयी और शाम को पाँच बजे से भोजन करने वाले आने प्रारम्भ हो गए। तीन-चार पंगत ज़िमा दी गयीं। तब अचानक ही भाई ने आकर मुझसे कहा कि " न्योते हुए आदमी अलग-अलग करके आ रहे हैं और हरेक के साथ कोई रिश्तेदार या पड़ौसी आ रहा है । इस वक्त तक लगभग चार सौ खा गए हैं और अभी आधे आदमी भी नहीं हुए हैं।"

सुनकर तो मैं धक् से रह गया किन्तु गुरुदेव उठे और सीधे भण्डार गृह में पहुँचे, हमारे कुल पुरोहित कोठारी थे, उनसे बोले : " पंडित जी ! सारा सामान एक ही जगह पास-पास कर दीजिये और मुझे दिखाइए तो।" सामान देखा गया। उसकी मात्रा बहुत कम रह गयी थी। आपने अपने शरीर पर से चादर उतारी और उससे सारे सामान को ढक दिया।बोले " इसको हटाइये मत।इसके नीचे से ही सामान निकाल कर देते रहिये।" फिर मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बोले - "घबराओ मत, सब ठीक हो जायेगा।"

दावत चालू रही और हम सबके दिल धड़कते रहे। रात के दस बजे खाना-पीना समाप्त हुआ। सब काम वालों को भी खिला-पिला दिया गया, तब आपने आवाज़ लगा कर कहा - "पण्डित जी, अब आप मेरी चादर वापिस कर दीजिये। अब तो काम निपट गया है ।" पण्डित

जी चादर समेट कर, झाड़ कर तह करते हुए लाये, पेश करते हुए बोले, " महाराज यह चमत्कार जीवन में आज पहली बार देखा है । अब आप भी कुछ ग्रहण करने की कृपा करें।"

" कुछ बचा है ?" गुरुदेव ने पूछा।

"हाँ, कुछ चूर और साग भाजियों का रंग"।

"किन्तु मेरी गंगा मइया के भण्डार में तो काफी प्रसाद है । आप सब भी खा लें। समय काफ़ी हो गया है ।"

जो कुछ भी हलवाई बनाते थे उसमें से पहले कुछ निकालकर अपनी गंगा माँ और उसके सामने जलते हुए घृत दीप को अर्पित करके पास ही में रखी टोकरी में रखते जाते थे । यह उनका भोग था।

वे अपनी भोग की टोकरी उठा लाये और उस प्रसाद को श्री गुरुदेव, माताजी, हम दो भाई तथा स्वयं के लिए एक पत्तल पर परोस दिया। बचा भी रहा और सबके पेट भी भर भर गए।

अब न तो पूज्य गुरुदेव हैं और न मेरा वह भाई ! न वह बहन ही रहीं और न बहनोई। न माताश्री ही हैं और न पुरोहित जी। केवल मैं रह गया हूँ और रह गयी है उस कृपा की याद जो आज भी मेरे मन में प्रकाश फैला रही है ।

एक अविस्मरणीय संध्या

बात गुरूद्वारे के भण्डारे (सिकन्दराबाद) की है जब सभी भाई वर्ष में एक बार सत्संग लाभ के लिए वहाँ पहुँचते थे । पूज्य गुरुदेव का बड़ा मकान और उसके पीछे बने हुए स्कूल के सभी कमरे सत्संगियों की भीड़ से भर जाते थे ।

पुरुष शारीरिक शौच तथा स्नानादि के लिए नगर के पास ही बनी एक बगीची को जाते जहाँ, बाल्टी लोटा। हैण्डपम्प इत्यादि काफ़ी संख्या में उपलब्ध थे ।

मैं शायद दूसरी बार अपनी माँ के साथ वहाँ पहुँचा था। सूर्य तो उस समय अस्त हो गया था किन्तु कुछ प्रकाश अभी शेष था। मैं भी बगीची गया अन्य सत्संगियों के आगे-पीछे और

एक लोटा पानी लेकर बगीची की दूसरी दिशा में सीढ़ियों से उस ओर उतर लिया जहाँ कुछ सूखी ज़मीन के एक किनारे ऊँची-ऊँची घास दिखाई दे रही थी।

घास के पास पहुँच कर मुझे मालूम पड़ा कि शायद यह कोई बड़ी पोखर है अतः मैं किनारे-किनारे आगे बढ़ कर वहाँ पहुँचा जहाँ पानी की एक चौड़ी नाली मेरे बाँई ओर आ गयी थी। मैंने लोटा ज़मीन पर रखा ही था कि मुझे पानी में बड़ी ज़ोर से 'छपाक ' जैसी ध्वनि सुनाई दी। मैं चौंका। शायद कोई मेंढक होगा। पर मेंढक तो इतना बड़ा छपाका नहीं कर सकता। तब शायद कोई कछुआ होगा। किन्तु आबादी के इतने पास यहाँ कछुआ कहाँ से आया ? और कछुआ तो पानी में सरक जाता है, ऐसे उछल कर नहीं गिरता। तब क्या - मैं इस प्रकार सोच ही रहा था कि मुझे आपने बांईं ओर की नाली में कुछ हलचल जैसी दिखाई दी। उधर ध्यान जमाया देखा कि वह हलचल मुझसे तीन गज़ की दूरी पर आकर थम गयी और ऊपर की ओर उठ रही है । सामने नागराज, दो फुट की ऊँचाई तक उठे अपना फन फैलाये ओर जीभ लपलपाते हुए।

मेरा रोम-रोम थर्रा उठा। भय से मैं जड़ तो नहीं हुआ किन्तु मुझे ऐसा लगा, भागो, भागो। कब मैंने लोटा उठा लिया और पीछे मुड़-मुड़ कर देखते हुए और धड़कते ह्रदय से कैसे चबूतरे पर जा पहुँचा, यह सोचकर ही रोमांच हो उठता है ।

बगीची पर पहुँच कर आदमी दिखाई दिए तो कुछ शांति मिली। फिर हाथ-मुँह धोकर और ढेर सारा पानी पीकर काफ़ी तसल्ली आयी। उन सत्संगियों के साथ ही लौट आया किन्तु काल के साक्षात्कार की बात मैंने किसी को नहीं बताई। भला कोई अपनी मूर्खता का विज्ञापन भी करता है ।

श्री गुरुदेव पीठासीन थे । मैं उनको हाथ जोड़कर एक कौने में जा बैठा। उन्होंने एक नज़र मेरी ओर डाली तो थी किन्तु जिससे बात कर रहे थे, करते रहे। जब सब लोग यथास्थान बैठ गए ओर शान्ति छा गयी तब आप बोले,

" एक बात आप लोगों को बताना चाहता हूँ कि जो लोग नहाने वगैरह के लिए बगीची की तरफ़ जाते हैं वो पीछे तालाब की तरफ़ न जाया करें, खेतों की तरफ़ जाना चाहिए। उस तालाब

पर कीड़े-मकोड़े हो सकते हैं और साँप भी पकड़ कर वहाँ छुड़वा दिए जाते हैं। सावधानी रखनी चाहिए।"

कहते-कहते उनकी नज़र मेरी ओर एक क्षण के लिए रुकी थी। मेरे जुड़े हुए हाथ माथे तक उठ गए। आखों में आँसू उमड़ आये और मैं मन ही मन कह उठा :

है कोई ऐसी जगह हे प्रभु ! जहाँ पर तुम न हो ?

क्या कोई ऐसा भी पल है जब तुम सुरक्षा न करो ?

संध्या होती रही पर न तो मेरे आंसुओं ने थमने का नाम लिया, न मेरी कृतज्ञ हिचकियों ने रुकने का। जब प्रार्थना के स्वर गूंजे तो मेरे जुड़े हुए हाथ मेरे मस्तक तक पहुँच गए और केवल एक ही पंक्ति मेरी वाणी से निकल रही थी :

" हे दीन बन्धु दयालु गुरु, स्वीकार कोटि प्रणाम हों "

****

गुरुदेव माता, गुरुदेव पिता, गुरुदेव स्वामी परमेस्वरा

गुरुदेव माता, गुरुदेव पिता, गुरुदेव स्वामी परमेस्वरा !

गुरुदेव सखा, अज्ञान भंजन, गुरुदेव बन्धु सहोदरा !!

गुरुदेव दाता, हरनाम उपदेसै, गुरुदेव मंत निरोधरा !

गुरुदेव सांत सत बुधि मूरत, गुरुदेव पारस परसपरा !!

गुरुदेव तीरथ, अमृत सरोवर, गुरु ज्ञान मज्जन अपरम्परा !

गुरुदेव कर्त्ता सब पाप हर्ता, गुरुदेव पतित पवितकरा !!

गुरुदेव आद जुगाद जुग-जुग, गुरुदेव मंत हर जप उधरा !

गुरुदेव संगत प्रभु मेलकर किरपा, हम मूढ़ पापी जित लघतरा !!

गुरुदेव सतगुरु पारब्रह्म परमेश्वर, गुरुदेव 'नानक' हर नमस्करा !

गुरुदेव माता, गुरुदेव पिता, गुरुदेव स्वामी परमेस्वरा !!

*** मेरे तो आधार हैं , गुरुदेव के चरणारविन्द ***

****

****

हे परम पूज्य गुरुवर महान

अर्पित चरणों में भाव-सुमन !

हे परम पूज्य गुरुवर मेरे ! अर्पित चरणों में भाव- सुमन !

इस जन्मशती-उत्सव का परमानन्द लूटने जन गण मन ,

लो श्रद्धांजलि, अर्पण करने, लाये हैं सब सत्संगीजन,

कुछ भेंट हार, उपहार, सुमन, हर भाव, शब्द, उदगार, नमन

हे वन्दनीय प्रभु जन-जन के ! स्वीकृत करना ये भाव सुमन !!

उस पुण्य-तिथि के पावन दिन, जब नश्वर से तुम हुए अमर

कितने बड़भागी धन्य हुए थे, काया को छूकर !

बहुतों ने दर्शन-लाभ किया था, अंतिम-यात्रा में चलकर,

प्रियजन ने पुण्य कमाया था, उनकी पद रज सिर माथे धर !

उस दिव्यदिवस की सुधियों में होते भक्तों के सजल नयन !!

अब भी रह-रह कर आ जाती है, हे देव ! तुम्हारी याद हमें,

वह भव्य रूप, आकर्षक छवि, मधुमय वाणी का स्वाद हमें

कैसा सम्मोहन रखते थे, उल्लास भरे वे अट्टहास,

क्या कभी भुला पायेंगे हम, मदहोश बनाते वे प्रयास !

वह मंद मधुर मुस्कान, स्नेह-आनन्द ढालती मृदु चितवन !!

जब कभी आपके चरणों में रहने का अवसर मिलता था ,

मन मस्त-मगन, तन रोमांचित, प्रतिपल जीवन का खिलता था !

पर आँखों से ओझल होकर भी, मन में ऐसे रमे रहे,

जब भी आकुल हो की पुकार, तुम संबल देते हमें रहे !

हे दिव्यलोकवासी महान ! हमको न भुला देना भगवन !

है यही प्रार्थना संगत की - गुरुदेव दया का वरद-हस्त,

हम सबको सन्मति, सदगति दे, सत्संग-मार्ग करके प्रशस्त !

आपके बताये आदर्शों, आदेशों, पर नित बढ़े चलें,

मानव जीवन को सफल करें, उन्नति की सीढ़ी चढ़े चलें !

हे पारसमणि ! यदि चाहो तो, 'यह लोहा ' भी करना कंचन !!

*** जन्म शती पर सादर ***

*** सत्संग परिवार की ओर से भेंट ***

** रचियता: सतीश वर्मा, नई दिल्ली **

****

==========

मुद्रण-प्रकाशन : डॉ० शक्ति कुमार सक्सेना *** सम्पादन-संकलन : सतीश वर्मा।**

रामाश्रम सत्संग (ग़ाज़ियाबाद) प्रकाशन - अक्टूबर 1994

==========